कालिदास
के
पक्षी
हरिदत्त

कालिदास के पक्षी

श्री हरिदत्त वेदालंकार
एम. ए.

प्रकाशक :
हरिदत्त, अध्यक्ष
गुरुकुल संग्रहालय,
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी
हरिद्वार

●

मूल्य :
पन्द्रह रुपये

●

●
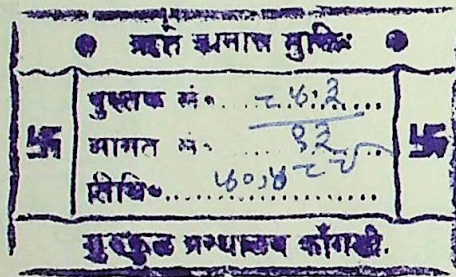
प्रथम संस्करण
१९६४

●

मुद्रक :
पुरी प्रिन्टर्स,
करोल बाग,
नई दिल्ली
फोन ५२७३३

विषय-सूची

चित्रसूची

रंगीन चित्र

सादे चित्र

प्रस्तावना

गुरुकुल संग्रहालय में १९५६ ई० में इसके संस्थापक तथा कालिदास के अनन्य प्रेमी स्व० श्री पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति की प्रेरणा से कालिदास द्वारा वर्णित पक्षियों और वनस्पतियों के चित्र प्रदर्शित किये गये थे। इनका उद्देश्य साहित्य में बहुधा उल्लेख किये जाने वाले चक्रवाक, हंस, क्रौंच आदि पक्षियों, मन्दार, कुटज आदि वनस्पतियों को इस रूप में उपस्थित करना था कि इससे दर्शकों को इनका यथार्थ ज्ञान हो सके। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष श्री चिन्तामण द्वारकानाथ देशमुख ने अप्रैल १९५७ में गुरुकुल संग्रहालय का निरीक्षण करते हुए इन चित्रों को बहुत पसन्द किया और यह सुझाव दिया कि इस विषय पर प्रकाशन भी होने चाहियें। इसके अनुसार यह पुस्तक संग्रहालय की ओर से प्रकाशित की जा रही है। इसके प्रकाशन के लिये भारत सरकार के सांस्कृतिक मन्त्रालय से जो अनुदान प्राप्त हुआ है, उसके लिये संग्रहालय बहुत आभारी है।

इस पुस्तक में इस बात का प्रयास किया गया है कि कालिदास ने जिन पक्षियों का वर्णन किया है, उनका वर्तमान पक्षिशास्त्र की दृष्टि से वैज्ञानिक विवेचन किया जाय। संस्कृत साहित्य में विभिन्न पक्षियों के सम्बन्ध में कुछ प्रसिद्धियां या कविसमय प्रचलित हैं, जैसे हंसों का वर्षाकाल के आरम्भ में मानसरोवर जाना तथा नीरक्षीर पृथक् करना, कोयल का परभृत होना, चक्रवाकदम्पती का रात के समय वियुक्त होना। कालिदास ने अपनी कृतियों में इनका उल्लेख किया है। इस पुस्तक में इसका विवेचन है कि पक्षियों की ये कविप्रसिद्धियां कपोल कल्पना हैं या वैज्ञानिक सत्य।

कंक, क्रौंच आदि अनेक पक्षियों का स्वरूप बहुत विवादास्पद है, यहां संस्कृत साहित्य के विभिन्न निर्देशों और उल्लेखों के आधार पर इनके स्वरूप को निश्चित करने का प्रयास किया गया है और इस विषय में नवीन अनुसन्धान के परिणाम प्रस्तुत किये गये हैं।

विषय को स्पष्ट करने के लिये सादे और रंगीन चित्र दिये गये हैं। मोर को शुक्लापांग क्यों कहा जाता है, यह उसके सिर के चित्र से प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार राजहंस, मैना, कलहंस आदि के सादे चित्र दिये गये हैं। रंगीन चित्रों के साथ कालिदास के ग्रंथों के वे वाक्य हैं, जिनके साथ इन्हें गुरुकुल संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है।

मोनियर विलियम्ज़, आप्टे आदि के सुप्रसिद्ध संस्कृत कोशों में हंस आदि पक्षियों के जो अर्थ दिये गये हैं, उनसे कई भ्रांतियां उत्पन्न हो गई हैं। उदाहरणार्थ १९५९ में संशोधित तथा तीन खण्डों में प्रकाशित आप्टे कोश में हंस का अर्थ किया गया है—swan, goose, duck. ये तीनों सर्वथा विभिन्न प्रकार के पक्षी हैं। कालिदास के ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवादकों ने हंस के लिये Swan, Goose और Flamingo का प्रयोग किया है। इनमें से कालिदास का हंस किसे समझा जाय? यहां इसका विवेचन करते हुए (पृ० ३६) यह बताया गया है कि यह Swan नहीं हो सकता, क्योंकि यह सामान्य रूप से हमारे देश में नहीं पाया जाता। हंस को Goose ही मानना चाहिये।

इस पुस्तक के छपने के बाद मुझे वोगल की Goose in Indian Literature and Art देखने

को मिली। उसमें भी सुप्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ ने इसी मत का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि हंस को swan मानने की भ्रांति योरोपियन विद्वानों से उत्पन्न हुई है, क्योंकि योरोप में goose अपनी मूर्खता के लिये प्रसिद्ध है और इसका प्रधान उपयोग स्वादिष्ट व्यंजन के रूप में ही है, अतः वहां का साहित्यिक पक्षी swan है।

पुस्तक के अन्त में कालिदास के पक्षियों की वैज्ञानिक नामावलि और पक्षिशास्त्र विषयक ग्रन्थों की सूची दे दी गयी है। कालिदास के ग्रन्थों के लिये साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित आलोचनात्मक संस्करणों का प्रयोग किया गया है, मेघदूत के सब प्रतीक इसी संस्करण के आधार पर हैं।

इस पुस्तक के प्रणयन में, चित्रों के चयन में तथा पक्षियों का परिचय और स्वरूप निर्णय करने में मेरे मित्र श्री शंकरदेव जी विद्यालंकार ने बहुमूल्य सहयोग दिया है। इसके चित्रों के निर्माण कराने में श्री योगेन्द्र कुमार जी लल्ला ने सहायता की है। डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने मुझे इस विषय में बहुमूल्य परामर्श और पुस्तकें प्रदान कीं। श्री रणवीर पुरी ने इस पुस्तक का सुन्दर एवं सुचारू मुद्रण किया है। प्रिय शिष्य ओम्प्रकाश ने इसकी अनुक्रमणिका तैयार की है। श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार तथा श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति से विभिन्न रूपों में बड़ी सहायता मिली है। मैं इन सबका अत्यन्त आभारी हूँ।

उपकुलपति श्री पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने इसके प्रकाशन में जो अभिरुचि प्रदर्शित की है और प्रबल प्रेरणा दी है, उसके लिये मैं उनका अत्यन्त अनुगृहीत हूं।

दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री चिन्तामणि द्वारकानाथ जी देशमुख ने इसका प्राक्कथन लिखने की कृपा की है, इसके लिये मैं उनका आभार मानता हूँ।

यह कार्य तथा गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय का संग्रहालय भूतपूर्व उपकुलपति श्री पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति की प्रेरणा से आरम्भ हुए थे, अतः यह कृति उनकी पुण्यस्मृति में संग्रहालय की ओर से सादर समर्पित है।

यह पुस्तक कालिदास की कृतियों का रसास्वादन करने वाले विद्वान् कलामर्मज्ञों की ज्ञानवृद्धि में सहायक हुई तो लेखक अपना प्रयत्न सफल समझेगा, क्योंकि महाकवि के शब्दों में—

आपरितोषाद्विदुषां न मन्ये साधु प्रयोगविज्ञानम्।

अभिज्ञानशाकुन्तल १।२

गुरुकुल संग्रहालय **हरिदत्त**
१३ अप्रैल, १९६४

प्राक्कथन

कवि का प्रकृति के साथ जितना सामरस्य होता है उतना किसी और श्रेणी के मानव का नहीं होता—वैज्ञानिक का भी नहीं। वस्तुतः कवि का निर्माण जिन तत्वों से होता है वे तत्व ही कुछ ऐसे हैं: अन्तर्दृष्टि—जो सुरुचि और सहानुभूति के निरन्तर प्रभाव से शाणित हो जाती है, कल्पना—जो वस्तुओं एवं स्थितियों को ऐसे आलोक में देखती है जिसका साधारण मानव की दृष्टि में अभाव होता है—और भाव के साधारणीकरण की प्रतिभा—जिसके दर्शन सामान्यतः मनुष्य में नहीं होते। प्रकृति के साथ कवि का यह सामरस्य प्रकृति के विभिन्न रूपों की मार्मिक (प्रतिभा-प्रसन्न) अभिव्यक्तियों में सहज ही प्रतिबिम्बित होता रहता है—और प्रकृति के इन नाना रूपों में भी अत्यन्त मनोहारी है पक्षिजगत्। अतः यदि सभी राष्ट्रों के काव्य में पक्षियों का प्रचुर उल्लेख मिलता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। प्राचीन संस्कृत-काव्य भी इस नियम का अपवाद नहीं है, और कवि-सम्राट् कालिदास जैसे कवि के काव्य में तो मानो उनके पंखों की सरसराहट हमें बहुधा सुनाई पड़ती रहती है।

कुछ वर्ष पहले मुझे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, के 'गुरुकुल संग्रहालय' को देखने का अवसर मिला जहाँ अपने प्रिय कवि कालिदास की कृतियों में वर्णित पक्षियों के अनेक चित्र देखकर मुझे बड़ा ही सुखद आश्चर्य हुआ। यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि संग्रहालय के अध्यक्ष श्री हरिदत केवल संस्कृतज्ञ ही नहीं, विज्ञानवेत्ता भी हैं। अतः मैंने उन्हें सुझाव दिया कि आप इस रोचक विषय पर पुस्तकाकार निबन्ध प्रकाशित कीजिए।

ऐसा कम होता है कि प्रसंगवश दिये हुए किसी सुझाव का न केवल स्वागत ही हो बल्कि उसे क्रियान्वित भी कर दिया जाय; इसलिए जब गत वर्ष के अन्त में श्री हरिदत्त की रचना 'कालिदास के पक्षी' के मुद्रित पृष्ठ मिले तो मुझे विस्मय भी हुआ और आनन्द भी। इन पृष्ठों के साथ हरिदत्त जी का एक पत्र भी था जिसमें उन्होंने कई वर्ष पहले की उस आनुषंगिक उक्ति का हवाला देते हुए मुझसे प्रस्तावना लिखने का अनुरोध किया था।

श्री हरिदत्त को इस पुस्तक से किसी प्रकार के लाभ का लोभ नहीं है—फिर भी उन्होंने अपना यह कार्य बड़ी ही खूबी से निभाया है। उनके वैज्ञानिक अध्ययन और गंभीर संस्कृत-ज्ञान के मणिकांचन-संयोग से जो कृति जन्मी है वह पाण्डित्यपूर्ण है और वैज्ञानिक दृष्टि से परिशुद्ध भी। चित्रों ने उसके आकर्षण को और भी बढ़ा दिया है। लेखक की शैली प्रांजल है—उसमें विशदता है और प्रवाह है।

मुझे विश्वास है कि 'कालिदास के पक्षी' का साहित्यिक क्षेत्रों में हार्दिक स्वागत होगा और केवल कालिदास के ही नहीं, संस्कृत के अन्य मूर्धन्य कवियों के भी काव्य में वर्णित पशु-पक्षियों, लता-गुल्मों और फूलों के विषय में इसी प्रकार की रोचक कृतियां सामने आएंगी।

चिं० द्वा० देशमुख
(चिंतामण द्वारकानाथ देशमुख)

दिल्ली विश्वविद्यालय
७-२-१९६४

१ | मोर

मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी स्वीकार किया गया है । इसकी गणना देश के सुन्दर पक्षियों में की जाती है । अतः यह कैसे सम्भव था कि हमारे राष्ट्र के महाकवि कालिदास का ध्यान उस ओर न जाता ? उसने अपने काव्यों और नाटकों में इसका बहुत उल्लेख किया है। जिस प्रकार कोयल का विशेष सम्बन्ध वसन्त ऋतु से है, वैसे ही चातक की भाँति मयूर का सम्बन्ध वर्षा ऋतु से है। पावस काल में घन-गर्जन से प्रसन्न होकर जब मोर अपनी केका वाणी बोलते हैं तथा प्रियाओं को प्रसन्न करने के लिए पूंछ(कलाप)के पंख फैलाकर नृत्य आरम्भ करते हैं तो अत्यन्त मनोरम दृश्य उपस्थित हो जाता है और इसे निर्निमेष नेत्रों से देखने की लालसा उत्पन्न होती है । इसका महाकवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है ।
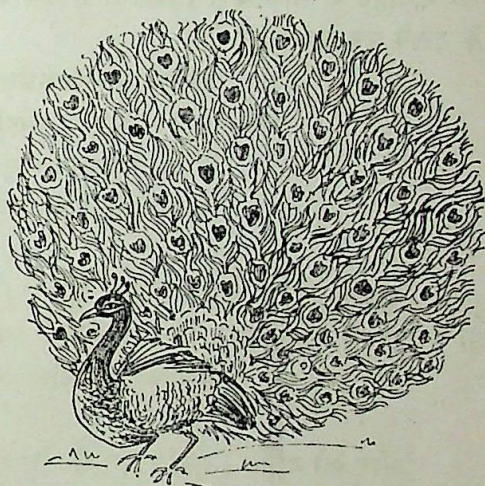
मेघदूत में यक्ष ने मेघ को अपनी प्रियतमा तक सन्देश पहुँचाने का दौत्यकार्य सौंपा है। यक्ष की यह प्रबल अभिलाषा है कि मेघ इसे बहुत जल्दी सम्पन्न करे, किन्तु उसे यह आशंका है कि वर्षाकाल में उसके दर्शन और गर्जन से प्रमुदित मोर जब मस्त होकर बोलने और नाचने लगेंगे तो मेघ इस मनोमोहक दृश्य को देखने का लोभ संवरण नहीं कर सकेगा, इस कारण कुछ विलम्ब होने की सम्भावना है । अतः वह उसे शीघ्र जाने की प्रेरणा करता हुआ कहता है—"हे मित्र, मैं यह सम्भावना करता हूँ कि मेरी प्रिया के अथवा मेरे प्रिय कार्य के निमित्त जल्दी-जल्दी जाना चाहते हुए भी तुझे कुटज के फूलों से सुगंधित प्रत्येक पर्वत पर थोड़ी बहुत देर लग ही जायगी । फिर भी, (मित्र को देर से देखने के कारण) डब-डबाई आँखों वाले मयूरों की केकाध्वनि के स्वागत शब्द से अभिनन्दित किया जाता हुआ तू जैसे-तैसे जल्दी जाने का प्रयत्न करना—

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः,
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ।
शुक्लापांगैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः,
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान्गन्तुमाशु व्यवस्येत् ।।

मेघदूत २२

मोर न केवल अपनी मधुर वाणी से, किन्तु मोहक नृत्य से भी बन्धु बादल का स्वागत करते हैं । उज्जयिनी के पालतू मोरों के विषय में महाकवि ने कहा है कि तुम्हें अपना बन्धु

समझते हुए प्रीति के कारण उज्जयिनी के भवनों में रहने वाले पालतू मोर नृत्य करके तुम्हारा स्वागत करते हैं—

बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ।

मेघदूत ३२

मोर का पालना—प्राचीन भारत में समृद्ध परिवारों में कृत्रिम आवास स्थान बनाकर मोरों को पालने तथा उनके नृत्य से मनोविनोद करने की प्रथा प्रचलित थी । अलकापुरी में स्थित अपने घर का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है—रक्ताशोक और मौलसरी के पेड़ों के बीच स्फटिक के तख्तों वाली सोने की एक वासयष्टि (मोर के बैठने का डंडा) है, इसकी वेदी कोमल बाँसों जैसी हरी कान्तिवाली मणियों अर्थात् पन्नों से बनायी गई है । उस पर कंगनों की मधुर झनझनाहट के साथ मेरी प्रियतमा से नचाया जाने वाला तेरा मित्र नीले कण्ठवाला मयूर दिन के ढलने पर आ बैठता है—

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि—
र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ।
तालैः शिञ्जावलयसुभगै र्नर्तितः कान्तया मे,
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥

मेघदूत ७६

अलकापुरी में केवल यक्ष के घर में ही नहीं अपितु सभी घरों में मोर अपने चमकीले पंखों के साथ बारह मास दिनरात बोलते रहते हैं—

केकोत्कण्ठाभवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापाः ।

मेघदूत ६५ प्र०

मोर की ध्वनि—कालिदास ने मोर की ध्वनि-केका का कई स्थानों पर वर्णन किया है। जब दिलीप और सुदक्षिणा रथ पर सवार होकर अयोध्या से वसिष्ठ ऋषि के आश्रम की ओर जा रहे हैं तो उन्होंने मार्ग में रथ के चक्र की आवाज के कारण सिर उठाकर देखने वाले (इसे बादल की गड़गड़ाहट समझकर) मोरों द्वारा बोली जाती हुई अति मधुर षड्ज स्वर से मिलने वाली दोहरी या दो प्रकार की ध्वनि को सुना—

मनोभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः ।
षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः ॥

रघुवंश १।३९

यहां मोर की बोली की दो विशेषतायें बतायी गई हैं—(१) वह षड्ज स्वर से मिलती है। (२) वह दोहरे प्रकार की है। षड्ज को मल्लिनाथ ने ऐसा स्वर बताया है, जो छः स्थानों—नाक, कण्ठ, छाती, तालु, जिह्वा, और दाँत को स्पर्श करते हुए उत्पन्न होता है[1]। यह भारतीय संगीत के सात प्रधान स्वरों में से पहला स्वर है।

मोर के दोहरे प्रकार के (द्विधा भिन्ना) स्वर के सम्बन्ध में टीकाकारों के कई मत हैं। पहला

---

१. रघुवंश १।३९ की टीका—षड्भ्यः स्थानेभ्यो जातः षड्जः। तदुक्तम्, नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्तांश्च संस्पृशन्। षड्भ्यः संजायते यस्मात्तस्मात्षडज इति स्मृतः ॥
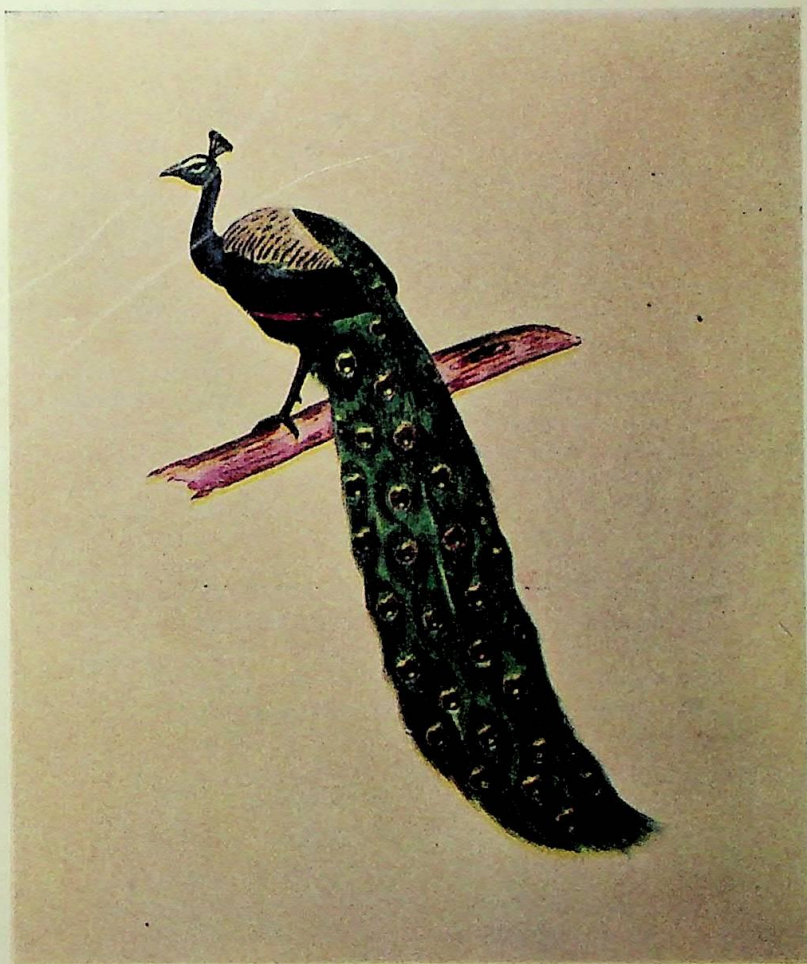
मयूर

तालैः शिञ्जावलयसुभगैः कान्तया नर्तितो मे ।
यामाध्यास्ते दिवसविगमे नीलकंठः सुहृद्वः ।।

मेघदूत-७६

मत चरित्रवर्धन का है कि स्त्री पुरुष भेद के कारण मोर तथा मोरनी की वाणी दोहरी तरह की होती है—(स्त्रीपुरुषभेदेन द्विधा भिन्ना) । दूसरा मत दन्तिल का है, राजा-रानी के महापुरुष होने के कारण उन्हें देख कर मोरों में विस्मय और भय के भाव उत्पन्न हुए, इनके कारण उनकी आवाज दो प्रकार की हो गयी[२] । तीसरा मत मल्लिनाथ का है, संगीत शास्त्र के अनुसार षड्ज स्वर दो प्रकार का होता है—शुद्ध और विकृत । इसमें जब केवल तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा और छन्दोवती नामक चार श्रुतियों का समावेश हो तो यह शुद्ध कहलाता है, अन्यथा इसे विकृत कहते हैं । इसमें दो श्रुतियाँ होती हैं (षड्जो द्विश्रुतिर्विकृतो भवेत्[३] ।) । षड्ज के दो अन्य भेद च्युत (खण्डित) और अच्युत (अखण्ड) हैं । षड्ज के इन दोहरे भेदों के कारण इससे सादृश्य रखने वाली मोर की आवाज़ भी दोहरी समझी जाती है ।

मोर पर वर्षाकाल का प्रभाव—वर्षाकाल में मोरों के बोलने और नृत्य का कालिदास ने विशेष वर्णन किया है । इन्दुमती के स्वयंवर में उसकी सेविका सुनन्दा ने उसका परिचय मथुरा के राजा सुषेण से कराते हुए कहा है कि यदि तुम अपना विवाह सुषेण से करोगी तो वर्षा के दिनों में गोवर्धन पर्वत की सुहावनी गुफाओं में पानी की फुहारों से भीगी हुई, शिलाजीत की गन्धवाली पत्थर की पाटियों पर बैठ कर मोरों का नाच देखना—

> **अध्यास्य चाम्भःपृषतोक्षितानि ,**
> **शैलेयगन्धीनि शिलातलानि ।**
> **कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं ,**
> **कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु ॥**

रघुवंश - ६।५१

इन्दुमती के स्वयंवर के बाद विरोधी राजाओं के आक्रमण को अपनी वीरता से परास्त करके जब राजा अज अयोध्या लौटे तो अपने पति के पराक्रम से प्रसन्न होने पर भी इन्दुमती इतनी लजा गयी कि उसके मुंह से स्वागत के लिए शब्द नहीं निकले, किन्तु जैसे नये बादलों की बूंदों से भीगी हुई पृथ्वी मोर के शब्दों में मेघों का स्वागत करती है, वैसे ही सखियों ने जो अज की प्रशंसा की वह मानो इन्दुमती ने ही उनका अभिवादन किया—

> **हृष्टाऽपि सा ह्रीविजिता न साक्षात् ,**
> **वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत् ।**
> **स्थली नवाम्भःपृषताभिवृष्टा ,**
> **मयूरकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम् ॥**

रघुवंश ७।६९

पुष्पक विमान पर सवार होकर लंका से अयोध्या वापिस लौटते समय श्री रामचन्द्रजी दक्षिण भारत में तुंगभद्रा नदी के किनारे स्थित माल्यवान् पर्वत की ओर संकेत करते हुए सीता जी को उस वर्षा ऋतु की याद दिलाते हैं, जो उन्हें उनके वियोग में व्यतीत करनी पड़ी

---

२. महाजनदर्शनजनितविस्मयभयाभ्यां स्निग्धदीप्तभेदेन द्विधा भिन्ना, "विस्मयाद्भवति स्निग्धो भयाद्दीप्त उदाहृतः ।" इति दन्तिलः ।

३. रघुवंश १।३९, शुद्धविकृतभेदेनाविष्कृतावस्थायां च्युताच्युतभेदेन वा षड्जो द्विविधः ।

थी—"उस समय वर्षा के कारण पोखरों में से उठी हुई सोंधी गन्ध, अधखिली मंजरियों वाले कदम्ब के फूल और मोरों के मनोहर स्वर तुम्हारे बिना मुझे असह्य हो गये—

गन्धश्च धाराहतपल्लवानां कादम्बमर्धोद्गतकेसरंच ।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवुर्यस्मिन्नसह्यानि त्वया विना मे ।।

रघुवंश १३।२७

कार्तिकेय के नेतृत्व में देवताओं की सेना के सुमेरु पर्वत पर प्रयाण से उठी हुई धूल जब सूर्य को ढक कर आसमान में छा गई तो हंसों को भ्रम हुआ कि वे बादल हैं। अतः वर्षा ऋतु के आगमन के कारण वे मानसरोवर की ओर उड़ चले तथा मोर आनन्द से नाचने लगे—

घनैं विलोक्य स्थगितार्कमण्डलै—
श्चसूरजोभि र्निचितं नभः स्थलम् ।
अयायि हंसैरभिमानसं घन—
भ्रमेण सानन्दमनर्त्ति केकिनः ।।

कुमारसम्भव १४।३५

मालविकाग्निमित्र में यह कहा गया है कि मोर मृदंग की ध्वनि को बादल का गर्जन समझ कर प्रसन्न होकर बोलने तथा नाचने लगते हैं। इसके प्रथम अंक में राजा अग्निमित्र को मालविका दिखाने के लिए विदूषक परिव्राजिका की सहायता से यह योजना बनाता है कि गणदास और हरदत्त दोनों के कला कौशल की उत्कृष्टता का निर्णय कराने के लिए इन दोनों की शिष्याओं का कलाप्रदर्शन किया जाय और इसकी तैय्यारी के लिए जब संगीत आरम्भ होता है, ढोलक बजने लगती है तो परिव्राजिका कहती है कि मृदंग के शब्द को मेघों की गरज समझकर ये मोर ऊपर मुंह करके देखने लगे हैं और दूर तक गूंजने वाली यह मध्यम स्वर से उठी हुई तथा मोरों की बोली से सादृश्य रखनेवाली मायूरी नामक गमक मन को मतवाला बनाये डाल रही है—

जीमूतस्तनितविशङ्किभि र्मयूरै—
रुद्ग्रीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य ।
निर्ह्रादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था,
मायूरी मदयति मार्जना चेतांसि ।।

मालविकाग्निमित्र १।२१

विक्रमोर्वशी में भी राजा पुरूरवा कहता है कि ग्रीष्म की समाप्ति होने (वर्षाकाल आरम्भ होने) के कारण खूब जोर से चिल्लानेवाले मोर उसके बन्दी या भाट बन गये हैं—

घर्मच्छेदात्पटुतरगिरो वन्दिनो नीलकण्ठाः ।

विक्रमोर्वशी ४।१३

वर्षाकाल में मोर का वर्णन करते हुए राजा कहता है—सामने के प्रचण्ड पवन से छितराती हुई कलगी वाला यह मोर अपना कंठ ऊँचे उठा कर कें कें करता हुआ बादलों की ओर देख रहा है—

आलोकयति पयोदान्प्रबलपुरोवातताडितशिखण्डः ।
केकागर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन ।। विक्रमोर्वशी ४।१८

ऋतुसहार में वर्षा में मोरों का वर्णन करते हुए कहा गया है—सदा मीठी बोली बोलने वाले, गरजते हुए बादलों की शोभा पर मस्त होने वाले[४], अपनी पूंछ खोलकर तथा विस्तृत करके सुहावने लगने वाले, अपनी प्रिय मोरनियों के अलिंगन और चुम्बन से मस्त हुए मोरों के झुंडों ने आज नृत्य आरम्भ कर दिया है—

सदा मनोज्ञं स्वनदुत्सवोत्सुकं विकीर्य विस्तीर्णकलापशोभितम् ।
ससम्भ्रमालिंगनचुम्बनाकुलं प्रवृत्तनृत्यं कुलमद्य बर्हिणाम् ॥

ऋतुसंहार २।६

इसी काव्य में अन्यत्र प्रावृट्काल के वर्णन के प्रसंग में यह उल्लेख है कि कानों को सुहाने वाली मीठी तानें लेकर गुंजन करते हुए भौंरे उस कमल को छोड़कर चले जा रहे हैं, जिसके पत्ते और फूल झड़ गये हैं। ये भौंरे नाचते हुए मोरों के खुले पंखों को भूल से कमल समझ कर उन्हीं पर टूट पड़ रहे हैं—

विपत्रपुष्पां नलिनीं समुत्सुका विहाय भृंगाः श्रुतिहारिनिःस्वनाः ।
पतन्ति मूढ़ाः शिखिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेषु नवोत्पलाशया ॥

ऋतुसंहार २।१४

पावस ऋतु में पर्वतों पर मयूर बड़ी संख्या में नृत्य आरम्भ करते हैं और इससे पहाड़ प्रेमियों के चित्त में उत्सुकता उत्पन्न कर देते हैं—

प्रवृत्तनृत्यैः शिखिभिः समाकुलाः ।
समुत्सुकत्वं जनयन्ति भूधराः ॥

ऋतुसंहार २।१६

मयूर देवताओं के सेनापति कार्तिकेय का वाहन है, इनका निवासस्थान देवगिरि (झांसी से ७० मील दक्षिण में देवगढ़) माना जाता है। यक्ष ने मेघ को कहा है कि यहाँ से गुजरते हुए वर्षाकाल में तुम स्कन्द के वाहन को खूब नचाना। स्कन्द अपनी माता भवानी का इतना लाड़ला बेटा है कि वे उसके वाहन मोर के स्वयं झड़े हुए उस पंख को पुत्र प्रेम के कारण उठा लेती हैं, जिसके चन्द्रक में चमकीली रेखाओं के चक्र पड़े हुए हैं। इस नीचे गिरे हुए चन्द्रक को पार्वती अपने दुलारे बेटे के वाहन का पंख समझकर अपने उन कानों में खोंस लेती हैं, जो नील कमल के दलों को प्राप्त करने का उपयुक्त अधिकारी है। कार्तिकेय को इस मयूर के चेहरे का श्वेत भाग (धौतापांग) शिव जी के भाल देश पर स्थित चन्द्रमा की किरणों से और भी अधिक श्वेत प्रतीत होता है। यह मयूर कितना बड़भागी है कि त्रैलोक्यजननी अपने कानों से नील कमल हटाकर इसके स्खलितबर्ह को धारण करती हैं। तुम इस मयूर को देवगिरि पर्वत की प्रतिध्वनि से द्विगुणित होने वाले अपने गर्जनों से नचा देना—

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ।

---

४. संस्कृत साहित्य में बादलों के गरजने पर मोरों के प्रसन्न होकर बोलने और नाचने का वर्णन बहुत मिलता है जैसे उत्तररामचरित (३।६) में—स्तनयित्नोर्मयूरीव चकितोत्कंठितस्थिता। मृच्छकटिक पंचम अंक—श्लोक १३, येषां रवेण सहसोत्पतितैर्मयूरैः, खं वीज्यते मणिमयैरिव तालवृन्तैः।

धौतापांगं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभि र्गजितै र्नर्तयेथाः[५] ।। मेघदूत ४४

शरद् ऋतु में मोरों की दशा—मोरों का गर्जन और नर्तन वर्षा ऋतु के अवसान के साथ समाप्त हो जाता है। इसके बाद आनेवाली शरद् ऋतु के बारे में महाकवि ने कहा है—आजकल न तो बादलों में इन्द्रधनुष रह गये हैं, आज आकाश में बिजली भी नहीं चमकती, न बगुले ही अपने पंख हिला हिलाकर आकाश को पंखा कर रहे हैं और न ही मोरों के झुंड मुँह उठाकर आकाश की ओर देख रहे हैं—

नष्टं धनुर्बलभिदो जलदोदरेषु
सौदामिनी स्फुरति नाद्य वियत्पताका।
धुन्वन्ति पक्षपवनै र्न नभो बलाकाः
पश्यन्ति नोन्नतमुखाः गगनं मयूराः ।।

ऋतुसंहार ३।१२

शरदृऋतु में मोरों ने नाचना छोड़ दिया है, कामदेव अब इन्हें छोड़कर मधुरगीत गाने वाले हंसों के पास पहुँच गया है—

नृत्यप्रयोगरहिताञ्छिखिनो विहाय
हंसानुपैति मदनो मधुरप्रगीतान् ।।

ऋतुसंहार ३।१३

ग्रीष्म काल का मोर पर प्रभाव—मोर पर ग्रीष्म ऋतु के प्रभाव का उल्लेख कालिदास ने तीन स्थानों पर किया है। गर्मी मोर को बिलकुल निष्क्रिय और सुस्त बना देती है। विक्रमोर्वशीय में कहा गया है कि ग्रीष्मऋतु में मोर गर्मी से घबराकर पेड़ की जड़ में ठंडे थांवले में आ बैठता है—

उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी।

विक्रमोर्वशीय २।२२

मोर साँप का शत्रु है, सामान्यरूप से उसका भक्षण करता है। किन्तु ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड गर्मी उसे इतना शिथिल बना देती है कि वह इस स्वाभाविक वैर को भी भूल जाता है। "हवन की अग्नि के समान जलती हुई सूर्य की किरणों से जिन मोरों के शरीर और मन

---

५. इस श्लोक के कई पाठान्तर उल्लेखनीय हैं। तिब्बती अनुवाद, सनातन गोस्वामी की तात्पर्य दीपिका तथा विल्सन के संस्करण में तीसरी पंक्ति में 'पावकेः' के स्थान पर 'प्यायये:' का पाठ है, इसके अनुसार इसका अर्थ होगा उस मयूर को जलबिन्दुओं से आप्यायित या तृप्त करना और फिर उसे नचाना। 'कुवलयदलप्रापि' के मल्लिनाथ ने दो अर्थ किये हैं—(१) भवानी पंख को कमल की पंखुड़ियों के साथ रखती है। इस दशा में यह करोति क्रिया का विशेषण है। (२) भवानी पंख जो अपने कान में उस स्थान पर रखती है जहाँ कमल की पंखुड़ियाँ रखी जानी चाहिएँ। यहाँ यह कर्णे का विशेषण है। सरस्वती तीर्थ ने विद्वज्जनानुरंजिनी टीका में इसे 'कुयलयदलस्पर्धि' माना है अर्थात् जो कमल की पँखुड़ी से होड़ करने वाला है। यह पाठ अधिक अच्छा प्रतीत होता है। वाग्भट्ट ने अलंकारतिलक में इसी अर्थ से बहुत साम्य रखने वाले पाठान्तर 'कुवलयदलत्रापि' का उल्लेख किया है।

दोनों सुस्त पड़ गये हैं, वे अपने पास कुण्डल मार कर बैठे हुए साँपों को भी नहीं मारते। किन्तु साँप गर्मी से बचने के लिए मोर की पूँछ की छाया में अपना मुँह डाल देते हैं—

हुताग्निकल्पैः सवितुर्गभस्तिभिः
कलापिनः क्लान्तशरीरचेतसः ।
न भोगिनं घ्नन्ति समीपवर्तिनं
कलापचक्रेषु निवेशिताननम् ॥

ऋतुसंहार १।१६

इसी दृश्य को महाकवि ने एक अन्य श्लोक में पुनरुक्ति करते हुए कहा है कि सूर्य की किरणों से तपाया हुआ, मार्ग में तपी हुई धूल से अत्यधिक झुलसाया जाता हुआ यह सर्प अपना मुँह नीचे करके बार-बार फुंकार करते हुए मोर की छाया के तले बैठा हुआ है—

रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं
विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः ।
अवाङ्मुखो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः
फणी मयूरस्य तले निषीदति ॥

ऋतुसंहार १।१३

मोर की पूंछ तथा रमणी का केशपाश—कालिदास ने मोर के स्वरूप का कोई विशद परिचय नहीं दिया। केवल तीन चार श्लोकों में रंगबिरंगे फूलों से गुंथे हुए स्त्रियों के बाल से मोर की पूंछ की तुलना की है। अयोध्या के समीप वन में शिकार खेलने वाले दशरथ के विषय में रघुवंश में यह कहा गया है कि कई बार उनके घोड़े के पास से सुन्दर पूंछ वाले मोर उड़कर जाते थे; किन्तु राजा इन पर बाण नहीं चलाते थे क्योंकि उन्हें देखकर दशरथ को रंग बिरंगी मालाओं से गुंथी हुई तथा सुरत के कारण खुल गयी प्रियतमा की केशराशि का स्मरण हो आता था—

अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तं मयूरं
न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार ।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे
रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः ॥

रघुवंश ९।६७

कालिदास ने इस विचार को विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अंक में दोहराया है। उर्वशी के विरह में विह्वल राजा पुरूरवा को भी मोर के कलाप (पूँछ) में ही रंग विरंगे फूलों से गुँथे हुए अपनी प्रिया के बालों का साम्य प्रतीत हुआ है। मोर जब उर्वशी के सम्बन्ध में राजा से पूछे गये प्रश्न का उत्तर न देकर नाचना आरम्भ कर देता है तो राजा उसे उपालम्भ देते हुए कहता है— "हाँ, समझ गया—मेरी प्रिया के खो जाने से इस मोर की हल्की हवा से छितराये जानेवाले बादलों के समान सुन्दर पूँछ (कलाप) का प्रतिस्पर्धा करने वाला शत्रु कोई नहीं रहा। आज यदि वह होती, जिसके रतिक्रीडा के कारण खुले बालों में फूल गुँथे हुए होते तो यह मोर किसे सुहाता ?

मृदुपवनविभिन्नो मत्प्रियायाः विनाशात्
घनरुचिरकलापो निः सपत्नोऽस्य जातः ।

रतिविगलितबन्धे केशपाशे सुकेश्याः
सति कुसुमसनाथे कं हरेदेष बर्ही ॥

विक्रमो० ४।२२

मेघदूत में यक्ष मेघ को अपनी विरहावस्था का वर्णन करता हुआ कहता है—मैं प्रियंगु लताओं में (तुम्हारे पतले) शरीर को, भयभीत हरिणी के नयन में (तुम्हारी) चितवन की, चाँद में (तुम्हारी) मुख शोभा की, मयूरपंखों के समूहों में (तुम्हारे) बालों की, नदी की छोटी तरंगों में (तुम्हारे) भ्रूभंगों की कल्पना किया करता हूँ, परन्तु हे तेजस्वभाव वाली, खेद है कि किसी भी एक वस्तु में तुम्हारी समानता नहीं है—

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥

मेघदूत १०१

गन्धमादन पर्वत पर पार्वती के साथ विहार करते हुए शिवजी पार्वती को सायंकाल की सुषमा का वर्णन करते हुए कहते हैं—हे पीवरोरु, सामने पेड़ के सिरे पर बैठा हुआ मोर सन्ध्याकाल की क्षीण होती हुई धूप को पीता हुआ प्रतीत होता है क्योंकि इसी कारण इसकी पूंछ पिघले सोने के पीले रंगवाली हो गई है—

एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो जातरूप इव गौरमण्डलम् ।
हीयमानमहरत्ययातपं पीवरोरु पिबतीव बर्हिणः ॥

कुमारसम्भव ८।३६

भौगोलिक वितरण—कालिदास ने अपने काव्यों में मोर का वर्णन भारत में निम्नलिखित स्थानों में किया है—गोवर्धन पर्वत की कन्दरा में (रघु० ६।५१), अयोध्या (रघु० ७।६९, १।३९), माल्यवान् पर्वत (दक्षिण भारत में तुंगभद्रा नदी के किनारे, रघुवंश १३।२७), गन्धमादन पर्वत (कुमारसम्भव ८।३६, ६७) उज्जयिनी (मेघदूत ३२), अलकापुरी (मेघदूत ६५ प्र०, ७६), देवगिरि (देवगढ़, जि० झाँसी पूर्वमेघ ४४)। इससे यह स्पष्ट है कि कालिदास भारत के उत्तरी एवं दक्षिणी भागों में इसकी अवस्थिति मानता है।

कालिदास यह मानता है कि मोर मनुष्यों की बस्तियों के आस-पास (पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां रघु० ६।९) रहते हैं और यह इतने पालतू बन जाते हैं कि आश्रमों में मनुष्यों की गोद में निर्भीक भाव से बैठे रहते हैं। च्यवन ऋषि के आश्रम में पुरुरवा के बेटे से मणिकण्ठक नाम का मोर इतना हिला हुआ था कि वह उसकी गोद में सोये हुए अपना सिर उसके हाथों से खुजलाये जाने का आनन्द लिया करता था—

यः सुप्तवान् मदङ्के शिखण्डककण्डूयनोपलब्धसुखः ।
तं मे जातकलापं प्रेषय मणिकण्ठकशिखिनम् ॥

विक्रमोर्वशीय ५।१३

मोर का वृक्षों पर निवास—कालिदास ने मोरों की कुछ आदतों का भी वर्णन किया है। उन्हें रात के समय पेड़ों पर आराम करना अधिक पसन्द है। अतः सायंकाल होते ही ये

पेड़ों पर बैठना आरम्भ कर देते हैं। पहले कुमार सम्भव के (८।३६) पेड़ पर बैठकर सायंकाल की धूप पीने वाले मोर का उल्लेख हो चुका है। रघुवंश में सायंकाल के समय राजा दिलीप के नन्दिनी के पीछे-पीछे वसिष्ठ के आश्रम में लौटने का वर्णन करते हुए महाकवि ने कहा है—राजा दिलीप यह देखते हुए चले जा रहे थे कि कहीं तो छोटे-छोटे तालों में से सूअरों के झुंड निकल रहे हैं, कहीं मोर अपने रहने के पेड़ों की ओर लौट रहे हैं, कहीं हरिण हरी घासों पर थक कर बैठ गये हैं, धीरे-धीरे सांझ होने से वन की सब धरती धूमिल पड़ती जा रही है—

स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथा—
न्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि
श्यामायमानानि वनानि पश्यन्॥

रघुवंश २।१७

श्रीरामचन्द्र जी के स्वर्ग चले जाने के बाद सूनी अयोध्या का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसके उजड़ने पर मनुष्यों द्वारा घरों में पालतू मोरों के निवास के लिये लगाई गयी डण्डियों के टूट जाने के कारण अब मोर पेड़ों पर निवास और शयन करने लगे हैं, मृदंग न बजने के कारण अब उन्होंने नाचना भी बन्द कर दिया है। अब मनोविनोद या क्रीडा के लिये पाले गये मोर, जंगल के उन मोरों के समान हो गये हैं, जिनकी पूंछें वन की आग से जल गयी हों—

वृक्षेशया यष्टिनिवासभंगा—[६]
न्मृदंगशब्दापगमादलास्याः।
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्हाः
क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम्॥

रघुवंश १६।१४

इस श्लोक से यह भी स्पष्ट है कि कालिदास पालतू (क्रीडामयूर) तथा जंगली मोरों (वनबर्हिण) के दो भेदों को खूब अच्छी तरह समझता था।

श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध—मोर के पंख गोपाल बाल श्रीकृष्ण के मुकुट में शोभा पाते हैं।[७] कालिदास ने इसका बड़ा सुन्दर निर्देश किया है। वर्षा ऋतु में जब धरतो फोड़कर निकला हुआ प्रतीत होने वाला इन्द्रधनुष आसमान के एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैल जाता है तो ऐसा जान पड़ता है कि नाना रंग के सहस्रों रत्नों की सम्मिलित प्रभा जगमग जगमग कर रही हो। मानो किसी पतले मुंहवाली बांबी में संचित मणिराशि से प्रभा की रंग बिरंगी लहरें एक साथ ऊपर की ओर फिंक रही हों। यक्ष के मित्र मेघ के श्यामल मृदुल शरीर पर इन्द्रधनुष की प्रभा पड़ने से ऐसा जान पड़ता है कि गोपाल वेशधारी श्रीकृष्ण के साँवले शरीर पर मयूरपिच्छों की प्रभा जगमगा रही हो। इस दृश्य का वर्णन करते हुए

---

६. मिलाइये विक्रमोर्वशीय ३।२ उत्कीर्णाइव वासयष्टिषु निशानिद्रालसाः बर्हिणः।

७. भागवतपुराण-बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारम्।

कहा गया है—रत्नों की कान्तियों के सम्मिश्रण जैसा दिखाई देने वाला यह इन्द्रधनुष का टुकड़ा सामने बांबी के अग्रभाग से निकल रहा है, जिससे तेरा साँवला शरीर वैसे ही अत्यधिक चमक उठेगा, जैसे चमकीली कान्तिवाले मोर के पंखों से ग्वालों की तरह अपना वेश अलंकृत करने वाले विष्णु (श्रीकृष्ण) का साँवला शरीर चमकता है—

> रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता—
> द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य ।
> येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
> बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेशस्य विष्णोः ॥
>
> मेघदूत १५

कालिदास का मयूर का उपर्युक्त वर्णन कहां तक वैज्ञानिक है ? क्या मोर शुक्लापांग या धौतापांग होते हैं ? क्या वर्षा ऋतु में मेघों के दर्शन और गर्जन का उनकी वाणी और नृत्य पर विलक्षण प्रभाव पड़ता है ? क्या वे रात को पेड़ों पर निवास करते हैं ? ग्रीष्म और शरद् ऋतु में निष्क्रिय तथा पावस में क्रियाशील हो जाते हैं ? मोर के आधुनिक पक्षि-शास्त्र सम्मत निम्नलिखित वर्णन से यह स्पष्ट हो जायगा कि कालिदास द्वारा बतायी गई विशेषतायें मोर के वास्तविक जीवन के अनुरूप हैं।

मोर का वैज्ञानिक वर्णन—भारत में पाये जाने वाले सामान्य मोर (Common Peafowl) का वैज्ञानिक नाम Pavo Cristatus है। कालिदास ने उपर्युक्त श्लोकों में इसके लिये जिन शब्दों और विशेषणों का प्रयोग किया है, वे सब इसमें पाये जाते हैं। मोर का रंगरूप अत्यन्त सुपरिचित है। नर मोर पूँछ के बिना ४० से ४६ इंच तक तथा मादा ३८ इंच लम्बी होती है। नर और मादा दोनों के सिरों पर छोटे परों की एक सुन्दर कलगी या शिखा होती है। इसीलिये कालिदास ने इसे शिखी (रघु० १३।२७, मेघदूत ३७, ऋतुसंहार २।१६, ३।१३, विक्रमोर्वशी २।२२) अर्थात् शिखा या चूड़ा वाला कहा है। नर की शिखा मादा की कलगी से कुछ बड़ी होती है। यह पंखे के आकार की होती है।

शुक्लापांगता—मोर के शरीर में कई रंगों का अद्भुत नयनानन्दकारी संमिश्रण होता है। नर की कलगी को सुशोभित करनेवाले पंखे के आकार के पंख नीचे से काले तथा ऊपर से हल्के नीले और हरे होते हैं। इसके सिर के पंख नीले और हरे होते हैं। गले का रंग नीला होता है। इसीलिये कालिदास ने इसे नीलकण्ठ (मेघदूत १९) कहा है। इसकी छाती भी नीली होती है। पीठ के पंख धारीदार तथा कत्थई रंग के होते हैं। इसकी आँख गहरे भूरे रंग की होती हैं। आँख के नीचे तथा ऊपर कुछ हिस्सों में पर नहीं होते, केवल नंगी त्वचा होती है। इसका रंग स्टुअर्ट बेकर के शब्दों में धूसर श्वेत (Livid white) होता है। इसी शारीरिक विशेषता के कारण कालिदास ने इसे शुक्लापांग (मेघदूत २२)
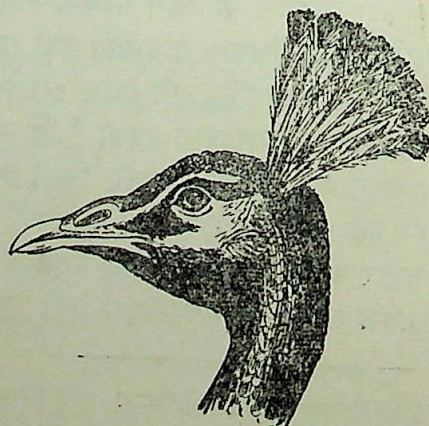
मोर की आँख के दोनों ओर की सफेदी

या धौतापांग (मेघदूत ४८)[८] कहा है।

मोर की चोंच तथा टाँगें भूरे रंग की होती हैं। मादा आम तौर से नर से कुछ फीके रंग की और कम सुन्दर होती है। न तो उसका गला गहरे नीले रंग का होता है और न ही उसकी पूंछ सुन्दर होती है। उसका उपरला हिस्सा हल्का भूरे रंग का होता है।

नर मोर की सबसे बड़ी विशेषता ३-४ फीट लम्बी, सुन्दर और शानदार पूंछ है। इसे संस्कृत में शिखण्ड, पिच्छ, बर्ह या कलाप कहते हैं। इसी कारण कालिदास ने मोर को शिखण्डी (रघुवं० १।३९, कु० सं० ८।६७), बर्ही (ऋतुसंहार २।६) या बर्हिण (रघु० २।१७, १९।३७) और कलापी (रघु० ६।९, ६।५१) कहा है।[९] इस पूँछ या कलाप की शोभा इसके हरे रंग के पंखों में पाये जाने वाले रंगविरंगे गोलकों (Eyes) के कारण है, जिन्हें चन्द्रक या मेचक (Ocellus) कहा जाता है। चन्द्रक के मध्य में एक गहरा नीला हृदयाकार गोलक होता है तथा उसके चारों ओर चार वलय (rings) या चक्र होते हैं। पहला तंग वलय गहरे नीले हरे रंग का होता है, दूसरा कुछ अधिक चौड़ा वलय सुनहले काँसे के रंग का, तीसरा बहुत

---

८. विक्रमोर्वशीय में राजा पुरूरवा ने इसी विशेषता के कारण मोर को निम्नश्लोक में सिता- पांग कहा है—

नीलकण्ठ ममोत्कण्ठा वनेऽस्मिन्वनिता त्वया।
दीर्घापांगा सितापांग दृष्टा दृष्टिक्षमा भवेत्॥

चतुर्थ अंक।

९. इस प्रसंग में बाण की एक उपमा का निर्देश आवश्यक प्रतीत होता है। हर्ष चरित (शंकर कृत संकेत व्याख्या सहित निर्णय सागर सं० पृ० ८५) के तृतीय उच्छ्वास में पुस्तकवाचकसु दृष्टि के वस्त्रों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि—शिखाण्ड्यपांगपाण्डुनी पौण्ड्रे वाससी दधानः, उसने पुण्ड्र देश के बने हुए ऐसे कपड़े पहने हुए थे, जो मोर की आंख के नीचे की श्वेतिमा से सादृश्य रखते थे। मोर में नीले रंग की प्रधानता होने से उस की आंख की चारों ओर की सफेदी में नीले रंग की झलक पड़ती है, इसी प्रकार सुदृष्टि के सफेद धुले कपड़ों पर हल्के नील की चमक थी। प्राचीन भारत में नील के प्रयोग के लिये देखिये पंचतंत्र की नीलीभाण्ड शृगाल की कथा।

९. इस प्रसंग में संस्कृत में मोर की विभिन्न विशेषताओं पर प्रकाश डालनेवाले नामों की चर्चा उपयोगी जान पड़ती है। शब्दकल्पद्रुम में अमर कोश, शब्द रत्नावली आदि विभिन्न कोशों के आधार पर इसके १९ नाम दिये गये हैं। उसका मुख्य नाम मयूर है—इसकी व्युत्पत्ति शब्द कल्पद्रुम ने दो प्रकार से की है—मयु जैसा शब्द करने के कारण अथवा सांपों के मारने के कारण (मयुरिव राति शब्दायते यद्वा मीनाति हन्ति सर्पान्)। उसकी पूँछ (बर्ह या कलाप) के कारण उसे ये पांच नाम दिये गये हैं—बर्हिण, बर्ही, कलापी, शिखण्डी, चित्रपिच्छिकः। उसकी कलगी (शिखा) की विशेषता के कारण उसे ये तीन नाम प्राप्त हुए हैं—शिखावल, शिखी, ध्वजी। पूंछ के पंखों में बने मेचकों के कारण उसे चन्द्रकी, प्रचलाकी कहा जाता है तथा सांपों को खाने के कारण भुजंगभुक् तथा भुजंगभोगी। गला नीला होने से वह नीलकण्ठ कहलाता है। वर्षा के आने पर प्रसन्न होकर क्रीड़ा करने के कारण उसके तीन नाम—मेघनादानुलासी (मेघनादं लक्ष्यीकृत्यानुलसति क्रीडति) तथा मेघनादानुलासक तथा मेघानन्दी भी हैं। उसकी वाणी केका के कारण उसे केकी कहा जाता है।

छोटा वलय सुनहले रंग का तथा अन्तिम वलय भूरे रंग का होता है। जब मोर मस्त होकर नाचता है और अपनी पूंछ को उठा कर पंखे की तरह फैला लेता है तो उसमें ये चन्द्रक नीलम और फीरोजा की हजार आँखों की तरह चमकते हुए बड़ा भव्य दृश्य प्रस्तुत करते हैं। मोर की सुन्दर कलगी, गले का नीलापन और पूंछ के चन्द्रकों के नाना रंगों का सम्मिश्रण वस्तुतः कालिदास के शब्दों में विभिन्न रंगों की मणियों से उत्पन्न होने वाली (रत्नच्छाया-व्यतिकर) इन्द्रधनुष के रंगों जैसी अपूर्व छवि की सृष्टि करता है।

नर मोर को प्रकृति ने यह सुन्दर रंग और पूंछ मादा को प्रसन्न करने के लिए दी है।[१०] मोर पुराने राजाओं की भाँति बहुपत्नी प्रथा (Polygamy) का उपासक है और कई मोरनियों के अन्तःपुर या हरमवाला होता है। इन्हें प्रसन्न करने के लिये प्राङ्मैथुन लीला के रूप में वह अपना नृत्य करता है। एक लेखक के शब्दों में "मन्द मन्थर गति से मोर मोरनी के पास जाता है और अपनी पूँछ के परों को फैला कर गोल फलक सा बना लेता है। कुछ कदम पीछे हट कर पहले वह मोरनी को इस चित्र पटल का धुंधला अंश देखने को देता है। फिर एकाएक ऐसा चक्कर खाता है कि तस्वीर की पटरी उलट जाती है, और ही नज़ारा दीखने लगता है। चमक दमक से भरी हुई ये हजारों आँखें कहाँ से निकल पड़ीं और घनघोर घटा के नीचे जगमगाने लगीं? एक एक मोर चन्द्रक में नीलम और फीरोज़ा हाथ लगते हैं। ऐसी मनोरम आभा इस संसार में और कहाँ मिल सकती है? मोर का साजबाज सचमुच लासानी है।"

इस अनुपम दृश्य को देखने के लिये ही उज्जयिनी के भवनों में मोरों को पाला

---

१०. इस विषय में पाईक्राफ्ट (Camouflage in Nature p. 210-11) का यह उद्धरण उल्लेखनीय है—No more illuminating example of the evidence which moulded Darwin's interpretation of the manifestations of "sex" or "mate hunger" could be found, than that furnished by the Peacock. The female in this species, is "protectively coloured." The young male, in his first plumage, very closely resembles her. But on attaining matnrity these drab hues are put aside, and are replaced by the gorgeous plumes so familiar to us all. It is, only, however, during the temporary waves of sexual excitement that they can be seen to their full advantage. Then they close to be mere attributes of maleness and they become a panoply of splendour, for every single feather is set on end, and vibrates with the surging passion which possesses the whole body. The long train of ocellated feathers is set on high, and spread like a gorgeous fan, shimmering with a never ceasing play of colour, like burnished metal. And while this is thus spread, naught else can be seen of the bird than the exquisite "peacock-blue" of the head and neck for the train sweeps the ground on either side and effectually hides the dull coloured wings and tail, which is used as a support for the train. Thus posed, he approaches his mate by walking backwards, and then, at what he seems to consider the right distance, he sweeps round in front of her, and sets feathers of the train in rapid vibraton, so that they give forth a sound that is like nothing so much as the patter of falliing rain upon leaves. Then he stands for a few moments before her perfectly still, as if inviting her to contemplate his supreme beauty. But, curiously enough, with true feminine coquetry, she apparently affects to be perfectly unmoved by all this parade, and to be intent only on picking up some unusually delicious tit-bits, which lay scattered around her! Not until she herself is in like manner possessed by a like desire will she respond to his invitations."

जाता था और अलकापुरी में यक्षपत्नी हाथ के कंगनों से ताल दे देकर मोरों को नचाया करती थी।

मोरों का यह नृत्य वर्षाकाल में ही दिखाई देता है क्योंकि इसी समय वे सन्तानोत्पादन करते हैं। ह्विसलर के कथनानुसार यह काल जनवरी से अक्टूबर तक होता है, किन्तु इसमें अण्डा बच्चा देने के असली महीने वर्षा पर अवलम्बित होते हैं। इसका सामान्य समय जून के मध्य से अगस्त तक समझना चाहिए (पृष्ठ ४१०)। स्टुअर्ट बेकर ने यह काल जून के अन्त से सितम्बर तक माना है और यह लिखा है कि इसका सन्तानोत्पादन वर्षा से प्रभावित होता है, जिन स्थानों में वर्षा साल के शुरू में आरम्भ हो जाती है खाद्य सामग्री प्रचुर होती है, वहाँ पक्षी जनवरी से अप्रैल तक अण्डे बच्चे देते हैं, किन्तु जब सूखा समय शुरू हो, खाद्य सामग्री कम हो जाय, तो ये वर्षा आरम्भ होने तक सन्तानोत्पादन नहीं करते। वर्षा आरम्भ होने पर खाद्यान्न और कीड़े प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं, अतः इस समय ये सन्तानोत्पादन करते हैं।[११]

इस समय इनका कामोन्माद से मस्त होना सर्वथा स्वाभाविक है। इस मस्ती में ही मोर नृत्य करते हैं। इस विषय में प्रसिद्ध पक्षिशास्त्री जर्डोन ने लिखा है[१२] कि नर मोर प्रिया को प्रसन्न करने के लिये इस समय अपनी पूंछ को ऊपर उठा लेता है और इसके साथ ही उसका लम्बा बर्ह या कलाप (train) भी ऊँचा उठ जाता है[१३]। यह इसे मोरनियों को प्रसन्न करने के लिये फैलाता और प्रदर्शित करता है। उस में यह शक्ति होती है कि वह अपने परों से विचित्र रीति से खड़खड़ाहट (clatter) कर सके। वह दृश्य बड़ा भव्य होता है, जब बीस तीस मोरों के झुण्ड में नर मादाओं को प्रसन्न करने के लिये अपनी शानदार पूंछ का प्रदर्शन कर रहे हों।

मोर के सम्बन्ध में यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि वह सन्तानोत्पादन के लिए स्वाभाविक रीति से मैथुन नहीं करता, किन्तु नर मोर जब हर्षातिरेक में नृत्य करता है तो इस समय उसके नेत्रों से आनन्दाश्रु निकलते हैं, इन्हें ग्रहण करके ही मोरनी गर्भवती होती है। यह सम्भव है कि कालिदास ने 'शुक्लापांगैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः' (मेघदूत २२) में सम्भवतः इस किंवदन्ती का संकेत किया हो।

किन्तु यह प्रवाद सर्वथा अवैज्ञानिक और असत्य है, मोर यह कार्य प्राकृतिक रूप से करता है। नाचते हुए वह प्रायः मोरनी की ओर दौड़ता है, 'काओं' की ऊँची किन्तु छोटी ध्वनि करता है और इसके बाद मैथुन कर्म करता है[१४]।

मोर के बर्ह या पूंछ के सम्बन्ध में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि छोटे बच्चों में यह नहीं होती। युवा होने पर चौथे वर्ष में ही इसका विकास होता है। इसकी पूँछ पूरी हो जाने पर भी वर्ष भर एक जैसी नहीं रहती। मई में यह परों से पूरी भर जाती है, सन्तानोत्पादन के

११. Stuart Baker :—Game Bird of India Vol III p. 76.
१२. Jerdon J. C. :—the Game Birds and Wild Fowl of India (1864) p. 20
१३. सम्भवतः इस तथ्यको दृष्टि में रखते हुए अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी ने बर्ह की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि इसे यह नाम इसलिये दिया जाता है कि मोर के नाच के समय यह ऊँची उठ जाती है—बर्हति नृत्येनोर्ध्वीभवतीति बर्हम्।
१४. Dharmakumarsinghji :—Birds of Saurashtra, p. 129.

काल में यह इसी प्रकार बनी रहती है, किन्तु वर्षा ऋतु के अन्त में सितम्बर से इसकी पूंछ के पंख झड़ने लगते हैं[१५]। लम्बी पूँछ छोटी और नष्ट हो जाती है। इसके बाद नये पंख आने लगते हैं[१६]। कालिदास ने मेघदूत में इसके पंख झड़ने का उल्लेख करते हुए कहा है कि भवानी अपने पुत्र कार्तिकेय के वाहन मयूर के गलित पंख को पुत्र से प्रीति के कारण कान में धारण करती है (पूर्वमेघ ४८)। इस पर मल्लिनाथ ने लिखा है कि यहाँ गलित का अर्थ है स्वयं झड़ा हुआ, न कि लालच के कारण उखाड़ा हुआ। मोर के झड़े हुए पंख देवी देवताओं का अलंकरण बनते हैं। श्रीकृष्ण का मोर मुकुट प्रसिद्ध है, कालिदास ने इसका संकेत ग्वाले का रूप धारण करनेवाले विष्णु के रूप में किया है। इस प्रकार देवी देवताओं के साथ सम्बद्ध होने के कारण भारत में अनेक स्थानों पर मोर को पवित्र एवं अवध्य समझा जाता है।

मोर की वाणी—आधुनिक विहगविद्याविशारदों के मतानुसार मोर की बोली दो प्रकार की होती है—(१) ऊँची तथा कर्कशध्वनि (२) छोटी ध्वनि। ह्विसलर ने पहली ध्वनि के सम्बन्ध में लिखा है कि यह ऊँची तथा तुरही की आवाज की तरह तथा बड़ी बिल्ली के म्याँऊ जैसी होती है। उत्तर भारत में कहा जाता है कि यह 'मेंह आओ' (वर्षा आई) जैसी ध्वनि होती है और वर्षा आने के समय यह पक्षी विशेष रूप से शोर मचाने वाला हो जाता है[१७]।

स्टुअर्ट बेकर ने लिखा है कि यह आवाज दूर से अच्छी और पास से कर्णकटु लगती है। यह बिल्ली की म्याँऊ और तुरही की ध्वनि के बीच की होती है। चाँदनी रातों में प्रायः मोर एक दूसरे की आवाज सुनकर बोलते हैं और रात्रि की नीरवता को भंग करते हैं[१८]।

सालिम अली के कथनानुसार मोर की दूसरी आवाज छोटी तथा हाँफती हुई (gasping shriek) होती है। यह 'का-आन, का-आन' से मिलती है, जल्दी जल्दी छः से आठ बार तक बोली जाती है और इसे बोलते समय मोर के सिर और गले में पम्प जैसी क्रिया होती है[१९]। यही संस्कृत कवियों की केका ध्वनि है। सम्भवतः संस्कृत के कवियों को सिर की क्रिया की सहायता से इसकी उत्पत्ति का ज्ञान था, क्योंकि मल्लिनाथ के मत में इसे केका कहने का

---

१५. Ibid. महाकवि माघ ने शिशुपाल वध (६।४५) शरत् ऋतु में इनके पंख झड़ने का वर्णन करते हुए कहा है—

तनुरुहाणि पुरोविजितध्वने र्धवलपक्षविहंगमकूजितैः।
जगलुरक्षयमेव शिखण्डिनः परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः।

१६. पाणिनि ने मोर की पूंछ के नये पंख (कलाप) उगने के समय दियेजाने वाले ऋण के लिये एक विशेष सूत्र 'कलाप्यश्वत्थयवबुसाद्वुन्' (४।३।४८) की रचना की है और सिद्धान्तकौमुदीकार ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

यस्मिन्काले मयूराः कलापिनो भवन्ति स उपचारात्कलापी, तत्र देयमृणं कलापकम्।

१७. Whistler:—Popular Handbook of Indian Birds p. 4th ed. p. 479. संस्कृत में इसे मयूर कहने का यह भी कारण है कि 'मयु' जैसी ध्वनि करता है (शब्द कल्पद्रुम—मयुरिव राति शब्दायते)।

१८. Stuart Baker :—Game birds of India Vol III p. 84.

१९. Salim Ali :—The Book of Indian Birds 6th ed. p. 154.

यह कारण है कि यह सिर से ध्वनि करता है[20]। श्री धर्मकुमार सिंह जी ने इसे 'कोक-कोक-कोक-कोक-कोक' की ध्वनि कहा है (पृ० १२६)।

मोर की एक अन्य अकेली ध्वनि धांक संकट की सूचक होती है (धर्म० १२६)। इसकी सुनने और देखने की शक्ति बड़ी तीक्ष्ण होती है, इस कारण यह बहुत कम पकड़ा जाता है। जंगली बिल्ली, बाज़ या गुलदार (Leopard) आदि हिंस्र प्राणियों को देखते ही यह कुछ समय के बाद दोहरायी जानेवाली धांक की ध्वनि से सबको सचेत और सावधान कर देता है।[21]

सुप्रसिद्ध विहगविद्याविशारद सालिम अली ने लिखा है—मोर सबसे पहला जन्तु है जो भोजन की तलाश में घूमते हुए शेर, चीते आदि हिंसक पशुओं के आगमन को पहिचान लेता है और अपनी वाणी द्वारा जंगल में उनकी प्रगति की सूचना देता है[22]। मोर के द्वारा दी हुई इस चेतावनी को जंगल के दूसरे निवासी अच्छी प्रकार समझते हैं। अतः जहाँ मोर होंगे, वह स्थान हिंस्र प्राणियों से सुरक्षित होगा। संभवतः इसी दृष्टि से कालिदास ने नवविवाहित दम्पती के मनोविनोद के लिए मोरों के नृत्यों वाली गोवर्धन पर्वत की कन्दराओं का निर्देश किया है—

कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु।

रघुवंश ६।५१

मोरों की आदतों के विषय में कालिदास का उनके वृक्ष पर निवास करने (वृक्षेशयाः रघुवंश १६।१४ मि० विक्रमोर्वशी ३।२) का वर्णन सर्वथा स्वाभाविक और वैज्ञानिक है। स्टुअर्ट बेकर ने लिखा है कि मोर ऐसी ऊँची शाखाओं पर रात को बसेरा करना अधिक पसन्द करते हैं, जहां से चारों ओर अच्छी तरह देखा जा सकता हो। जंगल में वे एक ऊँचा वृक्ष चुनते हैं। किन्तु प्रायः ऐसा वृक्ष खुले मैदान में चुनते हैं। बेकर ने इस सम्बन्ध में एक ऐसे विशाल देवदार (Pine) के पेड़ का उल्लेख किया है, जिसके तने पर ६० फीट की ऊँचाई तक कोई शाखायें नहीं थीं, इसके ऊपर ही इससे तीन बड़ी टहनियाँ निकली थीं और इन पर मोरों की कई पीढ़ियों ने बसेरा किया। इस पेड़ की शाखाओं पर हर मौसम में शानदार मोर मोरनियों के विशाल हरम या अन्तःपुर के साथ सदैव पाये जाते थे[23]।

इस विषय में कालिदास के वर्णन की यह खूबी है कि उसने अलकापुरी में यक्ष के घर में पालतू मोर के रात्रिनिवास के लिये दो पेड़ों के बीच में बनाई गई जिस कांचनी वासयष्टि का उल्लेख किया है (मेघदूत ७६), वह ऐसी मणियों से जड़ी हुई है, जिनकी चमक बहुत न पके अर्थात् हरे बाँस के रंग से मिलती है। इस चमक के कारण सोने की बनी हुई यह पीली छड़ हरी प्रतीत होती है और मोर हरे बाँस के रूप में इसे अपना स्वाभाविक विश्रामस्थल समझते हुए संध्या के समय यहाँ विश्राम करने आता है और इस पर बैठता है। यह व्यवस्था उस समय के पक्षिपालन की पद्धति पर सुन्दर प्रकाश डालती है और यह सूचित करती है कि पालतू मोरों को घरों में उनकी प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुसार ही रखने का प्रयास किया जाता था।

---

२०. मल्लिनाथ की टीका—रघुवंश १।३६ पर
के मूर्ध्नि कायन्ति ध्वनन्तीति केका मयूरवाण्यः।

२१. Dharmakumarsinghji :—Ibid p. 129.

२२. Salim Ali :—The Book of Indian Birds 4th ed. p. 300.

२३. Stuart Baker :—Game Birds of India Vol. III p. 8.

मोर पर विभिन्न ऋतुओं के प्रभाव के विषय में कालिदास का यह कथन भी यथार्थ है कि वह वर्षा ऋतु में अधिक क्रियाशील होता है और शरद् एवं ग्रीष्म ऋतुओं में सर्वथा निष्क्रिय हो जाता है। वर्षा में इसकी क्रियाशीलता का प्रधान कारण इसका सन्तानोत्पादन काल है। श्री धर्मकुमार सिंह जी ने लिखा है कि इसके नीड निर्माण का समय जून से अक्टूबर तक होता है, यह बहुत कुछ वर्षा पर निर्भर है, फिर भी इसके मुख्य महीने जुलाई तथा अगस्त हैं।[२४]

वर्षाकाल में सन्तानोत्पादन के लिए आवश्यक प्रणयलीलाओं के कारण मोर का क्रियाशील होना सर्वथा स्वाभाविक है। इस समय कामोन्माद उनमें विलक्षण चञ्चलता ला देता है और वे मस्ती से झूम उठते हैं, चिल्लाने लगते हैं और प्रियाओं को प्रसन्न करने के नृत्य आरम्भ कर देते हैं। आकाश में बादलों का उमड़ना और गरजना उनमें बड़ी बेचैनी उत्पन्न कर देता है और वे भी घनगर्जन के साथ अपनी केका वाणी बोलना आरम्भ करते हैं। इसीको कालिदास ने इस रूप में कहा है कि पृथ्वी मोर के शब्दों द्वारा बादलों का स्वागत करती है (रघुवंश ७।६९)। बादलों के गर्जन के साथ उनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उससे मिलता-जुलता शब्द सुनाई देने पर भी मयूर आनन्द से बोलने और नाचने लगते हैं। कालिदास के कथनानुसार गर्मी के दिनों में राजा कुश के सरयू नदी में जलविहार के समय जब स्त्रियाँ गाकर, मृदंग बजाने के समान थपकी देकर जल में जो शब्द उत्पन्न कर रही हैं, उसे सुनकर तट पर बैठे हुए मोर अपनी पूंछ उठाकर और बोलकर उनका अभिनन्दन कर रहे हैं (रघुवंश १६।६४)।

मोर के भोजन के विषय में स्टुअर्ट बेकर ने लिखा है कि वे अपने भोजन में सर्वभक्षी हैं, वे सब प्रकार का तथा किसी भी तरह का अनाज, नई हरी फसलें, कीड़े, छोटे रेंगने वाले तथा स्तनपायी प्राणी और साँप तक खा जाते हैं।[२५] संस्कृतसाहित्य में इसके साँप खाने का बहुत उल्लेख है, इसीलिये संस्कृत में इसका एक नाम भुजंगभुक् (अमरकोश २।५।३०) है। मोरों द्वारा साँपों के भक्षण के कारण कालिदास ने सम्भवतः गोवर्धनगिरि की कन्दराओं को विवाह के बाद की प्रणयलीला के लिये सर्वथा निरापद माना है (रघुवंश ६।५१)। हेमाद्रि ने इस श्लोक की टीका करते हुए लिखा है—तत्र मयूरसंचारेण सर्पाभावात्संभोगे निश्शंकता। चारित्रवर्धन ने इसका समर्थन करते हुए लिखा है—तत्र मयूरसंचारेण सर्पाद्युपद्रवनिरासस्तेन सुरतनिश्शंकता च्यते। क्षीरस्वामी के मतानुसार मोर को संस्कृत में मयूर इसलिये कहते हैं कि वह साँप को मारता है—मीनात्यहीन् मयूरः।

आज हमारी मातृभूमि पर महासर्प (Dragon) को अपना राष्ट्रीय प्रतीक मानने वाले दुर्दान्त दस्यु देश चीन ने बर्बरतापूर्ण आक्रमण किया है, इसका उत्तर हमने सर्पभक्षक मयूर को अपना राष्ट्रीय पक्षी बनाकर दिया है। यों मोर "कृषि को बढ़ाने वाले बादलों का आवाहक है, सृजन का, शस्य का, शान्ति और आनन्द का प्रतीक है, किन्तु यदि उसके क्षेत्र सांप उत्पात मचाने लगें तो वह उनका कलेवा करना भी जानता है।"

मोर के निवास स्थान के बारे में सालिम अली ने लिखा है कि यह घने जंगलों, मैदानों

---

२४. Dharmakumarsinghji :—Ibid p. 130.

२५. Stuart Baker :—Game Birds of India Vol. III p. 83. Mason C. W. and Lefroy, H.M. :—The Food of Birds in India (1912) p. 225, They feed on grain, birds, shoots of grass, insects, small lizards and snakes.

ग्रौर पहाड़ियों में ऐसे स्थानों में रहता है, जो नदियों के किनारे हों।[२६] कालिदास ने भी इनका वासस्थान पर्वत (रघुवंश ६।५१, मेघदूत २२), वन ग्रौर तालाब (रघुवंश २।१७, १४।६९) माना है।

कालिदास ने मोर के विषय में यह लिखा है कि वह घने जंगलों के ग्रतिरिक्त शहरों की बस्तियों के ग्रासपास के बगीचों (पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां, रघुवंश ६।९) में रहता है। ग्राधुनिक पक्षिशास्त्रियों का यह मत है कि मोर भारत में जिन स्थानों में ग्रवध्य माना जाता है, वहाँ वह बस्तियों के पास बहुत पाया जाता है। बेकर के कथनानुसार ऐसे स्थानों में यह गाँवों के बिलकुल पास रहते हुए प्रातः तथा सायंकाल फसलों को खाता है, यात्रियों द्वारा छेड़ा जाने पर भी सड़कों पर खड़ा रहता है तथा भारतीय गाँवों के चारों ग्रोर पाये जाने वाले कुंजों, बगीचों तथा जंगलों में ग्रपने परिवार ग्रौर पत्नियों का नेतृत्व करते हुए विचरण करता है।[२७] सौराष्ट्र के भूतपूर्व रजवाड़ों में मोर के ग्रवध्य होने के कारण यह स्थिति है कि पोरबन्दर ग्रादि में मोर बिल्कुल निर्भीक होकर लोगों के घरों में घूमते हैं ग्रौर बहुत उत्पात मचाते हैं।

भौगोलिक वितरण—मोर ग्राजकल भारत के पूर्वी भाग-उत्तरपूर्वी ग्रासाम को छोड़ कर सर्वत्र पाया जाता है। बेकर के मतानुसार यह पूर्वी बंगाल में सुन्दरवन के ग्रधिकांश भाग में नहीं पाया जाता, चौबीस परगना, नदिया तथा पास के जिलों में भी नहीं मिलता।[२८] ट्रावनकोर में कम पाया जाता है। इसके ग्रतिरिक्त शेष भारत में यह सर्वत्र पाया जाता है। हिमालय पर्वत माला में ५-६ हजार फीट की ऊँचाई तक मिलता है। कालिदास ने भी इसका वर्णन माल्यवान् पर्वत (तुंगभद्रा नदी के तीर पर दक्षिण भारत में, रघुवंश १३।२७), विन्ध्याचल (मेघदूत २४), उज्जयिनी (मेघदूत ३६), देवगिरि (मध्यभारत में उज्जैन मन्दसौर के बीच में चम्बल के पास, मेघदूत ४८), गोवर्धन (रघुवंश ६।५१), ग्रयोध्या (रघुवंश १।३९, २।१७, १४।६९, १६।१४, १६।६४, १९।३७), ग्रलकापुरी (मेघदूत ६५, ७६) में किया है। कालिदास ने इसका वर्णन भारत के पूर्वी भाग में नहीं किया।

मोर भारत का विशेष पक्षी है। जातक साहित्य से हमें यह ज्ञान होता है कि भारतीय व्यापारी इसे वाणिज्य की दृष्टि से बेबीलोनिया ले गये थे।[२९] यह कहा जाता है कि योरोप में इसके प्रवेश का श्रेय सिकन्दर की विजयों को है। सुन्दर एवं भव्य पूंछ के कारण इसे पालतू बनाना स्वाभाविक था। किन्तु निश्चितरूप से यह बताना सम्भव नहीं है कि इसे कब पालतू बनाया गया। कालिदास के ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि उस समय इसे पालने का रिवाज था ग्रौर राजप्रासादों में तथा धनी व्यक्तियों के घरों में इसे मनोविनोद के लिये बड़े शौक से पाला जाता था। पालतू मोरों को उस समय क्रीडामयूर (रघुवंश १६।१४) या भवनशिखी (मेघदूत ३६) कहा जाता था। ग्रग्निवर्ण जैसे राजा कृत्रिमरूप से बनाई हुई

---

२६. Salim Ali:—Handbook of Indian Birds, 6th ed. P. 72.

२७. Stuart Baker :— Gamebirds of India Vol. III P. 80—81.

२८. Ibid P. 75—76.

२९. बावेरू जातक सं० ३३९

पहाड़ियों (कृत्रिमाद्रि) पर वर्षा ऋतु में मोरों के साथ विहार करते थे (रघुवंश १६।३७)। अलकापुरी के भवनों में चमकीली पूंछ वाले मोर सदैव नृत्य किया करते थे और यक्ष जैसे समृद्ध व्यक्ति अपने घरों में पालतू मोर के रात को बसेरा करने के लिये मणियों से जड़ी हुई सोने की छड़ लगवाया करते थे। महाकवि बाण ने कादम्बरी में चन्द्रापीड के राजगृह में प्रवेश करते समय अन्तःपुर के तीसरे भाग में वैभव की जिन वस्तुओं का वर्णन किया है उनमें ऐसी छड़ें थीं, जिन पर भवनमयूर संध्या के समय बैठा करते थे[३०]।

मोर के बर्ह की सुन्दरता ने प्राचीनकाल में राजा महाराजाओं को अपने गौरवपूर्ण वैभव के प्रदर्शन का बड़ा सुन्दर अलंकरण प्रदान किया था। उस समय राजाओं के छत्रों का एक प्रकार मायूरातपत्र होता था।[३१] इस प्रकार के छत्र का घेरा नाचते हुए मोर के रंग-बिरंगे पंखों की भाँति का होता था, इसमें अनेक रंगों की मणियों का जड़ाव किया जाता था और बीच में मोर का शरीर और मुड़ी हुई गरदन बनायी जाती थी। बाण ने हर्ष चरित (पृ० ६०, २०७) तथा कादम्बरी में इसका उल्लेख किया है[३२]। मुगल युग में शाहजहाँ ने राजकोश की दुर्लभ बहुमूल्य मणियों से अपने राजसिंहासन का निर्माण मयूरासन (तख्ते ताऊस) के रूप में कराया था। भारतीय जनमानस में इसका विशेष स्थान है।[३३] संभवतः भारत के साथ मोर के प्राचीन और घनिष्ठ सम्बन्ध को देखते हुए इसे भारत का राष्ट्रीय पक्षी मानने का निश्चय किया गया है।

---

३०. कादम्बरी (हरिदास सिद्धान्त वागीश भट्टाचार्य का संस्करण पृ. ३४८)

३१. वासुदेव शरण अग्रवाल—कादम्बरी-एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० १२५।

३२. कादम्बरी (हरिदास सिद्धान्त वागीश भट्टाचार्य संस्करण पृ० ४४३)—धवलान्यपि विविध मणिनिकरकलमापैरुत्सर्पिभिश्चूड़ामणिमरीचिभिर्मायूराणीवाराजन्त राज्ञामातपत्राणि।

३३. एक लोक प्रचलित दन्तकथा के अनुसार किसी राजा की रूपवती रानी वर्षा ऋतु में अपने उपवन में नाचते मोर को देखकर ऐसी मुग्ध हुई कि इसी के ध्यान में खोई रहने लगी, मयूर की कूक से उसके हृदय में हूक उठने लगी। राजा ने रानी का मन अनेक प्रकार से बहलाना चाहा किन्तु जब उसका ध्यान मोर से न हटा तो उसने इसे मरवा दिया। इस पर रानी ने अन्न जल त्याग दिया और राजा को अकेला छोड़ वह मयूर की डगर पर चली गयी। व्रज के एक लोक गीत में कहा गया है—'तेरे बिरज में मोर बहुत हैं, कूकत मोर फटैं छतिया'। भारतीय अलंकारों में मयूराकृति कुंडल और वेनी का बन्दन भी मयूरमुखी होता आया है। भारतीय नटों का सबसे प्रिय करतब रस्से पर मोर चाल चलना है। देवताओं की मक्खियाँ मोरछल से भगाई जाती हैं। सुन्दरियों के श्रमबिन्दु मयूरपंखों से बने कलात्मक पंखे से सूखते हैं।

(दैनिक हिन्दुस्तान ५ फरवरी, १९६३ पृ० ४)

२ | चक्रवाक

वैदिक युग से संस्कृत साहित्य में चक्रवाक दाम्पत्य प्रेम का आदर्श उदाहरण तथा प्रतीक माना गया है। अथर्ववेद के सुप्रसिद्ध विवाह विषयक सूर्यासूक्त में इन्द्र से यह प्रार्थना की गयी है कि वह पतिपत्नी को चकवा-चकवी के जोड़े की तरह सदा साथ रहने की प्रेरणा करे।[1] अन्यत्र अश्विनी देवताओं को प्रतिदिन प्रभात के समय आने वाले चक्रवाक और चक्रवाकी से उपमा दी गयी है।[2]
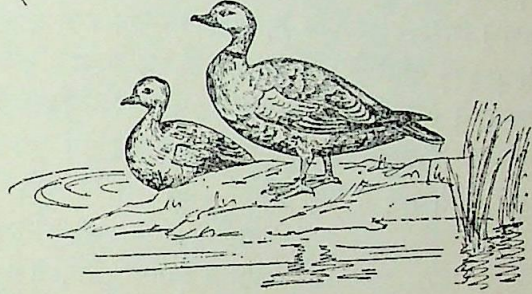
महाकवि कालिदास ने वैदिक परम्परा का अनुसरण करते हुए सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण के आधार पर चक्रवाकों के विषय में अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का संकेत किया है। उसके काव्यों और नाटकों में इस पक्षी के स्वरूप और स्वभाव के विषय में कई रोचक बातें कही गयी हैं। उसने भी दाम्पत्य प्रणय के सम्बन्ध में चक्रवाक को ही आदर्श माना है। रघुवंश में दिलीप और सुदक्षिणा के प्रेम का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि राजा रानी में एक दूसरे के प्रति चकवा-चकवी (रथांग)[3] की भांति प्रगाढ़ प्रेम था, उनकी सन्तान रघु के उत्पन्न होने पर

---

१. अथर्ववेद १४।२।६४ इहेमाविन्द्र संनुद चक्रवाकेव दम्पती।

२. ऋ० २।३६।३ चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रा ऽर्वाञ्च यातं शक्रा।

३. चक्र रथ का एक महत्वपूर्ण अंग है, अतः चक्रवाक को संस्कृत में रथांगनामा भी कहते हैं। इस प्रसंग में इसके विभिन्न नामों का तथा उनकी व्युत्पत्ति का विवरण देना आवश्यक प्रतीत होता है। अमरकोश (२।५।२२) में इसके चार पर्याय देते हुए कहा गया है—कोकश्चक्रश्चक्रवाको रथांगाह्वयनामकः। इनमें पहले तीन नाम उसकी विभिन्न ध्वनियों के आधार पर पड़े हैं। आगे यह बताया जायगा कि उसकी एक ध्वनि को 'को-आंक' 'को-आंक' जैसी होती है, इस आधार पर उसे कोक का नाम दिया गया है। उसकी एक अन्य ध्वनि कर्र जैसी होती है, संस्कृत व्याकरण के द्वित्व के नियमों के अनुसार यह चक्र जैसा शब्द बनेगा। भानुजी दीक्षित ने अमरकोष की व्याख्या (निर्णयसागर प्रेस बम्बई, पंचम संस्करण १६२६) में इसकी व्युत्पत्ति 'करने' का अर्थ देने वाली कृ धातु से करते हुए कहा है—क्रियते निशया वियोगी, रात में विरही किया जाने से यह चक्र कहलाता है। किन्तु इसे चकवे की ध्वनि के आधार पर बनने वाला शब्द मानना अधिक उचित है। वैदिक इंडैक्स (पृ० १।२५२) में मैकडानल और कीथ ने ऐसा ही माना है। चक्र शब्द के कारण ही इसे चक्रवाक कहते हैं (चक्रशब्देनोच्यते)।

यद्यपि वह प्रेम उस पर बंट गया, फिर भी उनके प्रेम में कमी नहीं हुई, प्रत्युत वह बढ़ता ही चला गया—

रथांगनाम्नोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम् ।
विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत ॥

रघुवंश ३।२४

सहचरवृत्ति—दाम्पत्यप्रेम का एक प्रधान तत्त्व पति-पत्नी की सहचरवृत्ति या साथ-साथ रहना है। कालिदास ने चक्रवाक का यह स्वभाव माना है कि इनकी जोड़ी सदा एक साथ विचरण करती है, अतएव उसने इन्हें द्वन्द्वचर (रघुवंश ८।५६) और अवियुक्त (रघुवंश १३।३१) कहा है। लंका की विजय के बाद पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौटते हुए श्रीरामचन्द्र ने सीता को पम्पासरोवर की झांकी दिखाते हुए कहा है—प्रिये, यहां चकवा-चकवी के जोड़े एक साथ रहते हुए एक दूसरे को प्रेम पूर्वक कमल नाल दिया करते थे। तुम से इतनी दूर रहते हुए मैं यही सोचा करता था कि मुझे भी ये दिन कब देखने को मिलेंगे—

अत्रावियुक्तानि रथांगनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि ।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्त्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि ॥

रघुवंश १३।३१

कुमार सम्भव में शिव ने पार्वती को चक्रवाक जैसी वृत्ति से दाम्पत्य जीवन बिताने वाला बताया है। शिवपार्वती प्रणय विहार के लिये गन्धमादन पर्वत पर गये हैं। सन्ध्याकाल समुपस्थित होने पर शिव जी उपासना के लिये अन्यत्र चले जाते हैं और कुछ विलम्ब से लौटते हैं। ऐसे समय में पार्वती के लिये प्रतीक्षा असह्य हो जाती है, वे कोप एवं रोष करके बैठ जाती हैं। उस समय शिव जी उन्हें मनाते हुए कहते हैं—'अकारण क्रुद्ध होने वाली देवि, क्रोध छोड़ो, मुझे सन्ध्या के कारण ही विलम्ब हुआ है, किसी अन्य स्त्री के कारण नहीं। क्या तुम यह यह नहीं जानती कि मैं तुम्हारे साथ सब धर्मों का पालन करने वाला चकवे जैसा सच्चा प्रेमी हूँ—

मुंच कोपमनिमित्तकोपने सन्ध्यया प्रणमितोऽस्मि नान्यया ।
किं न वेत्सि सहधर्मचारिणं चक्रवाकसमवृत्तितया ॥

कुमारसम्भव ८।५१

नैशविरह—चक्रवाक को दाम्पत्य प्रेम का आदर्श बताने के साथ ही कालिदास ने उसे विरह की व्यथा का भी प्रतीक माना है। यह माना जाता है कि चकवा-चकवी दिन भर साथ रहने के बाद रात आने पर बिछुड़ जाते हैं। विधि की यह कैसी विडम्बना है कि दिन भर संयुक्त रहने पर भी रात्रि को इन्हें वियुक्त होना पड़ता है और ये एक दूसरे के

रथांगाह्वय का अर्थ है—चक्र के नाम वाला (रथांगस्य चक्रस्याह्वयो नाम यस्य)। चकवे के कुछ अन्य नाम भी उसकी विशेषताओं को सूचित करने वाले हैं। शब्द कल्पद्रुम (२।४१४) में उसके कतिपय नाम ये हैं—भूरिप्रेमा (बहुत प्रेम करने वाला) द्वन्द्वचर (जोड़े में विचरण करने वाला,) कान्त, कामी, कामुक, रात्रिविश्लेषगामी (रात को बिछुड़जाने वाला)। इसके कामी माने जाने तथा कोक कहलाने से कोकशास्त्र से भी इसका कुछ सम्बन्ध होना सम्भव है।
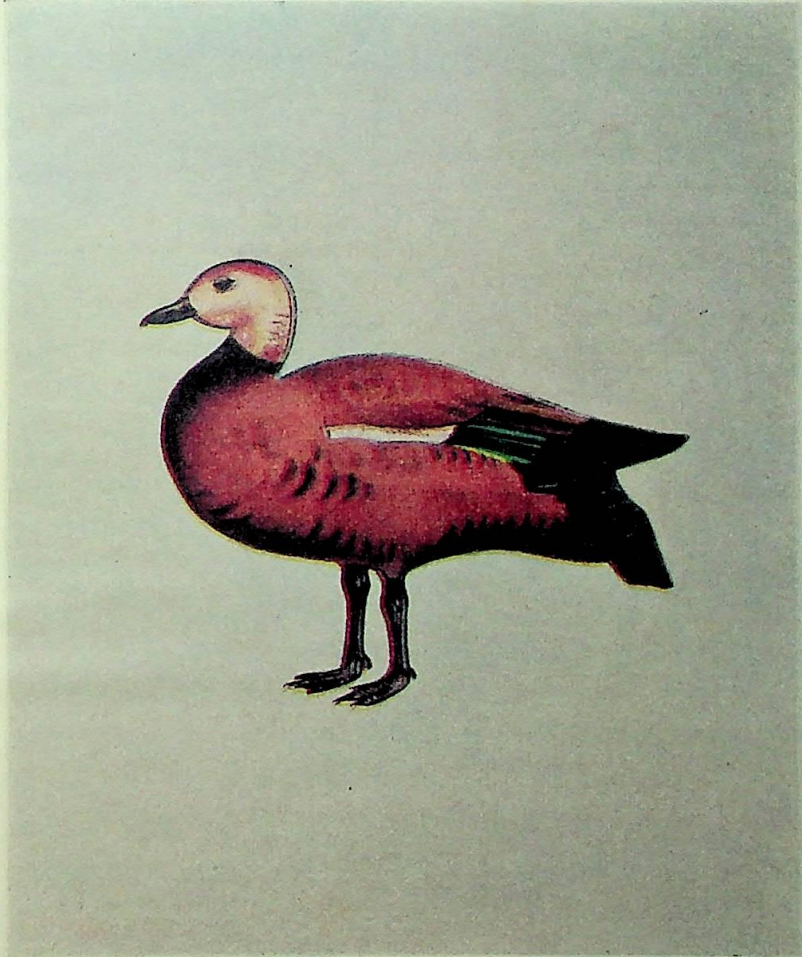
चक्रवाक

पश्य नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरम-
पश्यन्ती आतुरा चक्रवाकी आरौति ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्-चतुर्थ अंक

लिये क्रन्दन एवं चीत्कार करते रहते हैं। जो निशाकाल अन्य सब प्रेमियों के सम्मिलन का मधुर समय है, वह इनके दारुण वियोग की कालरात्रि है। नैश विरह बड़ी सुकुमार कल्पना है और कालिदास ने अपने काव्यों और नाटकों में इसका प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है।

अभिज्ञानशाकुन्तल के तृतीय अंक में जब स्मरसंतप्त दुष्यन्त और शकुन्तला कण्व आश्रम के एक निकुंज में परस्पर प्रणयालाप में संलग्न है, राजा गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव करता है और नव कुसुम के रसपिपासु भ्रमर की भांति मुनिकन्या के अधरपान के लिये उसका मुख ऊपर उठाना चाहता है, तभी नेपथ्य से उनके भावी विरह की सूचक एक ध्वनि आती है। संभवतः गौतमी यह कह रही है—अरी चकवी, अपने प्रिय से विदा लो। रात आ पहुँची है। (चक्रवाकवधुके आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी)

चतुर्थ अंक में जब शकुन्तला दुष्यन्त के पास जाने के लिये आश्रम से विदा होने लगती है, उस समय भी महाकवि ने चक्रवाक के माध्यम से और सखियों के संवाद द्वारा उसे भावी विरह-विपत्ति और दुःख की सूचना दी है। ये संवादपूर्ण रूप से केवल काश्मीरी संस्करण में ही मिलते हैं।[४] पहले अनसूया कहती है कि सखि, यहां आश्रम में कौन ऐसा प्राणी है जो तुम्हारे विछोह से दुःखी नहीं है। देखो, कमलिनी के पत्ते की ओट में बैठा हुआ चकवा अपनी प्रिया के बुलाने पर भी उसका उत्तर नहीं दे रहा और चोंच में कमल की डण्डी पकड़े हुए तुम्हारी ही ओर टकटकी लगाए देख रहा है—

पद्मिनीपत्रान्तरितां व्याहृतो नानुव्याहरति प्रियाम्।
मुखोद्व्ढमृणालस्त्वयि दृष्टिं ददाति चक्रवाकः॥

इस पर शकुन्तला कहती है—सखि, देख कमलिनी के पत्तों की ओट में छिपे हुए अपने चकवे को न देख सकने के कारण यह चकवी घबराकर चिल्ला रही है। इसलिये मैं जिस काम से जा रही हूं, वह पूरा होता नहीं दिखाई देता।

हला प्रेक्षस्व नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति।
दुष्करं खल्वहं करोमि।

इस पर अनसूया उसे सान्त्वना देते हुए कहती है सखि ऐसा नहीं सोचना चाहिये। यह चकवी विरह की लम्बी रातें अपने प्रिय के बिना अकेली ही काट देती है क्योंकि मिलने की आशा बड़े से बड़े विरह के दुःख में भी ढाढ़स बंधाती रहती है—

एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।
गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति॥

अभिज्ञानशाकुन्तल ४।१६

यह सारी घटना शकुन्तला को यह भान कराने के लिये लिखी गई है कि आगे उसके भाग्य में क्या बदा है। चकवी पुकारती है, पर चकवा कोई उत्तर नहीं देता। इसी प्रकार शीघ्र ही शकुन्तला भी पुकारेगी और दुष्यन्त उसका कोई उत्तर नहीं देगा। अनसूया अपनी सखी को सान्त्वना देती है कि विरह की दीर्घरात्रि बीतने के बाद जैसे चकवे चकवी का संयोग होता है, वैसे ही अन्त में दुष्यन्त और शकुन्तला का भी मिलन होगा, इस आशा के आधार

---

४. कालिदास ग्रन्थावली तृतीय संस्करण, तृतीय खण्ड पृ० ६६।

पर शकुन्तला को सब दुःख धैर्यपूर्वक सहन करने चाहियें ।

कुमारसंभव के एक सुन्दर शब्दचित्र (५।२६) में रात के समय बिछुड़े हुए तथा एक दूसरे के लिये क्रन्दन करने वाले चक्रवाकदम्पती को सान्त्वना देने का कार्य पार्वती ने किया है । शिवजी को पति के रूप में प्राप्त करने के लिये पार्वती द्वारा की जाने वाली कठोर तपस्या का वर्णन करते हुए महाकवि ने कहा है कि पौषमास की जिन रातों में अत्यधिक शीतल पवन चारों ओर हिम बखेरता चलता था, उस समय पार्वती सारी रात जल में बैठ कर बिताया करती थी । यहां उनके सामने ही चकवा चकवी का जोड़ा एक दूसरे से बिछुड़ कर चिल्लाया करता था, वे उसे ढाढ़स बंधाया करती थीं :—

निनाय सत्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा ।
परास्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः पुरोवियुक्ते मिथुने कृपावती ।।

कुमार संभव ५।२६

सूर्यास्त के वर्णन में बहुधा कालिदास ने चक्रवाकदम्पती के विरह का उल्लेख किया है (कुमारसंभव ८।६१, ८।३२) । गन्धमादन पर्वत पर सायंकाल की सुषमा का बखान करते हुए शिवजी पार्वती से कहते हैं—फूले हुए कमलों का केसर चोंच में उठाकर ये चकवा-चकवी दैववश एक दूसरे के कण्ठ से अलग होकर चिल्लाने लगे हैं और तालाब का छोटा सा पाट भी इनके लिये बहुत बड़ा हो गया है—

दष्टतामरसकेसरस्रजोः क्रन्दतोर्विपरिवृत्तकण्ठयोः ।
निध्नयोः सरसि चक्रवाकयोरल्पमन्तरमनल्पतां गतम् ।। कुमारसंभव ८।३२

मालविकाग्निमित्र में राजा अग्निमित्र मालविका पर अनुरक्त है और उसे चाहता है, किन्तु उसकी रानी धारिणी उसका प्रबल विरोध करती है । नाटक के अन्तिम अंक में जब राजा धारिणी, विदूषक, परिव्राजिका और मालविका अशोकवृक्ष के पास उसका पुष्पोद्गम देखने के लिए एकत्र होते हैं तो राजा को यह देख कर दुःख होता है कि मालविका इतनी निकट होते हुए भी उसे प्राप्त नहीं है । वह अपने मन ही मन में कहता है—"मैं चकवे की भांति हूं, मेरी प्रिय सहचरी (मालविका) चकवी जैसी है । रानी धारिणी चकवे चकवी को वियुक्त करने वाली रात्रि की तरह हम दोनों को मिलने नहीं देती है ।

अहं रथांगनामेव प्रिया सहचरीव मे ।
अननुज्ञातसंपर्का धारिणी रजनीव नौ ।।

मालविकाग्निमित्र ५।९

कालिदास के कथनानुसार वियोग की व्यथा से पीड़ितों की दशा चक्रवाकदम्पती जैसी हो जाती है । मेघदूत (मेघ २३) में विरही यक्ष ने मेघ को संदेश देते हुए अलकापुरी में अपनी प्रियतमा की पहचान के लिये कहा है कि—"अपने साथी से बिछुड़ी हुई चकवी के समान अकेली रहने वाली तथा मितभाषिणी उसे देखकर ही तुम समझ लोगे कि वह मेरा दूसरा प्राण है—

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं ।
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ।। मेघदूत ८०

उर्वशी के विरह में विह्वल एवं उन्मत्त राजा पुरूरवा विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अंक में विलाप करते हुए जिन वस्तुओं से प्रियतमा के विषय में पूछता है, उनमें एक चक्रवाक भी है। वह उसे संबोधन करते हुए कहता है—हे चकवे, चक्र के समान बड़े नितम्बों वाली (उर्वशी) से बिछुड़ा हुआ और मन में सैकड़ों साधें लिये हुए मैं महारथी राजा तुम से पूछता हूँ कि उर्वशी कहां है ? चकवे से कोई उत्तर न पाने पर राजा उसे उपालम्भ देता हुआ कहता है—"जब सरोवर में तुम्हारी प्रिय सहचरी चकवी कमल के पत्तों की भी ओट में हो जाती है, तब तुम उसे दूर गई हुई समझ कर घबरा कर चिल्लाने लगते हो। अपनी पत्नी से तो तुम इतना प्यार करते हो कि उसका तनिक बिछोह भी तुम से सहा नहीं जाता और मेरे प्रियतमा से वियुक्त होने पर तुम्हारा यह हाल है कि तुम मेरी पत्नी का समाचार देने की बात भी नहीं करना चाहते हो—

सरसि नलिनीपत्रेणापि त्वमावृतविग्रहां
ननु सहचरीं दूरे मत्वा विरौषि समुत्सुकः ।
इति च भवतो जाया स्नेहात्पृथक्स्थितिभीरुता
मयि च विधुरे भावः कान्ताप्रवृत्तिपराङ्मुखः ।।

विक्रमोर्वशीय ४।३९

कालिदास ने दो स्थलों पर अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के आधार पर चक्रवाक के वर्ण का भी बड़ा सुन्दर उल्लेख किया है। उर्वशी के विरह में विह्वल राजा चक्रवाक को संबोधन करते हुए कहता है—गोरोचना और केसर के रंग वाले हे चकवे बताओ कहीं तुमने वसन्त के दिनों में खेलती हुई मेरी सौभाग्यवती स्त्री को देखा है—

गोरोचनाकुंकुमवर्ण चक्र भण माम् ।
मधुवासरे क्रीड़न्ती धन्या न दृष्टा त्वया ।।

विक्रमोर्वशीय ४।३६

गोरोचना का रंग पीला और कुंकुम का लाल-नारंगी सा होता है। आगे यह बताया जायगा कि चकवे का रंग इसी प्रकार का होता है। कुमारसंभव (७।१५) में विवाह के समय मँगलस्नान और शृंगार के बाद पार्वती के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि सुहागिन स्त्रियों ने श्वेत अगर से बनाया हुआ अंगराग (पाउडर) उनके शरीर पर मला और गोरोचना से उनका शरीर चित्रांकित किया। उस समय पार्वती जी इतनी सुन्दर लग रही थी कि उनके रूप के आगे गंगा की वह शोभा भी फीकी पड़ गयी, जिसकी श्वेत बालुका पर लाल चकवे बैठे हों—

विन्यस्तशुक्लागुरु चक्रुरंगं गोरोचनापत्रविभक्तमस्याः ।
सा चक्रवाकांकितसैकतायास्त्रिस्रोतसः कान्तिमतीत्य तस्थौ ।

कुमारसंभव ७।१५

कई स्थलों पर कवि ने चक्रवाक की प्रणयकेलि और आहार का भी वर्णन किया है। शिवजी की तपस्या भंग करने के लिए इन्द्र के आदेश से जब कामदेव उनके पास आये और वसन्तकाल की कामत्तोजक परिस्थितियां और दृश्य उत्पन्न हुए तो इनमें से एक यह भी था कि चकवा अपनी आधी कुतरी हुई कमल नाल चकवी को भेंट करने लगा—

अर्धोपभुक्तेन बिसेन जायां संभावयामास रथांगनामा । कुमारसंभव ३।३७

चकवों द्वारा चोंच में कमलनाल ले कर खाने का उल्लेख कुमारसंभव (८।३२) में भी है।

महाकवि के मतानुसार चक्रवाक की विहार भूमि स्वच्छसलिला गंगा (कुमार ७।१५) यमुना (रघु. १५।३०) सरयू (१६।६३) नदियां तथा उनके बालुकाराशि वाले सैकततट, मालिनी का तीर (शाकु. ३य ग्रंक), पम्पा सरोवर (रघु. १३।३१) हिमालय (कुमार. ५।२६, ७।१५) का प्रदेश तथा गन्धमादन पर्वत (कुमार. ८।३२।५१,६१) हैं।

कालिदास की तूलिका ने उपर्युक्त श्लोकों में चक्रवाक का जो सुन्दर चित्रण उपस्थित किया है, क्या वह काव्यरसिकों के मनोविनोद के लिये कोरी कल्पना है अथवा वास्तविक वैज्ञानिक तथ्य ? क्या वस्तुत: यह लाल पीले वर्ण वाला तथा नदियों के पुलिनों, सैकत भूमियों में विचरण करने वाला जलचर है, मृणाल ग्रादि वनस्पतियों का ग्राहार करता है, दम्पती की भाँति सदा जोड़े में साथ रहने वाला ग्रौर रात को वियुक्त होकर एक दूसरे के लिये करुण क्रन्दन करने वाला पक्षी है ? इन प्रश्नों का यथार्थ समाधान ग्राधुनिक पक्षिशास्त्र से ही मिल सकता है। इसके ग्रनुसार चक्रवाक का स्वरूप निम्नलिखित है।

चक्रवाक का वैज्ञानिक स्वरूप—वर्तमान विहगविद्याविशारद चकवे को Brahmany Duck या Ruddy Sheldrake कहते हैं। पिछली शताब्दी में भारत में पाये जाने वाले ग्रनेक पशु-पक्षियों के साथ यहां की प्रमुख जाति ब्राह्मण होने के कारण ग्रंग्रेजों द्वारा ब्राह्मणी का विशेषण लगाया जाता था जैसे Brahmany Kite, Brahmany Bull। रक्त वर्ण होने के कारण इसे Ruddy का विशेषण दिया जाता है। इसी विशेषता के कारण फारसी में इसका नाम सुर्खाब ग्रर्थात् लाल जलचर है।

चकवा या सुर्खाब सामान्य घरेलू बतख (२४ इंच) से कुछ बड़ा केवल २६ इंच लम्बा पक्षी है। इसकी चोंच तथा पैर काले रंग के होते हैं। सिर ग्रौर गर्दन पीली भैंस जैसी पीतवर्ण (Buff) तथा शरीर के पंख (Plumage) नारंगी भूरे रंग के होते हैं। पीठ का पिछला भाग ग्रौर कटि प्रदेश काला होता है। इसके डैने या पक्ष (Wings) सफेद, काले तथा चमकीले हरे रंग के ग्रौर पूंछ काली होती है। चकवे का रंग चकवी की तुलना में ग्रधिक चमकीला होता है, इसके गले में काले रंग की कंठी इसे ग्रधिक मनोरम ग्रौर नयनसुभग बनाती है। मादा के गले में यह काली कंठी नहीं होती।

पीले, नारंगी, भूरे, सुनहरे, हरे, काले ग्रादि रंगों के समिश्रण से चकवे को ग्रद्वितीय सौंदर्य प्राप्त हुग्रा है। इसी विशेषता के कारण सुर्खाब के पर बड़े गौरव ग्रौर सम्मान का प्रतीक माने जाते हैं, सम्भ्रान्त व्यक्तियों द्वारा धारण किये जाते हैं ग्रौर सुर्खाब के पर का मुहावरा प्रचलित है। ग्रनेक रंगों के कारण वह ग्रत्यन्त ग्राकर्षक ग्रौर मनोरम प्रतीत होता है। इनके कारण चकवे की पहचान बड़ी ग्रासान है। यह बतख जाति के ग्रन्य सभी पक्षियों से ग्रपने पीले सिर ग्रौर नारंगी ग्रीवा के कारण पृथक् प्रतीत होता है। उड़ान में ग्रपने पंखों के श्वेत, हरे ग्रौर पूंछ के काले रंग से तथा उड़ते समय कर्र-कर्र की कर्कश तथा को-ग्रांक की ऊंची ग्रावाज से झट पहिचान लिया जाता है।

हिरण्यहंस—चकवे के दो रंग मुख्य हैं—पीला ग्रौर नारंगी। इसी कारण कालिदास के विरही पुरूरवा ने चक्रवाक को गोरोचनाकुंकुमवर्ण के नाम से सम्बोधित किया है। इसका पीला सुनहला रंग सोने की भ्रांति उत्पन्न करता है। इसे देख कर ऐसा प्रतीत होता

है कि विधाता ने किसी सोने के खिलौने में प्राण फूंक दिये हैं और यह सामान्य सोना नहीं है, किन्तु कुंकुम या सिन्दूर की डिबिया में दबा कर रखा गया सोना है। इसके सुनहले (हिरण्य) रंग के कारण तथा हंस के साथ गहरा शारीरिक साहश्य[५] होने से कालिदास ने इसे सुनहले हंस का भी नाम दिया है और कुमार सम्भव के दो स्थलों (१३।२७, तथा ३९) में इसका वर्णन किया है। यह स्पष्ट है कि कालिदास द्वारा वर्णित चक्रवाक के रंग सर्वथा स्वाभाविक और वास्तविक हैं।

चकवा हमारे देश में बारह मास रहने वाला नहीं, किन्तु यायावर या प्रव्रजनशील (Migratory) पक्षी है। यह शीत ऋतु के आरम्भ में, दिवाली के समय अक्टूबर नवम्बर में यहां आता है और मार्च अप्रैल में इस देश को छोड़ कर उत्तर की ओर चला जाता है। ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु में यह हमारे देश में नहीं पाया जाता। यह सन्तानोत्पादन के लिये उत्तर में चला जाता है और यह कार्य दक्षिणी रूस, बाल्कान प्रायद्वीप, मध्य एशिया, चीन और जापान में करता है। किन्तु शरद ऋतु आरंभ होते ही दक्षिण की ओर उत्तरी अफ्रीका, भारत, लंका, बर्मा, दक्षिणी चीन और फारमोसा की तरफ प्रव्रजन करता है। यह हमारे देश के सभी भागों में अक्टूबर से अप्रैल तक उपयुक्त स्थानों में पाया जाता है।

शरत्काल में बाहर से आने के कारण ही आदिकवि वाल्मीकि ने सम्भवतः चक्रवाक को अभ्यागत का विशेषण दिया है।[६] कालिदास ने भी शीतकाल में ही भारत में चक्रवाक का वर्णन किया है। पहले यह निर्देश किया जा चुका है कि पार्वती पौष मास (जनवरी-फरवरी) में रात को शीतल जल में तपस्या करते हुए विरह से व्यथित चक्रवाक दम्पती को आश्वासन दिया करती थी। इस विषय में कालिदास का सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण मध्यकालीन कवियों की तुलना में अधिक यथार्थ और सराहनीय है। उदाहरणार्थ हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बिहारी ने काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिये यह कहा है कि वर्षा ऋतु में बादलों की सघनता के कारण अन्धकार हो जाने पर दिन रात्रि में परिणत हो जाता है, यह जानना कठिन हो

---

५. Whistler:—Popular Handbook of Indian Birds p. 524 हंस के साथ शारीरिक साम्य होते हुए भी चकवे की चोंच अधिकतर चपटी और बतख जैसी होती है। इसकी आवाज भी दूर से राजहंस से मिलती है। (Salim Ali :—The Book of Indian Birds p. 109)

६. अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः स्मरप्रियैः पद्मरजोविकीर्णैः।
महानदीनां पुलिनोपपातैःक्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः॥

किष्किन्धाकाण्ड ३०।३१

रामायणी टीका ने अभ्यागतैः का अर्थ मानसरोवर से आये हुए (मानससरसः समागतैः) किया है, तिलक टीका में भी यही अर्थ किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय महाकवि को यह ज्ञात था कि चक्रवाक हंसों के साथ मानसरोवर से हमारे देश में आते हैं। सालिम अली ने लिखा है कि चकवा लद्दाख और तिब्बत में अप्रैल से जून तक चट्टानों के छेदों में बड़ी ऊंचाई पर तथा चट्टानों से दूर घोंसले बनाकर अण्डे देते है और शरद काल में इस देश में आते हैं। वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धाकाण्ड के सर्ग ३० के निम्न श्लोकों में भी चक्रवाक का वर्णन है :—

प्रसन्नसलिलाःसौम्य कुरराभिनिनादिताः। चक्रवाकगणाकीर्णा विभान्ति सलिलाशयाः॥५ ॥
हंससारसचक्रांगैः कुररैश्च समन्ततः। पुलिनान्यवकीर्णानि नदीनां पश्य लक्ष्मण॥६३॥

जाता है कि अब रात है या दिन । इस परिस्थिति में दिन-रात की पहिचान चकवा-चकवी को देख कर ही की जाती है। यदि वे एक साथ विचरण कर रहे हों तो दिन समझना चाहिये, यदि वे वियुक्त होकर करुण क्रन्दन करें तो निशाकाल मानना चाहिये—

पावस घन अंधियार में रह्यो भेद नहीं जान।
रात हयो सो जानों परै लखि चकई चकवान ॥

इस दोहे में उक्ति वैचित्र्य का चमत्कार है। किन्तु यह वैज्ञानिक दृष्टि से अयथार्थ है, क्योंकि पावस ऋतु में हमारे देश में चक्रवाक होता ही नहीं है।

चक्रवाक के स्वभाव का परिचय देते हुए एक आधुनिक पक्षिविशारद ने लिखा है— "यह खुले जलों, नदियों, समुद्रतटों और खारी दलदलों में पाया जाता है। किन्तु इसका अधिक झुकाव समुद्रतट तथा नदियों के मुहानों की ओर होता है। इसका विशेष प्रिय स्थान रेतीले किनारे हैं"।[७] सालिम अली के मतानुसार यह पानी में रहने की अपेक्षा बालुकामय तीरों पर अधिक पाया जाता है। ह्विसलर ने लिखा है कि भारत में यह पक्षी वस्तुतः ऐसी बड़ी नदियों में पाया जाता है, जहाँ पानी स्वच्छ हो, उसमें वनस्पत्तियां न हों तथा वहां विशाल बालुकातट हों (पृ० ५२५)। यह वर्णन कालिदास के उपर्युक्त वर्णन से बहुत सादृश्य रखता है। उसने गंगा की सैकतराशि में बैठे चक्रवाकों का उल्लेख किया है (कुमार संभव ७।१५)। शत्रुघ्न ने मथुरा के ऊंचे भवन पर चढ़ कर ऐसी यमुना को देखा, जिसमें चक्रवाक विहार कर रहे थे—

तत्र सौधगतः पश्यन्यमुनां चक्रवाकिनीम् ।

रघुवंश १५।३०

सरयू नदी में राजा कुश के साथ जलविहार के समय उसने चकवों का उल्लेख किया है (रघुवंश १६।६३)। पम्पासरोवर में श्रीराम द्वारा सीता को चक्रवाकयुगल दिखाने का (रघु० १३।३१) पहले वर्णन हो चुका है।

चकवे के आहार के सम्बन्ध में कालिदास ने कमलनाल या बिस के खाने का बार-बार उल्लेख किया है (कुमारसंभव ३।३७,८।३२ अभिज्ञानशाकुन्तल ४, १६)। इस विषय में पक्षिविशारदों का आधुनिक मत भी इसी प्रकार का है। वे इसे मुख्य रूप से जल की वनस्पतियां खाने वाला मानते हैं। श्री धर्मकुमारसिंह जी के शब्दों में यह काई या शैवाल (Algae) घास, दाने और जलीय कीट खाता है (पृ० १०३)। ह्विसलर के मतानुसार यह प्रधान रूप से वनस्पतिभोजी है। (पृ० ५२५)। चरते समय यह अत्यन्त सावधान रहता है और तनिक भी संकट आने पर उड़ जाता है। शिकारियों के लिये इसका पकड़ना बहुत कठिन होता है। श्री धर्मकुमारसिंह जी के शब्दों में यह संकट को पहचानने में इतना कुशल होता है कि किसान और शिकारी में भेद कर लेता है. (पृ० १०२)। मुख्य रूप से वनस्पतिभोजी होते हुए भी इसके सम्बन्ध में शिकारियों में यह विश्वास प्रचलित है कि यह गीधों के साथ मुर्दे का मांस खाता है, अतः शिकारी इसका मांस नहीं खाते। (ह्विसलर पृ० ५२५)।

कालिदास ने इसे दाम्पत्य प्रेम का प्रतीक मानते हुए सदा जोड़े में विचरण करने वाला (द्वन्द्वचर रघुवंश ८।५६।१३,३१) तथा साथ रहने वाला (अवियुक्त) कहा है। इस विषय

७. Dharmkumarsinghji;—Birds of Saurashtra P. 102

में आधुनिक मत ह्विसलर के शब्दों में इस प्रकार है "यह प्रायः जोड़े में पाया जाता है। ये जोड़े अपना अधिकांश समय जल के बालुकामय तीरों पर व्यतीत करते हैं। ये पानी में बहुत कम प्रविष्ट होते हैं, किन्तु जब घुसते हैं तो बहुत अच्छा तैरते हैं"।[८] ब्लैनफोर्ड ने इनके द्वन्द्वचर होने की पुष्टि करते हुए लिखा है कि भारत में यह जाति सब प्रकार की नदियों पर बहुत मिलती है। सामान्यतः इस जाति के पक्षी दिन के समय नदीतट की बालुका पर जोड़ों के रूप में बैठे होते हैं[९]।

चक्रवाक के विषय में सबसे सुमधुर कल्पना रात के समय दम्पती के वियोग की है। संस्कृत वाङ्मय के एवं हिन्दी साहित्य के कवियों ने इनके नैश विरह का बड़े विस्तार से वर्णन किया है[१०]। यह कहा जाता है कि सन्ध्या का आगमन होते ही दोनों एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं और रात भर एक दूसरे के लिए करुणाक्रन्दन करते रहते हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि इस समय चकवा नदी के एक तट पर तथा चकवी दूसरे तट पर होती है। ऐसी किंवदन्ती है कि शाहजहां की मृत्यु के बाद जब औरंगजेब को यह कहा गया कि उनके पिता की यह इच्छा थी कि यमुना के दूसरी ओर ताजमहल जैसा शानदार मकबरा उनके लिए बनाया जाय तो औरंगजेब ने यह उत्तर दिया कि मेरे माता-पिता चकवा-चकवी नहीं हैं कि उनकी कबरें यमुना के आर-पार हों। ऐसी भी दन्तकथा है कि चक्रवाकदम्पती में किसी अपराध के कारण शापग्रस्त दो प्रेमियों की आत्माओं का निवास है। उन्हें यह दण्ड मिला है कि वे एक दूसरे को देखते रहें, एक दूसरे की आवाज सुनें, किन्तु रात को आपस में न मिल सकें, नदी के पाट से विच्छिन्न हो कर आमने सामने के तटिनीतटों पर बिछोह की दारुण व्यथा का अनुभव करते हुए करुण चीत्कार करें[११]।

इस किंवदन्ती पर सत्य का आवरण चढ़ाने के लिए चकवे की ऊंची किन्तु को-ओंक जैसी मधुर ध्वनि के बारे में यह माना जाता है कि रात को चकवे के विरह से संतप्त तथा उससे मिलने को विकल चकवी नदी के एक तट से निशीथ की नीरवता को मार्मिक चीत्कार से भंग करती हुई कहती है—"चकवा, आऊं।" शाप के परिणामस्वरूप दूसरे तट पर रहने को विवश चकवा अपनी प्रेयसी को उत्तर देता है—"चकवी न आओ।" रात भर वियुक्त रहने के बाद पौ फटने पर ऊषाकाल में सूर्योदय की पहली किरणों के साथ ही शाप की अवधि पूर्ण होने पर चकवे-चकवी का पारस्परिक मिलन संभव होता है।

इस कवि कल्पना में वैज्ञानिक सत्य कहां तक है ?

पक्षियों का सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले वर्तमान विहंगविद्याविशारद इस कल्पना को आंशिक रूप से ही यथार्थ मानते हैं। ह्विसलर के कथनानुसार इसमें इतना सत्य है कि चकवा चकवी सामान्य रूप से दिन में विश्राम करते हैं और एक साथ बैठे या खड़े रहते हैं, किन्तु रात को आहार ढूंढने के समय वे एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं[१२]। इसी ने संभवतः नैशविरह की

---

८. Whistler: —Ibid p. 525

९. Fauna of British India: —Birds, First ed. Vol IV (1898) P. 429.

१०. इनके कुछ उदाहरण ये हैं—किरातार्जुनीय ६।३,४,१३,१४,३०, शांर्ङ्गधरपद्धति ३५९५—७, सहित्यदपर्ण पंचम परिच्छेद (मोतीलाल बनारसीदास पृ. १६५)

११. Hobson Jobson P. 112, Whistler : Ibid P. 525

उपर्युक्त कल्पना को जन्म दिया है। एक अन्य प्रसिद्ध पक्षिशास्त्री स्टुअर्ट बेकर ने लिखा है—"रात्रि के समय आहार की तलाश में पक्षी प्रायः एक दूसरे से बहुत दूर चले जाते हैं और वे एक दूसरे को जिन ध्वनियों में पुकारते हैं उन्हें इस रूप में समझा जाता है—चकवा पूछता कि चकवी मैं आऊं। चकवी उत्तर देती है, नहीं आओ। तब चकवी पूछती है हे चकवे, मैं आऊं। उसे भी यही उत्तर मिलता है—चकवी नहीं आओ।[१३] वस्तुतः रात के समय चकवे चकवी की प्रायः सुनी जाने वाली आवाजों ने ही उपर्युक्त कल्पना को जन्म दिया है। राओल के शब्दों में "शीतकाल के महीनों में नदीतट पर यात्रा करने वाला कौन ऐसा व्यक्ति है, जिसने रात को कुछ समय बाद बार बार दोहरायी जाने वाली क्वांको क्वांको की ध्वनि न सुनी हो। ऐसा प्रतीत होता है कि इस ध्वनि का उत्तर आमने सामने के तटों से आ रहा है[१४]। इनकी इस ध्वनि से यह भ्रान्ति उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि चकवा-चकवी नदी के आर पार से एक दूसरे को पुकार रहे हैं।

चकवे-चकवी का आहार की खोज में रात के समय एक दूसरे से पृथक् होना तथा रात्रि के अन्धकार में एक दूसरे को ढूंढने के लिए आवाज देना तो आधुनिक पक्षिशास्त्र वैज्ञानिक सत्य मानता है, किन्तु विरहावस्था में उनका नदी के आर पार विभिन्न तटों पर रात्रि के समय निवास करना वैज्ञानिक सत्य नहीं है। राष्ट्रीय महा सभा (कांग्रेस) की स्थापना का प्रयास करने वाले तथा भारतीय पक्षियों का सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले श्री ह्यूम ने यह सत्य ही लिखा कि मेरठ में हिण्डन जैसी बहुत छोटी नदियों के अतिरिक्त दिन में और रात में चकवा-चकवी नदी के एक ही ओर बैठे पाये जाते हैं[१५]।

---

१२. Whistler :—Ibid P. 525

१३. Stuart Baker :—Ducks and Their Allies P. 146.

१४. Raol:—Small Game Shooting in Bengal. (1899) p. 93.

१५. Hume and Marshall :—The Game Birds of India, Burmah and Ceylon (1881) III P. 129.

३ | हंस

कालिदास ने अपने काव्यों तथा नाटकों में लगभग चौंतीस स्थलों में हंस एवं इसके विभिन्न पर्यायों तथा भेदों—राजहंस, कलहंस, कादम्ब, मराल और हिरण्यहंस का उल्लेख किया है और इनके अनेक सुन्दर शब्द चित्र प्रस्तुत किए हैं। हंस के वर्ण, निवास भूमि, प्रव्रजन, ध्वनि, खाद्य सामग्री, गति, स्वभाव और नीर क्षीर विवेक के विषय में महाकवि ने महत्वपूर्ण संकेत दिए हैं। यहाँ पहले उनके मतानुसार हंसों की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख करके इनका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जायगा।

शुक्लता—कालिदास के हंसों की पहली बड़ी विशेषता उनका श्वेत वर्ण है। संस्कृत कवियों के वर्णनानुसार यश शुभ्र वर्ण का होता है। कालिदास के कवित्वपूर्ण शब्दों में हंसों के झुण्डों में, आकाश के नक्षत्रों में, कुमुद पुष्प वाले जलों में जहाँ कहीं श्वेतिमा के दर्शन होते हैं, वह रघु की धवल कीर्ति का ही विस्तार है—

हंसश्रेणीषु तारासु कुमुदवत्सु वारिषु।
विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव ॥

रघुवंश ४।१६

कुमार संभव में (८।८२) शिव पार्वती की मधु-यामिनी की शय्या का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि इसकी चादर हंस के पंखों के समान शुभ्र थी,[1] गंगा के तीर के समान मनोहर थी, जिस प्रकार रोहिणीपति चन्द्रमा शरत्काल के उजले बादलों की सेज पर सोता है, वैसे ही शिवजी ने पार्वती के साथ उजली शय्या पर शयन किया—

तत्र हंसधवलोत्तरच्छदं जाह्नवीपुलिनचारुदर्शनम्।
अध्यशेत शयनं प्रियासखः शारदाभ्रमिव रोहिणीपतिः ॥

कुमारसंभव ८।८२

ऋतुसंहार (३।२) में शरत्काल की सुषमा का बखान करते हुए कहा गया है कि कई वस्तुएं इस समय प्रकृति को श्वेत बना रही हैं, कास के फूलों ने धरती को धवल बनाया है, चन्द्रमा की ज्योत्स्ना रातों को शुभ्र बना रही है, हंसों ने नदियों के जलों को, कुमुद के फूलों ने तालाबों को, फूलों के भार से लदे सप्तपर्णों ने वनों को तथा मालती के फूलों ने बगीचों को

---

१. कादम्बरी में बाण ने इसी उपमा का प्रयोग करते हुए कहा है कि चन्द्रापीड ने अपने पिता को हंसधवल शयनतल पर बैठे देखा (पी० एल० वैद्य द्वारा सम्पादित कादम्बरी अनुच्छेद ८६।) मुद्राराक्षस में (३।२०) राजहंसों की शुक्लता हास्य के समान शुभ्र बतायी गयी है—हास्यश्रीराजहंसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्वः। मि० मृच्छकटिक चतुर्थ अंक विहंगवाटीका वर्णन—इतः पिण्डीकृता इव चन्द्रपादाः राजहंसमिथुनानि। अर्थात् हंसों के जोड़े ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों चन्द्रमा की किरणें पुंजीभूत हो गयी हों।

शुक्ल बना दिया है—

काशैर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो
हंसैर्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि ।
सप्तच्छदैः कुसुमभारनतैर्वनान्ताः
शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः ।।

ऋतुसंहार ३।२

हंसों की प्रिय निवास भूमि—(क) मानसरोवर—कालिदास के हंसों का प्रिय निवास स्थान मानसरोवर है, इसलिये रघुवंश (१३।५५) में उन्हें प्रियमानस कहा गया है । यक्ष के शब्दों में, बादलों की मधुर गरज सुनते ही हंस मानसरोवर जाने के लिये उत्कण्ठित हो उठते हैं—

तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः ।

मेघदूत ११

वर्षा काल आने पर मेघों का दर्शन करते ही हंस मानसरोवर की ओर प्रयाण कर देते हैं और शरदऋतु में वे पुनः इस देश में लौट आते हैं ।[२] विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अंक में, उर्वशी के विरह में सन्तप्त और उसे ढूंढने में तत्पर राजा यह कहता है कि मानसरोवर जाने के लिये उत्सुक चित्त वाले राजहंस बादलों से काली होने वाली दिशाएं देखकर ही कूजन कर रहे हैं । यह ध्वनि उनकी है, मेरी प्रिया के बिछुओं की छम-छम नहीं है। अच्छा जब तक मानसरोवर के लिए उत्सुक पक्षी इस तालाब से उड़ नहीं जाते, तब तक इनसे अपनी प्रियतमा का समाचार जानना चाहिए—

मेघश्यामा दिशो दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसाम् ।
कूजितं राजहंसानां नेदं नूपरशिञ्जितम् ।।४।३०।।
भवतु यावदेते मानसोत्सुकाः पतत्रिणः सरसोऽस्मान्नोत्पतन्ति
तावदेतेभ्यः प्रियाप्रवृत्तिरवगमयितव्या ।

मेघदूत में विरही यक्ष ने मेघ का पथनिर्देश करते हुए यह आश्वासन दिया है कि अलकापुरी तक की यात्रा उसे अकेले नहीं करनी होगी, किन्तु कैलास पर्वत तक की यात्रा करने वाले राजहंस भी अपनी चोंच में कमल-नाल लिए हुए आकाश में उसके साथ चलेंगे ।

आकैलासाद्विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः ।
संपत्स्यन्ते नभसि भवतां राजहंसाः सहायाः ।।

मेघदूत ११

कुमार संभव (१४।३५) में कार्तिकेय के सेनापतित्व में सुदेवताओं की सेना का मेरू पर्वत

२. संस्कृत साहित्य के अन्य ग्रन्थों में भी इसका बहुत वर्णन हुआ है । मि० मृच्छकटिक ५।१, हंसैर्यिया-सुभिरपाकृतमुन्मनस्कैः । ५।२३, हंसैरुज्झितपंकजैरतितरां सोद्वेगमुद्वीक्षितः । ५।५, हंसैः प्रडीनैरिव । साहित्य दर्पण (७।२३) ने कविसमयों का वर्णन करते हुए कहा गया है—जलधरसमये मानसं यान्ति हंसाः । हरिवंश पुराण (१।२५।२०, चित्रशाला प्रेस, पूना)—चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे । इस विषय में रामायण का उल्लेख चक्रवाक के प्रकरण की टि० सं० ६ में देखिये ।
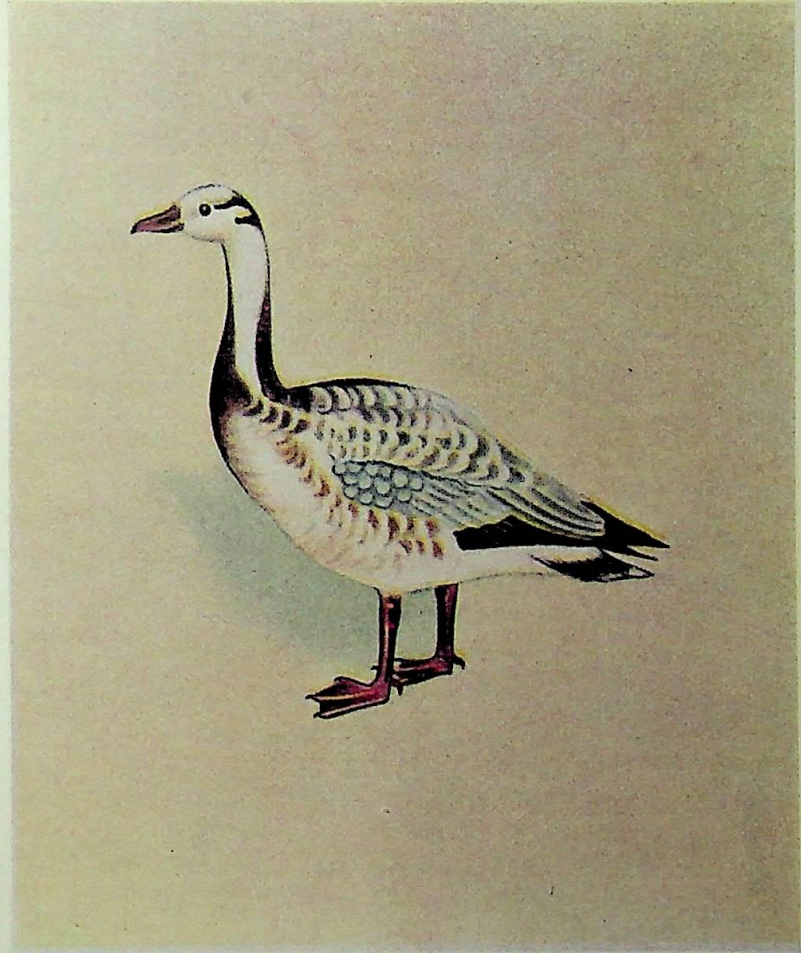
राजहंस

आकैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः ।
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥

मेघदूत-११

पर वर्णन करते हुए कहा गया है कि—जब सेना के प्रयाण से उठी हुई धूलि ने आकाश और सूर्य को ढक लिया तो इसे वर्षा ऋतु के बादल समझ कर हंस मानसरोवर की ओर जाने लगे तथा मोर आनन्द से नाचने लगे—

> घनैर्विलोक्य स्थगितार्कमण्डलै-
> श्चमूरजोभिर्निचितं नभः स्थलम् ।
> अयायि हंसैरभि मानसं घन—
> भ्रमेण सानन्दमनर्त्ति केकिभिः ॥

कुमारसंभव १४।३५

इसी प्रकार इस काव्य में अन्यत्र (१७।३६) तारकासुर और कार्तिकेय के भीषण युद्ध का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय आग्नेय बाणों से ऐसा धुंआ उत्पन्न हुआ कि उसने चारों दिशाओं को घनान्धकार से ढक दिया, आकाश घने बादलों से आवृत प्रतीत होने लगा। इसे वर्षा काल समझ कर राज हंस बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने जल्दी ही मानसरोवर जाने की इच्छा की—

> दिक्चक्रवालगिलनैर्मलिनैस्तमोभि-
> र्लिप्तं नभःस्थलमलं घनवृन्दसान्द्रैः ।
> धूमैर्विलोक्य मुदिताः खलु राजहंसा
> गन्तुं सरः सपदि मानसमीषुरुच्चैः ॥

कुमार संभव १७।३६

रघुवंश में इन्दुमती के स्वयंवर के प्रकरण में जब सुनन्दा उसे विभिन्न भूपतियों का परिचय कराते हुए राजा परन्तप से परिचय कराने के बाद दूसरे नरेश के पास ले जाती है तो कवि ने इन्दुमती की उपमा मानसरोवर में रहने वाली ऐसी राजहंसी से की ह, जो हवा से उठाई लहरों द्वारा एक कमल से दूसरे कमल के पास पहुँच जाती है। इसी तरह सुनन्दा की बेंत की छड़ी के इशारे से राजकन्या परन्तप से अगले राजा के पास पहुँच गई—

> तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता
> राजान्तरं राजसुतां निनाय
> समीरणोत्थेव तरंगलेखा
> पद्मान्तरं मानसराजहंसीम्

रघुवंश ६।२६

(ख) **अलका**—हंसों का दूसरा निवास स्थान मानसरोवर के पास कुबेर की राजधानी अलकापुरी नामक नगरी है। इसमें अपने घर की बावड़ी का वर्णन करते हुए यक्ष ने मेघ को कहा है—'यहाँ तुम्हें एक बावड़ी मिलेगी, जिसकी सीढ़ियों पर नीलम जड़ा हुआ है और जिसमें चिकने वैदूर्य मणि के डंठल वाले बहुत से सुनहले कमल खिले होंगे। इसके जल में बसे हुए हंस इतने सुखी हैं कि मानसरोवर के इतना पास होते हुए वे मेघ को देखकर भी वह वहां जाना नहीं चाहेंगे—

> वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
> हेमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।

यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसा ॥
मेघदूत ७३

अलकापुरी के अपूर्व वैभव और सौन्दर्य का काल्पनिक वर्णन करते हुए कहा गया है कि यहाँ पेड़ों पर सदा फूल आते रहते हैं, इन पर भौंरे हमेशा मण्डराते रहते हैं, कमल के फूल साल भर खिलते हैं और उनको हंस चारों ओर से घेरकर करधनी सी बनाते हैं—

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पाः ।
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः ॥ मेघदूत ६५ प्र०

(ग) **अन्य निवास स्थान**—हंसों के अन्य निवास स्थान गन्धमादन पर्वत (विक्रमोर्वशीय ४र्थ अंक) सुमेरु पर्वत (कुमार० १३।३६, १४।३५, १७।२७, १७।३६) गंगा (कुमार० १।३०, १०।३३) सरयू (रघु० १६।५४, ५६, १६।४०) दशार्ण (मेघदूत २६) हैं। शीतकाल में हंसों के मानसरोवर से गंगातीर पर लौटने का स्पष्ट उल्लेख पार्वती की शैशव दशा के वर्णन के प्रसंग में इस प्रकार किया गया है–

"स्थिर बुद्धि वाली पार्वती जी ने जब पढ़ना आरम्भ किया तो पूर्वजन्म की सभी विद्याएं उन्हें वैसे ही अपने आप स्मरण हो आयीं जैसे शरद् ऋतु के आ जाने पर गंगा जी में हंसों के समूह आ जाते हैं या अपने आप चमकने वाली जड़ी बूटियों में रात में चमक आ जाती है —

तां हंसमालाः शरदीव गंगां महौषधिं नक्तमिवात्मभासः ।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ॥
कुमार० १।३०

हंसों का स्वभाव—इसके सम्बन्ध में कालिदास ने यह लिखा है कि वह झुण्डों में रहता है। वैदिक काल से हंसों को श्रेणियों या समूहों में रहने वाला कहा गया है । ऋग्वेद में कई स्थलों पर इसका संकेत है[3]। अभी ऊपर शरत्काल में हंसों की मालाओं के आने का उल्लेख किया गया है। (कुमार० १।३०)। प्रयाग में गंगा की शुक्ल तथा यमुना की कृष्ण धारा के संगम का वर्णन करते हुए महाकवि ने श्री रामचन्द्र के मुंह से कहलवाया है कि यह ठीक वैसा है जैसा मानसरोवर से प्रेम करने वाले श्वेत पंखों वाले हंसों और काले धूसर पंखवाले कादम्बों की पंक्तियाँ बैठी हों—

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः ।
रघु० १३।५५

इसी प्रकार हंसों के श्रेणियों (रघु० ४।१६) में रहने, इनके मिलकर कूजन करने (कुमार. १०।१३), एक साथ उड़ने (कुमार० १७।२७) तथा प्रव्रजन करने का कालिदास ने स्पष्ट उल्लेख किया है।

ध्वनि—हंसों की ध्वनि को कालिदास ने बहुत मधुर माना है ।[4] इसकी उपमा उसने

---

३. ऋ० १।१६३।१०, हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते । ऋ० ३।८।६, हंसा इव श्रेणिशो यतानाः ।

४. मिलाइये ऋग्वेद ३।५३।१०, हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो ॥

रमणियों के चलने पर उनके नूपुरों से उत्पन्न होने वाली सुमधुर ध्वनि से की है। पहले राजा पुरूरवा को इनकी ध्वनि से अपनी खोई हुई प्रियतमा उर्वशी की भ्रान्ति का उल्लेख किया जा चुका है। ऋतु संहार में कवि ने कई वार इस उपमा का प्रयोग किया है। ग्रीष्मकाल के वर्णन में कहा गया है, कि इस समय स्त्रियों के महावर से रंगे हुए उन पैरों को देखकर लोगों का जी मचल उठता है जिनमें हंसों के समान रुनझुन करने वाले बिछुए बजा करते हैं—

नितान्तलाक्षारसरागरंजितै-
र्नितम्बिनीनां चरणैः सनूपुरैः।
पदे पदे हंसरुतानुकारिभि-
र्जनस्य चित्तं क्रियते समन्मथम्॥

ऋतु० १।५

इसी प्रकार शरत्काल के आगमन के वर्णन में कहा गया है कि फूले काँस के कपड़े पहने, मस्त हंसों की बोली के सुहावने बिछुए पहने हुए कमल के समान सुन्दर मुखवाली शरद् ऋतु नई ब्याही हुई रूपवती बहू के समान अब आ पहुंची है—

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा
सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या।

ऋतु० ३।१

हेमन्त ऋतु में स्त्रियाँ अपने कमल जैसे पैरों को हंस की मधुर ध्वनि का अनुकरण करने वाले बिछुओं से सुशोभित नहीं करतीं—

न नूपुरैर्हंसरुतं भजद्भिः
पादाम्बुजान्यम्बुजकांतिभाजि।

ऋतु० ४।४

गति—हंसों की गति की चारुता ने कवि को बहुत अधिक प्रभावित किया है।[५] उसका यह मत है कि इनकी चाल युवतियों की चाल से अधिक उत्कृष्ट है, शरत्काल में हंसों ने सुन्दरियों की मनमोहिनी चाल को जीत लिया है—

हंसैर्जिता सुललिता गतिरंगनानाम्।

ऋतु० ३।१७

उर्वशी के विरह में विह्वल राजा पुरूरवा यह समझता है कि हंस ने यह सुन्दर चाल उसकी प्रियतमा से ही सीखी है, इसलिए उसे उर्वशी का अवश्य कुछ पता है—'अरे हंस ! तुम क्या छिपाते हो ? तुम्हारी चाल से ही मैं सब कुछ समझ गया। बताओ, यह सुन्दर चाल तुमने कहाँ से सीखी ? तुमने उस प्रियतमा को अवश्य देखा है, जो नितम्बों के भार से धीरे-धीरे चलती है ॥३२॥ यदि तुमने उस बांकी चितवन वाली (नतभ्रू) सुन्दरी को इस

५. संस्कृत में हंस की व्युत्पत्ति ही उसकी सुन्दर गति के आधार पर की जाती है, देखिये शब्दकल्पद्रुम—हन्ति सुन्दरं गच्छतीति हंसः।

सरोवर के तीर पर नहीं देखा तो बता रे चोर ! तुमने मद से इठलाकर चलने वाली उसकी यह सुन्दर चाल कहाँ से पाई ।।३३।। इसलिये (हाथ जोड़कर) हे हंस, मेरी जिस प्रियतमा की चाल तुमने चुरा ली है, उसे मुझे लौटा दो । क्योंकि यदि चोर के पास चोरी का थोड़ा भी माल मिले तो उसे पूरा माल देना ही पड़ता है—

हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वयाहृता ।
विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ।।३४।।

विक्रमो० ४र्थ अंक

कुमारसंभव की एक सुकुमार कल्पना के अनुसार राजहंसों ने पार्वती से मधुर ध्वनि सीखी और उन्हें अपनी सुन्दर चाल सिखाई । 'यौवन के भार से झुकी हुई पार्वती जब हाव-भाव से चलती थी, उस समय ऐसा जान पड़ता था कि उनके बिछुओं से निकलने वाली मधुर ध्वनि को सीखने के लिये ललचाए हुए राजहंसों ने अपनी हावभरी चाल इन्हें पहले ही सिखा दी हो'[६] —

सा राजहंसैरिव सन्नतांगी,
गतेषु लीलाञ्चितविक्रमेषु ।
व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धै-
रादित्सुभिर्नूपुरसिञ्जितानि ।।

कुमार० १।३४

अज ने इन्दुमती की मृत्यु पर विलाप करते हुए कहा है कि तुम्हारी मीठी बोली कोयलों ने ले ली, तुम्हारा धीरे-धीरे चलना कलहंसियों ने ग्रहण किया, तुम्हारी चंचल चितवन हरिणियों को मिल गई और चुलबुलापन वायु से हिलती हुई लताओं में पहुँच गया—

कलमन्यभृतासु भाषितं,
कलहंसीषु मदालसं गतम् ।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं
पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ।।

रघु० ८।५९

भोजन—हंसों को कालिदास चक्रवाकों की भांति वनस्पतिभोजी मानता है । मान-सरोवर की ओर प्रयाण करते समय वे मार्ग के भोजन के लिये कमलनाल के टुकड़े लेकर चलते हैं—(विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः, मेघदूत ११) । राजा पुरूरवा ने भी मानसरोवर जाने वाले हंसों का सम्बल कमलनाल को ही बताया है (विक्रमोर्वशी ४।३१) ।

नीर-क्षीर-विवेक—संस्कृत साहित्य में नीर-क्षीर-विवेक या दूध को पानी से अलग कर सकना हंस की एक प्रमुख विशेषता मानी गई है । अभिज्ञानशाकुन्तल में कालिदास ने इसका संकेत किया है । छठे अंक के अन्त में इन्द्र के सारथि मातलि द्वारा अपने प्रिय मित्र विदूषक का अपहरण होने पर जब राजा आकाश में उसकी चीख-पुकारसुन कर उसे बचाने

---

६. तुलना कीजिये मृच्छकटिक चतुर्थ अंक—पदगतिं शिक्षमाणानीव कामिनीनां पश्चात्परिभ्रमन्ति राजहंसमिथुनानि ।

के लिये अपना धनुष-बाण उठाता है तो उसे कुछ दिखाई नहीं देता, इन्द्रजाल के प्रभाव से विदूषक एवं उसका गला घोंटने वाला मातलि दोनों ही अदृश्य हैं। विदूषक चीखते हुए कहता है—हाय—हाय ! मैं आपको देख रहा हूँ, पर आप मुझे नहीं देख रहे । मैं तो बिल्ली के पंजों में पड़े हुए चूहे के समान अपने प्राणों से हाथ धो बैठा हूँ । इस पर राजा कहता है—हे छलविद्या के घमण्डी । (तिरस्करिणीगर्वित) अब मेरा बाण ही तुझे देख लेगा । देख मैं यह बाण चढ़ा रहा हूँ और जैसे हंस पानी वाले दूध में से दूध-दूध पी जाता है और पानी-पानी छोड़ जाता है, वैसे ही यह बाण तुझ मारे जाने वाले को मार डालेगा और इस बचाये जाने वाले ब्राह्मण को बचा लेगा—

यो हनिष्यति वध्यं त्वां,
रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम् ।
हंसो हि क्षीरमादत्ते,
तन्मिश्राः वर्जयत्यपः ॥

अभि० ६।२८

ऋतुओं का प्रभाव—हंस पर विभिन्न ऋतुओं के प्रभाव के विषय में कालिदास ने यह मत प्रकट किया है कि ग्रीष्मकाल की समाप्ति पर आषाढ़ मास में आकाश में मेघों का दर्शन होते ही हंस मानसरोवर के लिये प्रयाण आरम्भ कर देते हैं (कुमार० १७।३६, मेघदूत ११, विक्रमो० ४।३०) । शरत्काल में वे मानसरोवर से लौट आते हैं और नदियों के तटों पर अपनी मधुर ध्वनियों तथा कल-कूजन से लोगों का मनोरंजन करते हैं । (ऋतु० ३।८) । इसी समय उनमें कामोन्माद जागृत होता है। वर्षाकाल में मयूर कामोन्माद के कारण नृत्य कर रहे थे, वर्षा की समाप्ति के साथ उनकी कामक्रीडा और नर्तन समाप्त हो जाता है । शरत्काल में कामदेव मयूरों को छोड़कर मधुर गीत गाने वाले हंसों में प्रवेश करते हैं—

नृत्यप्रयोगरहिताञ्छिखिनो विहाय,
हंसानुपैति मदनो मधुरप्रगीतान् ।

ऋतु० ३।१३

शरद् ऋतु में चन्द्रमा और छिटके हुए तारों से भरा खुला आकाश उन तालाबों के समान अति सुन्दर दिखाई पड़ रहा है, जिनमें नीलम के समान जल भरा हुआ है, जिनमें राजहंस बैठे हुए हैं, तथा जिनमें यहाँ-वहाँ बहुत से कुमुद खिले हुए हैं—

स्फुटकुमुदचितानां राजहंसाश्रितानाम्
मरकतमणिभासा वारिणा भूषितानाम् ।
श्रियमतिशयरूपां व्योमतोयाशयानां
वहति विगतमेघं चन्द्रतारावकीर्णम् ।

ऋतु० ३।२१

स प्रकार के मस्त हंस जोड़ों से अलंकृत सरोवर (सोन्मादहंस मिथुनैरुपशोभितानि ऋतु० ३।११) मनुष्यों के चित्त को आनन्दित कर रहे हैं ।

ग्रीष्म ऋतु में गर्मी हंसों को निष्क्रिय बना देती है । मालविकाग्नि मित्र का वतालिक

मध्याह्न का वर्णन करते हुए कहता है कि सूर्य के प्रबल ताप के कारण हंस बावलियों में उगी कमलिनियों के पत्रों की ओट में आंख बन्द किए आराम कर रहे हैं—

पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनाम्

माल० २।१२

हंस-चित्र—कालिदास के विभिन्न काव्यों से हमारे सम्मुख एक सुन्दर हंस-चित्र उपस्थित होता है। मेघदूत में वे कमलनाल का पाथेय लेकर मानसरोवर की लम्बी यात्रा क लिये प्रस्थित होते हैं। ऋतुसंहार में शरत् ऋतु के आगमन पर उनकी श्रेणियाँ कास के फूलों के साथ प्रकृति को शुक्ल बनाती हैं, अपने मधुर कल-कूजन से सरोवरों को प्रतिध्वनित करती हैं, अपनी सुरम्य गति से सुन्दरी ललनाओं की चाल को मात देते हैं। रघुवंश और कुमारसंभव में नदी तीरवर्ती हंसों का हृदयहारी वर्णन है। शरत्काल में हंसमालायें गंगा में तैरती हैं। गंगा की रेती में सोया हुआ देवताओं का हाथी सुप्रतीक प्रातः काल राजहंसों के मधुर गीत से अपनी निद्रा का परित्याग करता है—

मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः
सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः

रघु० ५।७५

राजा कुश हंसों वाली सरयू नदी में रानियों के साथ ग्रीष्मऋतु में जल-विहार का निश्चय करते हैं (रघुवंश १६।५४)। जब रानियाँ नदी तट की सीढ़ियों से पानी में उतरने लगती हैं, उस समय उनके बाजूबन्द आपस में रगड़ खाने लगते हैं, पैरों के बिछुए बजने लगते हैं और इन शब्दों को सुन-सुनकर हंस मचल उठते हैं—

सा तीरसोपानपथावतारादन्योन्यकेयूरविघट्टनीभिः।
सनूपुरक्षोभपदाभिरासीदुद्विग्नहंसा सरिदंगनाभिः॥

रघु० १६।५६

हंस का स्वरूप-निर्णय—कालिदास के हंसों की वैज्ञानिक वास्तविकता के परिज्ञान के लिये पहले हंस के स्वरूप का निर्धारण करना आवश्यक है। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई आधुनिक कोशकारों और अनुवादकों की है। मोनियर विलियम्ज़ के सुप्रसिद्ध कोश sanskrit-English Dictionary (पृ. १२८६) में हंस का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—a goose, gander, duck, flamingo। इसी का अनुसरण करते हुए आप्टे के संशोधित तीन खण्डों में प्रकाशित (पूना १९५९) कोश (३।१७४५) में हंस का अर्थ किया गया है—a swan, goose, duck। वैज्ञानिक दृष्टि से पक्षियों का वर्णन करने वाले पक्षिशास्त्री इन सबको विभिन्न प्रकार के पक्षी समझते हैं और इनमें अनेक सूक्ष्म अन्तर करते हैं। इनमें से कालिदास का हंस किसे माना जाय swan को flamingo को, duck को या goose को।[७] इसका निर्णय कालिदास के ग्रन्थों की अन्तःसाक्षी से ही किया जाना चाहिए। कालिदास ने अपने हंसों की जो विशेषताएं बताई हैं, वे जिस पक्षी में हों, उसे वास्तविक हंस समझा जाना चाहिए।

---

७. इन चारों में से तीन duck, swan और goose एक ही पक्षीपरिवार अर्थात् बतख वंश (Anatidae) के हैं, किन्तु इनके उपपरिवार (Subfamily) भिन्न हैं तथा इनमें निम्नलिखित

कालिदास के हंसों की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

(१) शरद् ऋतु में हंसों का इस देश में आना।

(२) ग्रीष्म ऋतु में वर्षा से पहले हंसों का मानसरोवर चला जाना।

(३) हंसों का वनस्पतिभोजी होना।

(४) हंसों की मधुर ध्वनि और मनोरम चाल।

(५) हंसों के नीर-क्षीर-विवेक की प्रसिद्धि।

यदि हम इन विशेषताओं को उपर्युक्त पक्षियों में देखें तो ज्ञात होगा कि ये केवल एक ही पक्षी में हैं, इसी को कालिदास का हंस मानना चाहिए।

यह पक्षी Swan नहीं हो सकता, क्योंकि यह न तो मानसरोवर में होता है और न भारत में पाया जाता है। श्री धर्मकुमारसिंह जी ने इसके एक भेद Alpheraky's swan *cygnus Columbirnus Jankowskii* ALPHERAKY (गुजराती नाम देव हंस) के बारे में लिखा है कि ६ अप्रैल, १६४७ को कच्छ के महाराव मदनसिंह जी ने इसे पहली बार भारत में हमीरसर नामक तालाब में कच्छ में पकड़ा था।[8] यह पक्षी पूर्वी साईबेरिया में अण्डे देता है और चीन में अपना शरत्काल बिताता है। भारत में यह कभी भूला-भटका ही आता है और अब तक भारत में इसके आने के केवल तीन ही उदाहरण ज्ञात हैं।

Swan की प्रमुख विशेषताएं लम्बी धनुषाकार सुन्दर गर्दन तथा छोटी टांगें होती हैं,

---

महत्वपूर्ण शारीरिक भेद हैं—

(१) Swan का उपपरिवार Cygniae है। यह शरीर में oosge से बड़ा होता है, इसकी गर्दन भी उससे लम्बी होती है। दो अपवादों को छोड़कर इसके पंख बिलकुल सफ़ेद होते हैं।

(२) Duck या बतख Anatinae उपपरिवार की है। इसकी गर्दन, टांगे तथा आकार-प्रकार goose से छोटा होता है। नर-मादा के पंखों के रंग में अन्तर होता है।
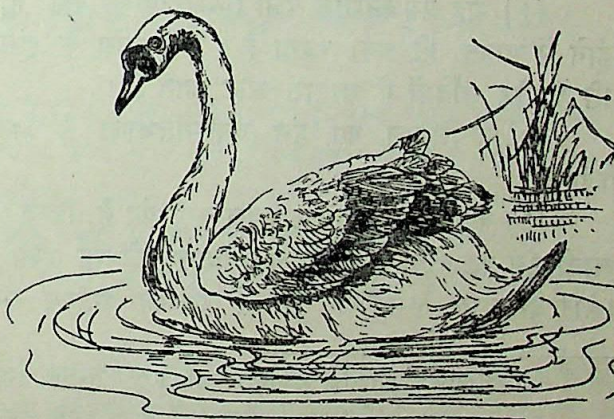
Swan

(३) goose का उपपरिवार Anserinae या Anseriformes है। यह Duck से बड़ा तथा wan से छोटा होता है।

(४) Flamingo इन तीनों से भिन्न एक अन्य परिवार Phoenicopteridae (Phoenise=Red, pteson=wing) का है। इसकी टांगे सारस की तरह बहुत लम्बी और चोंच बीच में से एक दम नीचे की ओर झुकी हुई होती है। इसके पंख सफेद और लाल होते हैं।

8. Dharmendrakumarsinghji:—Birds of Saursashtera. P. 409, Salim Ali;—Journal of the Bombay Natural Society Vol 47 No I. P 167.

इसकी ध्वनि बहुत मधुर होती है। तैरते हुए यह बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। किन्तु टांगें बहुत छोटी होने से इसकी चाल बहुत भद्दी होती है।[९] इंगलैण्ड में इसके बहुत पाए जाने से विलायती कवियों ने इसके सौन्दर्य लालित्य, और मधुर ध्वनि की प्रशंसा के गीत गाए हैं। किन्तु यह निम्नलिखित कारणों से कालिदास का हंस नहीं हो सकता—

(१) यह पक्षी साधारण रूप से भारत में नहीं पाया जाता।[१०] कालिदास ने भारत में सामान्य रूप से पाए जाने वाले पक्षियों का ही वर्णन किया है न कि दुर्लभ पक्षियों का।

(२) मानसरोवर कालिदास के हंसों का प्रिय स्थान है। यह पक्षी मानसरोवर में भी नहीं पाया जाता।

(३) कालिदास के हंसों की गति बड़ी मनोरम है। किन्तु इसकी गति बहुत भद्दी होती है।

इसी प्रकार Flamingo (हंस या बोगहंस, गुजराती हज या बाड़ो) भी कालिदास का हंस नहीं हो सकता। यह सारस जैसा ४ फीट ऊंचा, लम्बी टांगों और गुलाबी गर्दन वाला सफ़ेद और गुलाबी पंखों वाला, गुलाबी चोंच और गुलाबी टांग वाला पक्षी है। इसकी चोंच आधे भाग से मुड़ी होती है। यह सारे भारत में पाया जाता है और भारत का ही निवासी है, यहीं पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है और अपने अण्डे कच्छ की खाड़ी में देता है। इसका भोजन कंकड़े, कीड़े-मकोड़े, दलदलों में होने वाले पौधों के बीज हैं। इसे कालिदास का हंस न मानने के निम्न कारण हैं—

(१) यह प्रव्रजनशील पक्षी (Migratory) नहीं है, मानसरोवर नहीं जाता। बारहों महीने में भारत ही बना रहता है। कालिदास के हंस वर्षा में यहाँ से मानसरोवर चले जाते हैं और सर्दियों में वापिस लौट आते हैं।

(२) कालिदास का हंस वनस्पतिभोजी है किन्तु यह (flamingo) कृमि एवं मांस-भोजी है।

(३) कालिदास का हंस धवल वर्ण का है, किन्तु इसके पंखों का कुछ भाग चमकीले गुलाबी रंग का होता है। यदि कालिदास को यह पक्षी अभीष्ट होता तो वह इसके सहसा दिखाई देने वाले चमकीले गुलाबी रंग का अवश्य संकेत करता जैसा उसने चक्रवाक के

---

९. Encyclopaedia Americana Vol. 26. P. 109-110

१०. भारत के विभिन्न चिड़ियाघरों में ही इसके नमूने पाये जाते हैं। ये विशेष रूप से विदेशों से मंगाकर रखे जाते हैं। उदाहरणार्थ लखनऊ के चिड़ियाघर में हालैण्ड के श्वेत Swan Cygnus Olor तथा आस्ट्रोलिया के काले Swan Cygnus Atratus हैं। सामान्यतः ये पक्षी भारत में नहीं पाये जाते।

पक्षियों में गहरी दिलचस्पी तथा गम्भीर ज्ञान रखने वाले मेरे मित्र श्री अनिलदेव मुकर्जी का यह विचार है कि प्राचीनकाल में भारत में पक्षियों का आयात और निर्यात होता था, यह सम्भव है कि राजप्रासादों में swa विदेशों से मंगाकर पाले जाते हों। किन्तु कालिदास के उपर्युक्त वर्णन में भारत की नदियों और झीलों में सामान्य रूप से पाये जाने वाले हंसों का उल्लेख है और वह ऊपर बताये गये कारणों से swan नहीं हो सकते।

गोरोचनाकुंकुमवर्ण का निर्देश किया है।

अतः हंस को परिशेष न्याय से goose ही समझना चाहिए।[११]

मानसरोवर के हंस—वर्तमान पक्षीशास्त्रविशारदों के मतानुसार भारत में हंसों के दो प्रमुख भेद पाये जाते हैं—(१) The Bar-Headed goose (राजहंस) तथा Greylag goose—ये दोनों शरत्काल में अक्टूबर के महीने में यहाँ आते हैं और मार्च के मध्य में मानसरोवर की ओर चले जाते हैं। मानसरोवर की यात्रा करने वाले अनेक यात्रियों ने इनका उल्लेख किया है। विलियम मूरक्राफ्ट ने इस सरोवर के तीर का वर्णन करते हुए लिखा है कि पानी के किनारे घास की पंक्ति बिछी थी, इसमें बड़े धूसर जंगली हंस के पर पड़े हुए थे, मेरे वहाँ पहुँचते ही इन हंसों के विशाल समूह अपने बच्चों के साथ झील के पानी में चले गए। मैंने इन पक्षियों की जो संख्या तथा इनके पुरीष की जो मात्रा देखी, उससे यह प्रतीत होता था कि ये इस झील में बहुत विशाल समूहों में आते हैं और आस-पास की चट्टानों में सन्तानोत्पादन करते हैं।[१२] इसके लगभग १०० वर्ष बाद मानसरोवर का नौका द्वारा जलविहार करने वाले सुप्रसिद्ध भू-पर्यटक स्वेन हेडिन ने यहाँ इनका वर्णन करते हुए लिखा था कि जंगली हंस जग गये हैं और उनकी आनन्ददायक उड़ानों के साथ उनका कूजन सुनाई दे रहा है।[१३]

कैलास-मानसरोवर की कई बार यात्रा करने वाले, शीतकाल में मानसरोवर के तट पर रहकर उसके जमने और पिघलने की प्रक्रिया का सूक्ष्म निरोक्षण करने वाले स्वामी प्रणवानंद ने अपने यात्रा वर्णन में लिखा है[१]—मानसरोवर में तीन प्रकार के जलपक्षी पाये जाते हैं, जिनमें से एक श्वेत और भूरे रंग का होता है, जिसे तिब्बती भाषा में ङ ङ बा कहते हैं। यही

---

११. भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी हंस का अर्थ goose ही माना जाना चाहिए। अंग्रेजी के goose की व्युत्पत्ति Webester के सुप्रसिद्ध कोष (पृ० १०७९) में इस प्रकार दी गई है—A.S. gos, akin to D. and G. gans, ON gas, O, Pruss. Sansy L. Anser for Hanser Sk. Hansa. इस से यह स्पष्ट है कि संस्कृत का हंस लैटिन में आद्य हकार के लोप से तथा अन्त में रकार के आगम से Anser बना और इसी से अन्त में goose बना। हंस परिवार का वैज्ञानिक नाम Anserini भी लैटिन के उपर्युक्त हंस वाची शब्द से बना है।

2. A Journey to Lake Mansarovar by William Moorcraft, Asiatic researches Vol. XII (1816) P. 466. That on the water's edge was bordered by a line of wrack grass, mixed with the quills and feathers of the large grey wild goose, which in large flocks of old ones with young broods, hastened into the lake at my approach........... These birds from the numbers I saw, and the quality of their dung, appear to frequent this lake in vast bodies breed in surrounding rocks.

१२. Sven Hedin—Trans Himalayas, Vol II (1910) P. 118.

१३. स्वामी प्रणवानन्द—कैलास-मानसरोवर (हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं० २०००) पृ० ७८-९।

१४. **Whistler Ibid P. 522-3**

हंस है। इसके पैर और चोंच लाल रंग के होते हैं। तिब्बतियों का कहना है कि यह मछली, सीप और घोंघों को नहीं खाता, प्रत्युत घास-सिवार आदि ही खाकर रहता है। यहाँ के निवासी इसे पवित्र मानकर खाने के लिये नहीं मारते, पर अण्डों को अवश्य खा लेते हैं......... ये सरोवर के बालुकामय तटों पर अण्डे देते हैं। दूसरी जाति का हरूङ सू सिरचूङ नामक पक्षी बादामी रंग की बतख जैसा होता है। तीसरी जाति वाला चकरमा कहलाता है।'

राजहंस का सिर

भारत में पाए जाने वाले हंसों का वैज्ञानिक वर्णन निम्नलिखित है—

(क) राजहंस—(Bar-Headed goose, *Anser Indicus* Latham) इसकी ऊँचाई २० इंच होती है। इसके श्वेत सिर के पिछले भाग में दो कृष्ण रेखाएँ या काली पट्टियाँ (Bars) होती हैं, इन्हीं के के कारण अंग्रेजी में इसे Barheaded का नाम दिया जाता है। इसकी गर्दन भी सफेद होती है, किन्तु इसका पिछला भाग गहरा भूरा होता है। ऊपर के पंख राख के रंग वाले धूसर (Ashgrey, अगली गर्दन भूरी, छाती सफ़ेद और भूरी, निचले पंख सफ़ेद, चोंच और टांगें नारंगी लाल रंग की होती हैं। यह पक्षी भारी बदन का (Heavilybuilt) लम्बी गर्दन और छोटी पूंछ वाला होता है। इसका टांगें छोटी और मजबूत होती हैं और जालवाली (जालपाद) पैर की उंगलियां तैरने में सहायता देती हैं। यह अपने धूसर-भूरे तथा श्वेत वर्ण के कारण और सिर की दो कृष्ण रेखाओं से झट पहिचान लिया जाता है।
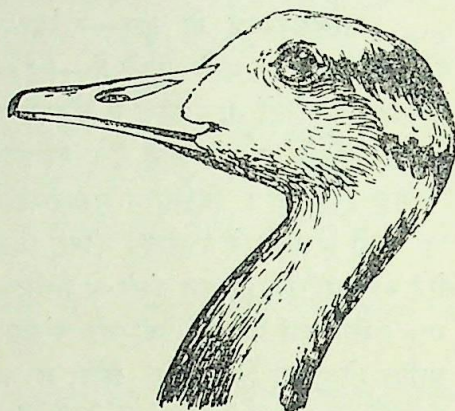
गर्मी के महीनों में यह लद्दाख, तिब्बत, मध्य एशिया तथा पश्चिमी चीन में सन्तानोत्पादन करता है। लद्दाख और तिब्बत में इसके अण्डे देने का समय मई तथा जून के महीने हैं। यहाँ यह समुद्र तल से १४ हजार फ़ीट ऊँचाई पर स्थित खारी पानी की झीलों के टापुओं और चट्टानों में अपने परों से मुलायम बनाए गए घोंसलों का निर्माण करता है। शीत ऋतु में यह भारत में पश्चिम में से सिन्ध नदी की घाटी से पूर्व में आसाम तक पाया जाता है। यह बात उल्लेखनीय है कि कालिदास ने दशार्ण से दक्षिण में इसका कोई उल्लेख नहीं किया।

हंसों का यह वर्णन संस्कृत ग्रन्थों के राजहंस के वर्णन से कुछ मिलता है। इस विषय में अमरकोषकार ने लिखा है:—

हंसास्तु श्वेतगरुतश्चक्रांगा मानसौकसः ।
राजहंसास्तु ते चंचुचरणैर्लोहितैः सिताः ॥

२।५।२३-२४

हंसों के तीन नाम हैं—श्वेतगरुत् (सफ़ेद पंखों वाले), चक्रांग, मानसौकस (मानसरोवर में घर बनाने वाले)। इन्हीं हंसों में से जिनकी चोंच और पैर लाल तथा अन्य शरीर सित या सफ़ेद होता है, वे राजहंस होते हैं। उपर्युक्त Barheaded goose के पैर लाल होते हैं, इसकी चोंच यद्यपि पीली होती है, किन्तु उसमें लालिमा की झलक होती है।

अमरकोश के मतानुसार हंस सित होते हैं। सित का अर्थ प्रायः सफ़ेद किया जाता है, किन्तु यह बिलकुल सफ़ेद नहीं है। अमरकोशकार ने श्वेत का अर्थ देने वाले १३ पर्यायों का उल्लेख किया है—

> शुक्लशुभ्रशुचिश्वेतविशदश्येतपाण्डराः ।
> अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्जुनः ॥ १।५।१२-१३

ये सब शब्द वस्तुतः पर्याय नहीं हैं, किन्तु इनमें सूक्ष्म अन्तर अवश्य है। कई पुराने लेखकों ने इस अन्तर को स्पष्ट करने का यत्न किया है। भानुजी दीक्षित ने अपनी अमरकोशटीका में (निर्णय सागर प्रेस बम्बई, पंचम संस्करण १९२९ पृ० ६०) शब्दार्णवकार का यह वाक्य उद्धृत किया है—

> श्वेतस्तु समपीतोऽसौ रक्तेतरजपारुचिः ।
> वलक्षस्तु सितश्यावः कदलीकुसुमोपमः
> अर्जुनस्तु सितः कृष्णलेशवान् कुमुदच्छविः ॥

इसमें श्वेत, वलक्ष और अर्जुन की शुक्लता का अन्तर करते हुए पिछले दोनों के लिए विभिन्न प्रकार के सफेद वर्ण का निर्देश किया है। वलक्ष केले के फूल जैसा सित और श्याव या कापिश अर्थात् कृष्ण एवं पीत रंग का सम्मिश्रण होता है, अर्जुन कुमुद के फूल जैसा कालापन लिए सफेद होता है। राजहंस के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इसके पंखों की श्वेतिमा में भूरा और धूसर वर्ण मिले हुए हैं। 'कालिदासेर पाखी' के बंगला लेखक श्री सत्यचरण लाहा ने राजहंस की श्वेतिमा केले के फूल के समान मानी है।[15]

कलहंस (Gray Lag Goose) धूसर वर्ण का यह हंस पालतू बनाये जाने वाले सभी हंसों का पूर्वज समझा जाता है। इसके पंखों में सफेद और काले रंग का मिश्रण होने से इसे धूसर (Gray) कहा जाता है और प्रव्रजन के समय अन्य पक्षियों से पीछे रह जाने के कारण इसके साथ Lag का विशेषण जोड़ा जाता है। इसका सिर और गर्दन धूसर रंग की होती है, उपरले पंख भूरे धूसर वर्ण के होते हैं। इस की चोंच और पैर लाल होते हैं। इसकी पहचान इसके धूसर कटिभाग (rump), लाल चोंच के श्वेत अग्र भाग, लाल टाँगों और पैरों से होती है साण्डर्स के कथनानुसार इसके बच्चों का रंग बड़े पक्षियों की अपेक्षा अधिक ढका हुआ होता है।[16]
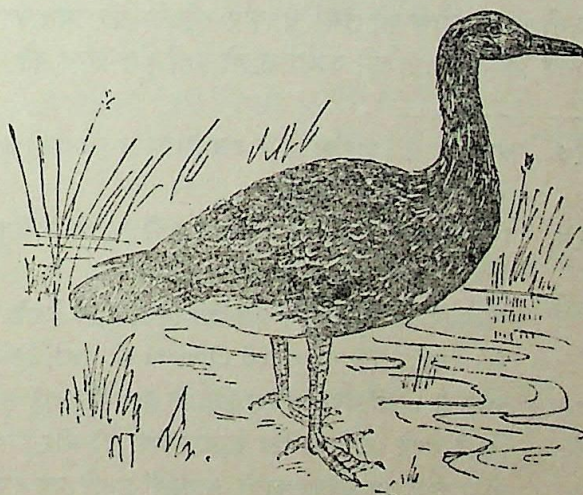
कलहंस

---

१५. श्री सत्यचरण लाहा :—कालिदासेर पाखी पृ० १४-१५

१६. Saunder's Manual of British Birds. (3rd ed. 1927) P. 416.

यह पक्षी सर्दियों में हमारे देश में आता है और ह्विसलर के कथनानुसार काश्मीर, पंजाब और उत्तर प्रदेश में खूब पाया जाता है (पृ० ५२२)। इसे नदियों की अपेक्षा झीलों में रहना अधिक पसन्द है (सालिम अली—पृ० १०८)।

संस्कृत के प्राचीन कोशों के अनुसार इसका नाम कलहंस या कादम्ब है। अभिधान-रत्नमाला के अनुसार धूसर रंग के पंखों वाला हंस कलहंस है–

पक्षैराधूसरैः हंस कलहंस इति स्मृतः।

अभिधानचिन्तामणि में इसी बात को दुहराते हुए कहा गया है कि अधिक धूसर वर्ण के पंखों वाले पक्षी कादम्ब या कलहंस कहलाते हैं—

कादम्बास्तु कलहंसाः पक्षैःस्युरतिधूसराः।

उपर्युक्त दो भेदों के अतिरिक्त उत्तर-पश्चिमी भारत में हंस का एक अन्य भेद श्वेताग्र हंस (White fronted Goose, Anser Albifrons) मिलता है। इसकी चोंच के निचले भागों में एक श्वेत पट्टी होती है और यही इसका भेदक चिह्न है।

विहगविद्यावित् श्री ह्विसलर महोदय ने (पृ० ५२२) राजहंस के स्वभाव का वर्णन करते हुए लिखा है—"यह उत्तर भारत के बड़े ह्रदों और झीलों में पायी जाने वाली जाति है, किन्तु यह अपने विश्राम की घड़ियाँ और दिन का समय उत्तर भारत की बड़ी नदियों के रेतीले किनारों पर बिताता है और रात को नदी तट के पास के खेतों में चरता है।[१७] हंसों की अन्य जातियों के समान राजहंस हरी वनस्पतियों का भोजन करते हैं और गेहूँ, जौ आदि के नये पौधों को तथा अनाज के खेतों को बड़ा नुकसान पहुँचाते हैं। हर रात को ये इन खेतों में जाते हैं। इन खेतों में चरने जाते समय शाम को तथा चरकर लौटने पर प्रातःकाल इनकी उड़ान सुनिश्चित होती है।[१८] जहाँ किसी प्रकार की वाधा न हो वहाँ हंस शाम को जल्दी ही चरना प्रारम्भ कर देते हैं और

---

१७. अथर्ववेद में (६।१२।१) में इस विशेषता का उल्लेख करते हुए कहा गया है—रात्री जगदिवान्यद्धं-सात्तेनावारेण ते विषम्।

१८. रात के समय दिल्ली में इनकी उड़ानों का मनोरम वर्णन भारत के भूतपूर्व ब्रिटिश राजदूत मैल्कम मैकडानल्ड ने इस प्रकार किया है—

"जनवरी में जंगली हंस प्रतिदिन दिखाई देते हैं और इनका शब्द सुना जाता है। दो या तीन बार मैंने राजहंस (Barheaded Goose) को देखा, किन्तु कलहंस (Grey Lag Goose) अधिक पाये जाते हैं। प्रतिदिन अंधेरा होने के बाद मैंने उन्हें उस समय एक-दूसरे को पुकारते हुए सुना, जब कि वे अपने रात्रिकालीन आहार-क्षेत्रों की ओर यात्रा कर रहे होते थे। चांदनी रातों में काफी तीव्र उड़ते हुए उनकी काली परछाईं हमारे घर पर पड़ती थी। प्रातःकाल ये अधिक ऊँचाई पर उड़ते हुए लौटते थे। कई बार सूर्योदय के बाद इनकी श्रेणियों की श्रेणियां प्रकट होती थीं। सैकड़ों हंस लम्बी, सुन्दर, समानुपाती, पच्चराकृति, शरपुंखाकार आकृतियों से आकाश के विशाल क्षेत्रों को पार कर रहे होते थे। ऊपर से उनके कूजन का भावोद्दीपक संगीत आता था। यह वास्तव में पुलकित करने वाली ध्वनि (Thrilling Sound) है। प्रकृति में जंगली हंसों की बहुत बड़ी संख्या में उड़ान से अधिक सुन्दर और प्रफुल्लित करने वाला कोई दृश्य नहीं है।" **(Birds in My Indian Garden P. 25-6)**

प्रातः काल होने के बाद भी चरना जारी रखते हैं। हंस सदैव बहुत सावधान रहते हैं, इनके पास तक पहुंचना बहुत कठिन होता है। प्रायः यह कहा जाता है, इनके झुण्ड अपनी चौकसी के लिए चौकीदार भी नियत करते हैं।"[१९]

उपर्युक्त उद्धरण में राजहंसों का नदियों के प्रति विशेष प्रेम दिखाया गया है। कालिदास ने भी सरयू तथा गंगा (कुमार० १।२०) महानदियों में इनका वर्णन किया है। ऋतुसंहार (३।८) में नदीतटों को हंसों के कूजनवाला बताया है।

ह्विसलर ने हंसों की एक बड़ी विशेषता २० से १०० तक पक्षियों के झुण्डों में पाया जाना बताया है (पृ० ५२२)। आकाश में बहुत ऊँचा उड़ते समय इनके झुण्ड सालिम अली के कथनानुसार अंग्रेज़ी के वी (V) अक्षर जैसी विशेष रचना बनाते हैं (पृ० १०८)। यही हंसों का श्रेणियों या मालाओं में उड़ना है। वैदिक युग से हंसों की यह उड़ान भारतीयों के पर्यवेक्षण का मनोरम विषय रही है। वैदिक साहित्य में बार-बार इसका उल्लेख है। ऋग्वेद (१।१६३।१०) में कहा गया है—हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते। अन्यत्र यज्ञीय स्तूपों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे पंक्तियों में उड़नेवाले हंसों के समान हैं (हंसा इव श्रेणिशो यतानाः ऋ० ३।८।९७)। कालिदास ने भी रघुवंश (४।१९) में हंस की श्रेणियों का तथा कुमारसम्भव (१।३०) में शरत्काल में हंसमालाओं के आने का उल्लेख किया है।

वर्तमान पक्षीशास्त्री हंस की ध्वनि को बहुत मधुर और मंगल मानते हैं। ह्यूम ने लिखा है—"रात के समय वायुमण्डल में ऊँचाई पर, सिर के ऊपर उड़ने वाले हंसों के विशाल समूह का कूजन अत्यधिक सुरीला और संगीतमय होता है। बहुत कम शिकारी ऐसे होते हैं, जिनके हृदयों में यह ध्वनि रोमाञ्चक आनन्द उत्पन्न नहीं करती।"[२०] स्टुअर्ट बेकर ने भी लिखा है कि इनकी आवाज सुरीली तथा संगीतमय "होंक" (Honk) होती है।[२१] ह्विसलर ने लिखा है कि इनकी आवाज गहरी और सुरीली होती है, कई मिलकर यह ध्वनि करते हैं तथा प्रायः इसे कूजन (Gaggling) कहा जाता है। मैकडानल्ड ने इसे भावोद्दीपक संगीत या पुलकित करने वाली ध्वनि कहा है।[२२]

सम्भवतः इस माधुर्य के कारण कालिदास ने हंस के कूजन की तुलना रमणियों की नूपुर ध्वनि के साथ की है। पहले यह बताया जा चुका है कि उर्वशी के विरह में व्याकुल पुरूरवा को राजहंसों के कूजन से यह भ्रान्ति हो गई थी कि यह उसकी प्रियतमा के नूपुरों की झंकार है।

हंस की गति के सम्बन्ध में एक आधुनिक पक्षी-तत्त्ववेत्ता ने लिखा है कि यह बड़ी

---

१९. Whistler :—Ibid. P. 522.

२०. The cackle of a large flock flying over head at night, high in air, is most sonorous and musical. There are few sportsmen through whose hearts it does not send a pleasant thrill. Hume and Marshall :—The Game Birds of India, Burma and Ceylon Vol. III (1881) P. 60

२१. Fauna of British India, Birds. Vol. VI (1929) P. 407.

२२. Macdonald :—Birds in My Indian Garden. P. 26

दोलायमान (Swaying) और झूमती हुई (Rolling) चाल है।[२४] कालिदास ने भी हंस की इठलाती-मदमाती चाल को सुन्दरियों की चाल से श्रेष्ठ बताया है। दोनों में कई प्रकार के साम्य हैं, । रमणियों की मस्तानी चाल 'जघनभरालसा (विक्रमो०४) है, हंस का शरीर भारी होने के कारण[२५] उसमें भी शैथिल्य है। रमणियों के चरण महावर से रंगे होने के कारण लाल होते हैं। राजहंसों के पैरों को प्रकृति ने अरुण आभा प्रदान की है। रमणियों के चलने से उनके पैरों के बिछुए रुनझुन पैदा करते हैं। दोनों के साद्दश्य को दृष्टि में रखते हुए पार्वती के सम्बन्ध में कालिदास ने कल्पना की है कि उसने अपनी मदमाती चाल राजहंसों से सीखी और राजहंसों ने उससे नूपुर की झंकार जैसी मधुर ध्वनि करना सीखा।

हंस का मानसरोवर-प्रव्रजन—प्रव्रजन का स्वरूप और कारण—हंस के सम्बन्ध में कालिदास का सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य इसका वर्षा के प्रारम्भ में मानसरोवर की ओर प्रव्रजन (Migration) करना तथा सर्दियों में वहाँ से लौटना है। पश्चिम में पक्षियों का विशेष ऋतु में एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने और वापिस लौटने का विचार बहुत पुराना नहीं है। पश्चिमी जगत् में वैज्ञानिक पद्धति के पिता समझे जाने वाले तथा सर्वप्रथम जीव-जन्तुओं का शास्त्रीय अध्ययन करने वाले यूनानी दार्शनिक अरस्तू (३८४ ई० पू० से ३२२ ई० पू०) का यह विचार था कि अबाबील, कोयल आदि पक्षी शीत-काल में साँप आदि सरीसृपों की भाँति प्रसुप्तावस्था या शीतस्वाप की दशा (Hibernation) में पड़े रहते हैं। गर्मी शुरू होने पर ये जागृत होकर क्रियाशील हो जाते हैं। वर्तमान समय में भी गिलबर्ट ह्वाइट जैसे कुछ वैज्ञानिक अरस्तू के इस सिद्धान्त को सही मानते रहे।

किन्तु अब इस विषय में पक्षियों के प्रव्रजन का सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया है। इसके अनुसार आहार-अन्वेषण की कठिनाइयों से विवश होकर पक्षी वर्ष में दो बार इसलिए प्रव्रजन करते हैं कि वे प्रतिकूल परिस्थितियों से बच सकें। यायावर पक्षी प्रायः अपने अण्डे शीत प्रधान देशों में देते हैं और आहार के लिए गर्म प्रदेशों की ओर चले जाते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में इनके अण्डे देने के स्थान ध्रुवीय (Arctic) या समशीतोष्ण प्रदेशों में हैं तथा शीतकाल में वे भूमध्य रेखा तक के प्रदेशों में आ जाते हैं। प्रव्रजन की साधारण दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर से दक्षिण की ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण से उत्तर की ओर होती है। यह प्रव्रजन स्थानीय तथा केवल कुछ मीलों का भी होता है, और सबसे लम्बा प्रव्रजन उत्तरी ध्रुव के प्रदेश में निवास करने वाली टिटिहरी (Arctic Tern) नामक चिड़िया करती है। यह उत्तरी ध्रुव से ११००० मील चलकर दक्षिणी ध्रुव में गर्मी की ऋतु बिताती है और शीत ऋतु आने पर पुनः ११००० मील उड़कर उत्तरी के ध्रुव प्रदेश में लौट आती है[२६]।

शीतकाल में उत्तर के शीतल प्रदेशों से दक्षिण के उष्ण प्रदेशों में आने पर पक्षियों को निम्न लाभ होते हैं—

१. अत्यधिक शीत और तूफानी मौसम से बचाव।

२. सर्दियों में दिन छोटे होने के कारण इन्हें अपना आहार ढूंढ़ने के लिए दिन का

---

२४. Bird Behaviour. P. 16.

२५. Whistler :—Ibid P. 522.

२६. Salim Ali :—Ibid p. 142

प्रकाश बहुत थोड़े समय के लिये मिलता है। भूमध्यरेखा की ओर दक्षिणी प्रदेशों में जाने से दिन बड़े होने के कारण यह असुविधा दूर हो जाती है।

३. सर्दियों में उत्तरी ध्रुव में तथा समशीतोष्ण कटिबन्धों के प्रदेश में पानी के जमने तथा चारों ओर की भूमि बर्फ से ढकी रहने के कारण खाद्य पदार्थों की कमी की असुविधा पर विजय पा ली जाती है।

इसी प्रकार शीतकाल में पक्षियों को उत्तर की ओर जाने में तीन बड़े लाभ होते हैं—

१. नीड़-निर्माण तथा सन्तानोत्पादन के लिए उपयुक्त और निर्बाध प्रदेशों की सुविधा।

२. सन्तानोत्पादन के बाद बच्चों को खाद्य पदार्थों की आवश्यकता बहुत अधिक होती है। ऐसे समय में उत्तरी गोलार्ध में दिन बड़े होने से उन्हें आहारान्वेषण के लिए अधिक समय मिल जाता है।

३. इन दिनों वसन्त काल के आगमन के बाद वनस्पतियों की पैदावार बहुत बढ़ जाने से पक्षियों को अपने लिए तथा बच्चों के लिए आहार प्रचुर मात्रा में मिल जाता है।

अतः सर्दियों में हमारे देश में साइबेरिया, योरोप, रूस आदि उत्तरी प्रदेशों से प्रचुर मात्रा में पक्षियों का आगमन होता है। हंस, चक्रवाक, आदि इसी प्रकार के पक्षी हैं।

योरोपियन देशों में प्रव्रजन का अध्ययन करने के लिए पक्षियों के पैरों में इनके मूल-स्थान और तिथि की सूचना देने वाले एल्यूमीनियम या प्लास्टिक के हल्के रंगीन छल्ले बांधने का रिवाज है। शीतकाल में उत्तरी भारत के सरोवरों और झीलों में रूस, चीन, साइबेरिया, तुर्किस्तान, उत्तरी अमरीका आदि से अनेक पक्षी आते हैं। इनके छल्लों से यह पहिचान लिया जाता है कि ये पक्षी किन स्थानों से आए हैं। उदाहरणार्थ बीकानेर में ऐसे सारस मिले हैं, जिन पर जर्मनी में छल्ला बाँधा गया था। इससे इनके प्रव्रजन का मार्ग भी निश्चित हो जाता है।

पक्षी बड़े विशाल समूहों में प्रव्रजन करते हैं। प्रव्रजन में उड़ते समय ये उल्टे वी (V) के आकार की रचना बनाए रखते हैं। इसमें अनेक लाभ हैं। शीर्ष स्थान पर इनका नेतृत्व करने वाले पक्षी होते हैं। अन्य सब पक्षी नेता का अनुसरण इस रचना में सुगमता पूर्वक कर सकते हैं। इसका एक अन्य लाभ यह भी है कि इस रचना में वायु का प्रतिरोध कम होने से उड़ान अधिक तेज़ हो जाती है। जेट वायुयानों के सिद्धान्त को मनुष्य ने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद क्रियात्मक रूप दिया है। किन्तु पक्षी अपने अनुभव से हजारों वर्ष पहले से ही इस सिद्धान्त को प्रयोग में ला रहे हैं। कालिदास ने सारस पक्षी की पंक्तियों की ऐसी उड़ान का निर्देश करते हुए इसे खम्भे के बिना टिकी हुई बन्दनवार कहा है—

श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम्।

रघु० १।४१

पक्षियों का विशेष ऋतु में देशान्तरगमन बड़ी विलक्षण घटना है। प्रव्रजन का समय आते ही ये बेचैन हो उठते हैं तथा एक स्थान पर इकट्ठे होने लगते हैं। जब तक ये अपना प्रव्रजन आरम्भ नहीं कर देते तब तक इनमें बड़ी बेचैनी बनी रहती है। इस विषय में यह विचारणीय है कि इनमें यह बेचैनी क्यों उत्पन्न होती है? हंसों के सम्बन्ध में कालिदास ने इन दोनों प्रश्नों का उत्तर दिया है। हंसों का प्रिय निवास-स्थान मानसरोवर है (क्वचित् खगानां प्रिय-

मानसानां रघु० १३।५५)। वे वहाँ जाने के लिए उत्कण्ठित (मानसोत्काः) रहते हैं। आकाश में जब मेघ दिखाई देते हैं तो उन्हें इससे यह पता लग जाता है कि मानसरोवर के प्रस्थान की वेला आ गयी है। (मेघदूत ११)

किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक इनकी बेचैनी का कारण सन्तानोत्पादन तथा इसके लिये नीड-निर्माण की लालसा तथा आहार का अन्वेषण मानते हैं। पक्षियों को प्रव्रजन-काल की सूचना दिन के प्रकाश की लम्बाई से मिलती है। उत्तरी गोलार्ध में जब शीत ऋतु की समाप्ति पर दिन बड़े होने लगते हैं तो वे दक्षिणी देशों की ओर चल पड़तेहैं इ। कई वैज्ञानिक परीक्षणों में दिन के प्रकाश को कृत्रिम रूप से बढ़ाने पर यह देखा गया है कि इससे इनमें सन्तानोत्पादन की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।[२७]

पश्चिम में भले ही अरस्तू ने पक्षियों के प्रव्रजन की कल्पना न की हो, किन्तु भारत में आदिकवि वाल्मीकि ने हंस और चक्रवाक को अभ्यागत या बाहर के देश से आया पक्षी कहा है।[२८] कलिदास इन पक्षियों को इस देश में थोड़े ही दिन ठहरने वाला मानता है। मेघदूत में विरही यक्ष ने मेघ को यह बताया है कि तुम्हारे दशार्ण पहुँचने पर हंस वहाँ थोड़े ही दिन के मेहमान होंगे—

संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसाः दशार्णाः ॥

मेघ० २५

हंसों के मानसरोवर जाने का समय—कालिदास ने हंसों का इस देश से मानसरोवर जाने का समय वर्षाकाल का आरम्भ माना है। उसके अनुसार यह आषाढ़ का प्रथम दिवस है (मेघदूत १) जब रामगिरि आश्रम में विरही यक्ष ने आकाश में मेघ के प्रथम दर्शन किये थे (२०)। आजकल उत्तर भारत में वर्षा विभिन्न स्थानों पर विभिन्न समयों में आरम्भ होती है।[२९] फिर भी मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि यह जून में शुरू हो जाती है, अतः कालिदास के अनुसार राजहंसों के मानसरोवर लौटने का यही समय होना चाहिये।

किन्तु आधुनिक पक्षीशास्त्री हंसों के लौटने का समय इससे बहुत पहले—ग्रीष्मऋतु के आरम्भ में मानते हैं। सालिम अली (पृ० १०८) ने इसे मार्च का मध्य माना है (पृ० १०८)। ह्विसलर भी मार्च मास में हंसों का उत्तर की ओर प्रयाण करना मानते हैं (पृ० ५२२)। भूतपूर्व ब्रिटिश राजदूत मैल्कम मैकडानल्ड ने नई दिल्ली में ब्रिटिश दूतावास के बगीचे में में किए गए अपने निरीक्षण के आधार पर हंसों के दिल्ली से प्रयाण का क्रम और तिथि इस प्रकार निश्चित की है—"जंगली हंस पहले प्रव्रजन कर गये। सम्भवतः कादम्ब या धूसर वर्ण

---

२७. Salim Ali :—Ibid P. 142.

२८. वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड ३०।३१

२९. आधुनिक भूगोलशास्त्रियों के अनुसार भारत के विभिन्न प्रदेशों में गर्मियों के बाद वर्षा आरम्भ होने की तिथि इस प्रकार है। बम्बई २८ मई से ५ जून तक, बंगाल १ जून से १० जून तक, बिहार १० जून से २० जून तक, उत्तर प्रदेश २० जून से ३० जून तक पंजाब २८ जून से १० जुलाई तक (रहमान :—भारत का नवीन भूगोल, नेशनल प्रेस इलाहाबाद १९५४, पृ० ५२)। इससे यह स्पष्ट है कि उत्तर भारत के अधिकांश प्रदेशों में वर्षा जून मास में शुरू होती है।

के कलहंस (Gray Lags) झुण्ड बनाकर उत्तर की ओर पहले गए। मैंने २६ फरवरी को अपने बगीचे के ऊपर इनका झुण्ड अन्तिम बार देखा। राजहंस (Barheaded Goose) हमारी झीलों पर कुछ अधिक समय तक रुके रहे। ९ मार्च को ६ बजे प्रातः हमारे घर के ऊपर अन्धकार में गुजरने वाले राजहंसों की ध्वनि मैंने सुनी। सम्भवतः यह इनका मध्य एशिया की ओर लम्बी यात्रा करते हुए विदाई का प्रयाण था क्योंकि इसके बाद अगले नवम्बर तक मैंने न तो इन्हें देखा और न इनकी कोई आवाज सुनी। जब जंगली हंस तथा जंगली बतखें दिल्ली छोड़-कर जाती हैं, तो गौरवपूर्ण कड़ा जाड़ा समाप्त हो जाता हैं।[३०]"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आधुनिक पक्षी-विशारद भारत से हंसों के प्रव्रजन का समय शीतकाल का अन्त या मार्च का महीना मानते हैं। कालिदास के अनुसार यह आषाढ़ मास या वर्षाकाल का प्रारम्भ अर्थात् जून का मास है, दोनों में दो महीने का अन्तर है।

मानसरोवर जाने का मार्ग—कालिदास ने हंसों के मानसरोवर तक प्रव्रजन के मार्ग का भी महत्त्वपूर्ण निर्देश किया है। हंसों को उत्तर भारत से मानसरोवर तक पहुंचने के लिए हिमालय की उत्तुँग गिरिमालाएँ लाँघनी पड़ती हैं। क्या पक्षी हिमाद्रि की २०-२५ हजार फीट से भी अधिक ऊँची पर्वतमालाओं को सीधा पार करते हैं या सरल मार्ग ढूंढ़ते हैं? इस विषय में सामान्य सिद्धान्त तो यह है कि हिमालय की परिक्रमा करने वाली सिन्धु और ब्रह्मपुत्र नदियों की घाटियों के मार्ग से यायावर पक्षी उत्तरी देशों से हमारे यहाँ आते हैं क्योंकि इसमें उन्हें अधिक ऊँचाई पार नहीं करनी पड़ती।"[३१]

किन्तु कालिदास ने मेघ को अलकापुरी का मार्ग बताते हुए उसे क्रौंचरन्ध्र से अर्थात् मानसरोवर जाने के लिये हंसों द्वारा अपनाये गये मार्ग से होकर जाने को कहा है। "हिमालय के पास पहुँचकर उसके विशेष स्थानों को देखते हुए तुम उस क्रौंचरन्ध्र में से होते हुए उत्तर की ओर जाना, जिसमें से होकर हंस मानसरोवर की ओर आते हैं और जिसे परशुरामजी अपने बाण से छेदकर अपना नाम अमर कर गए हैं। उस सँकरे मार्ग में तुम वैसे ही लम्बे और तिरछे होकर जाना जैसे बलि को छलने के समय भगवान् विष्णु का साँवला चरण हो गया था।

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान् विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौंचरन्ध्रम्।
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी-
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः॥

मेघ० ६१

श्री नन्दलाल दे ने क्रौंचरन्ध्र की शिनाख्त बद्रीनाथ से ऊपर नीति नामक घाटे या दर से की है।[३२] यह दर्रा बहुत ऊँचा है और भारत से तिब्बत जाने का एक मार्ग है। जैसे मनुष्य हिमालय को उत्तुंग गिरिमालाओं को पार करने के लिए उनको अपेक्षाकृत कम ऊँचाई वाले स्थानों या दर्रों

---

३०. Malcom Macdonald :—Birds in My Indian Garden. P. 41.

३१. Salim Ali :—ibid. P. 149.

३२. NandaLal Dey :—Geographical Dictionary of Ancient and Medical India; Second edition, P. 104.

से पार करते हैं, उसी प्रकार पक्षी भी इनका प्रयोग करते हैं। श्री डेवार ने इस विषय में लिखा है—"भारत में शीत ऋतु बिताने वाले पक्षियों को तिब्बत, चीन और रूस में अपने सन्तानोत्पादन के स्थलों तक पहुँचने के लिए हिमालय के ऊपर से उड़ना पड़ता है। वे उच्चतम पहाड़ों के ऊपर से नहीं उड़ते, किन्तु इन्हें पहाड़ों के दर्रों से पार करते हैं।"[३३]

हिमालय पर्वत के विभिन्न शिखरों पर गत वर्षों में किए जाने वाले अभियानों से यह प्रमाणित हो गया है कि हंस तथा बत्तखें १० से १५ हजार तथा २० हजार फीट की ऊँचाई तक उड़कर हिमालय की गिरिमालाओं को सीधा भी पार कर लेती हैं।[३४] यह ज्ञात होता है कालिदास के हंसों के क्रौंचरन्ध्र में से गुजरने का कथन कोरी कल्पना नहीं, किन्तु वैज्ञानिक सत्य है।

नीरक्षीरविवेक—हंस के नीरक्षीरविवेक की कल्पना का बीज सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में मिलता है।

यजुर्वेद की कई संहिताओं—काठक (३८।१) मैत्रायणी (३।११।६) वाजसनेयी संहिता (१६।७३,७४) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (२।६।२।१) में यह उल्लेख है कि हंस पानी में से सोमरस को तथा पानी से दूध को पृथक् करता है। उदाहरणार्थ वाजसनेयी संहिता (१६।७३, ७४) में कहा गया है—

> अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत्क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया।
> ऋतेन सत्यमिन्द्रियम्............
> सोममद्भ्यो व्यपिबच्छंदसा हंसःशुचिषत्।
> ऋतेन सत्यमिन्द्रियम्..............

उब्वट के भाष्यानुसार पहले मन्त्र में क्रुङ् का अर्थ हंस है और वह दूध और पानी के मिश्रण से दूध को पृथक् करके उसे पीता है। काठक संहिता (३८।१) में कहा गया है—

> सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हंसश्शुचिषत्।
> अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया॥

अर्थात् हंस ने जल में से सोमरस का पान किया और क्रुङ् नामक पक्षी ने पानी में से दूध का पान किया। यही मन्त्र मैत्रायणी संहिता और तैत्तिरीय ब्राह्मण (२।६।२।१०) में भी लगभग इसी रूप में मिलता है। सायणाचार्य ने तैत्तिरीय ब्राह्मण के भाष्य में क्रुङ् पक्षी का अर्थ क्रौञ्च किया है।

परवर्ती संस्कृत साहित्य में बार-बार यह वर्णन है कि हंस में यह शक्ति है कि वह दूध और पानी को अलग कर देता है। इस विषय में कालिदास की उक्ति का उल्लेख ऊपर हो चुका है। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ पंचतन्त्र के आरम्भ में कहा गया है कि शब्दशास्त्र का कोई अन्त नहीं है, आयु थोड़ी है, बाधाएँ बहुत हैं, अतः जैसे हंस पानी में से दूध ले लेता है, वैसे ही शास्त्रों में से सारतत्त्व को ग्रहण करना चाहिए और फोक छोड़ देना चाहिए—

> अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं स्वल्पं तथायुर्बहवश्च विघ्नाः।
> सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥

---

३३. Dewar :—Birds of an Indian Village. (1927) P. 56.

३४. Salim Ali :—Ibid P. 146.

पण्डितराज जगन्नाथ को यह उक्ति प्रसिद्ध है कि—हे हंस, यदि क्षीर को नीर से अलग करने का विवेक तू ही शिथिल कर देगा तो फिर इस जगत् में अपने कुलव्रत का पालन कौन करेगा ?[३५] हंस की यह नीरक्षीरविवेकिनी शक्ति कोरी कवि कल्पना है या वैज्ञानिक सत्य ?

सायणाचार्य ने तैत्तिरीय ब्राह्मण (२।६।२।१) के उपर्युक्त उद्धरण की टीका करते हुए हंस की इस विलक्षण शक्ति के कारण पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। उनका कहना है कि जलमिश्रित दूध के बर्त्तन में हंस जब अपनी चोंच डालता है तब उसके मुँह में रहने वाले विशेष खट्टे रस के साथ योग होते ही दूध और जल दोनों—अलग हो जाते हैं या अलग-अलग जान पड़ते हैं—

क्षीरपात्रे स्वमुखे प्रक्षिप्ते सति मुखगताम्लरससम्पर्कात् क्षीरांशो जलांशश्चोभौ विविच्येते, तत्र स जलभागं परित्यज्य क्षीरभागमेव पिबति।

यदि वास्तव में सायण की व्याख्यानुसार हंस के मुख में कोई ऐसा रस हो जिसमें दही जमाने वाले जामन का खट्टापन हो तो दूध का जमकर दही हो जाना सम्भव है। किन्तु अभी तक यह प्रमाणित नहीं हो सका कि हंस की चोंच में ऐसा कोई रस है।

भारतीय साहित्य के इस प्रवाद की सत्यता की जाँच के लिए, अमेरिका के कुछ विद्वानों ने परीक्षण किए है।[३६] पहले विद्वान् वाशिंगटन वासी डा० काव्मस हैं। इनका मत है कि हंस के मुँह की बनावट ऐसी है कि वह जब कोई वस्तु खाता है, तब उसका पतला अंश उसके मुँह से बाहर गिर पड़ता है और कड़ा अंश पेट में चला जाता है। इनके मत में दूध का तात्पर्य इसी कड़े अंश से है। किन्तु नीर-क्षीर विवेक की यह व्याख्या यथार्थ नहीं प्रतीत होती, क्योंकि दूध को कड़ा अंश समझना हास्यास्पद है।[३७] एक दूसरे अमेरिकन विद्वान् हार्वर्ड विश्वविद्यालय के अध्यापक श्री लांगमैन ने इस प्रवाद की जाँच के लिए कई हंस मंगाकर पाले और अनेक तरह से उनकी परीक्षा की। इन परीक्षाओं से वे इस परिणाम पर पहुंचे कि हंस में नीरक्षीर विवेक करने की शक्ति नहीं है। यह प्रवाद बिल्कुल मिथ्या है।

सम्भवतः यह प्रवाद सर्वथा निर्मूल और निराधार नहीं है। पहले इस बात का निर्देश किया जा चुका है कि हंस का प्रिय भोजन कमलनाल या मृणाल है। विक्रमोर्वशी

---

३५. भामिनी विलास—

नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥

देखिये, भर्तृहरि नीतिशतक १।४२—

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः॥

३६. महावीरप्रसाद द्विवेदी—रसज्ञ-रंजन (द्वितीय संस्करण, आगरा १९६३) पृ० ७४-८०

३७. महावीरप्रसाद द्विवेदी—रसज्ञ-रंजन पृ० ७९-८०

में राजा पुरूरवा कहता है कि यह सुरांगना उर्वशी (मेरा मन शरीर से उसी तरह) खींच रही है जिस तरह राजहंसी ऐसे मृणाल से सूत्र खींचती है, जिसका अगला हिस्सा टूट चुका है—

सुरांगना कर्षति खण्डिताग्रात्
सूत्रं मृणालादिव राजहंसी।

विक्रमो० १।२०

कमलनाल या भिस को तोड़ने से उसके भीतर से सफेद सूत जैसी चीज़ निकलती है, यही मृणालसूत्र या भिससूत्र है। इसको हंस बड़े चाव से खाते हैं। मृणालदण्ड की गांठों से एक तरह का रस भी निकलता है, यह पतले दूध की तरह सफेद होता है। इसमें कुछ मीठापन भी होता है। इस रस का नाम क्षीर भी है। पेड़ों से निकलने वाले पानी के सदृश श्वेत रंग के सभी द्रव पदार्थों का सामान्य नाम क्षीर है। गूलर, बरगद, थूहड़, आक तक से निकलने वाली सफ़ेद चीज़ को दूध कहा जाता है। कमलनाल या मृणालदण्ड पानी में रहते हैं, इनके भीतर से क्षीरतुल्य सफ़ेद रस निकलता है। यही हंसों का पानी के बीच में से दूध (क्षीरमिवाम्बुमध्यात्) निकालकर पीना है। यह सर्वथा प्रकृतिसिद्ध और वैज्ञानिक तथ्य है।

आरम्भ में शायद हंसों के नीर-क्षीर विवेक का आशय इस प्रकार की विशेष क्रिया से रहा होगा। शनैः शनैः इसकी उपेक्षा और विस्मरण होने लगा तथा विशेष क्षीर को सामान्य दूध समझ कर यह कल्पना की जाने लगी कि हंस जलमिश्रित दूध में से दूध को पृथक् कर सकते हैं और जल को छोड़ कर दूध पी जाते हैं। कालिदास ने इसी प्रवाद का उल्लेख करते हुए कहा है—

हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः।

अभिज्ञान शाकुन्तल ६।२८

हंस के बारे में एक और भी प्रवाद है कि वे मोती चुगते हैं। हिन्दी की यह उक्ति प्रसिद्ध है कि "की हंसा मोती चुगैं, की भूखे रहि जांए।"

यह प्रवाद भी सत्य नहीं प्रतीत होता। हंसों के प्रिय स्थान मानसरोवर में कहीं मोती नहीं पैदा होते। शीतकाल में हंस भारत की जिन नदियों और सरोवरों में रहते हैं, उनमें भी मोती नहीं पाए जाते। यदि हंस मोती न मिलने पर भूखे रहते हों तो वे मानसरोवर और भारत दोनों स्थानों पर साल भर भूखे ही रहते होंगे।

सम्भवतः इस मिथ्या प्रवाद के प्रचलित होने का यह कारण है कि निर्मल और स्वच्छ जल की उपमा मोती से दी जाती है। मानसरोवर का जल अत्यन्त निर्मल है। इससे उसके मोती सदृश निर्मल जल की उपमा मोती से देते-देते लोगों ने जल को ही मोती मान लिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। शीतकाल में जब हंस भारत में आते हैं तो वर्षा की समाप्ति के बाद यहाँ के सरोवरों और नदियों का जल भी मुक्ता की भान्ति शुभ्र और निर्मल हो जाता है। हंसों को ऐसा जल प्रिय होने से ही मोती चुगने का प्रवाद आरम्भ हुआ प्रतीत होता है। गंगा-जल भले ही कितना पवित्र हो, वर्षा में इसके गाढ़ा हो जाने पर हंस को वह प्रिय नहीं होता और वे गंगा-तीर छोड़कर मानसरोवर चले जाते हैं। अतएव यह कहा गया है—

गंगातीरमपि त्यजन्ति मलिनं ते राजहंसा वयम्।
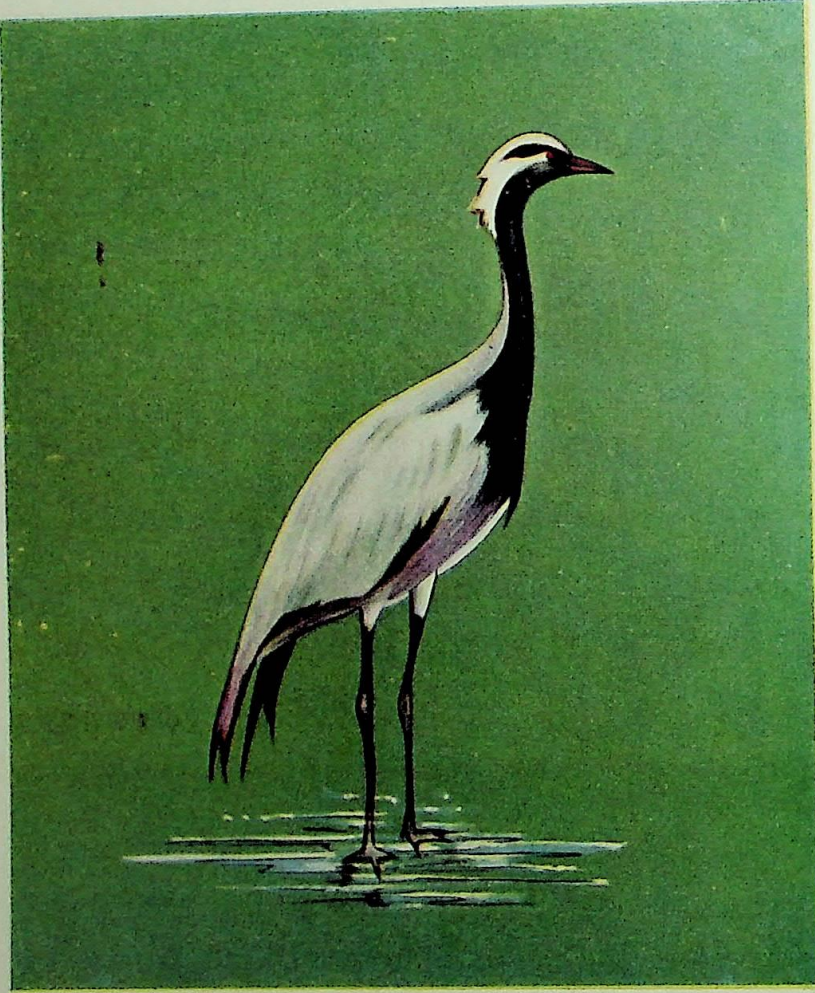
क्रौञ्च

मनोहरक्रौञ्चनिनादितानि सीमान्तराण्युत्सुकयन्ति चेतः ।

ऋतुसंहार-४।८

४ | क्रौंच

संस्कृत वाङ्मय में क्रौंच का असाधारण महत्व है। श्लोकात्मक काव्यधारा के प्रारम्भ होने की प्रेरणा का मूल स्रोत इस पक्षी को माना जाता है। रामायण (१।२।८—१५) में कहा गया है कि एक बार जब आदिकवि वाल्मीकि तमसा नदी के तीर पर पहुंचे तो वहाँ उन्होंने मधुर कूजन करते हुए तथा रति कर्म में व्यापृत एक क्रौंच जोड़े को देखा। इसी समय एक बहेलिये ने नर-पक्षी को मार दिया। मादा पति के वियोग में क्रन्दन करने लगी। महर्षि ने उसका घोर आर्तनाद और करुण चीत्कार सुना। उनके हृदय में उस पक्षी के प्रति गहरी सहानुभूति और शोक के भावों का सहसा उद्रेक हुआ; यह शोक ही श्लोक बन गया और इस दु:ख को व्यक्त करने के लिए सरस्वती देवी निम्नलिखित पद्य के रूप में उनके कण्ठ से नि:सृत हुई :—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

वा. रा. १।२।१५

'हे निषाद, तुझे अनन्त काल तक कोई ठिकाना या प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त होगी, क्योंकि तूने कामव्यापार में संलग्न क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को मारा है'। यह पद्यबद्ध शाप ही लौकिक संस्कृत साहित्य में आदिकवि वाल्मीकि का पहला श्लोक समझा जाता है। इससे उनमें पद्य बनाने की प्रतिभा का प्रस्फुरण हुआ और उन्होंने आदर्श महापुरुष मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के चरित्र-चित्रण में इस प्रतिभा का उपयोग किया। अत: क्रौंच पक्षी को संस्कृत की लौकिक काव्यधारा की गंगोत्री समझना चाहिए।

वैदिक साहित्य में इस पक्षी का क्रुङ्, क्रुञ्च तथा क्रौंच के विविध रूपों में उल्लेख है। मैत्रायणी संहिता (३।११।१६) काठक संहिता (३८।१), वाजसनेयी संहिता (१९।७३) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (२।६।१।३) में इसका निर्देश है। परवर्ती युगों में नीरक्षीर विवेक की शक्ति हंस की विशेषता समझी जाने लगी; वैदिक युग में वह क्रुङ् पक्षी में मानी जाती थी। वाजसनेयी संहिता में कहा गया है कि क्रुङ ने दूध को पानी से अलग कर दिया—

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत्क्रुङ आङ्गिरसो धिया। ऋतेन सत्यमिन्द्रियम्

महाकवि कालिदास ने हेमन्त और शिशिर ऋतुओं के प्रसंग में तीन बार क्रौंच का उल्लेख किया है। हेमन्त ऋतु (मार्गशीर्ष तथा पौष मास=नवम्बर, दिसम्बर) का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस समय गांवों की सीमाओं पर खेत धान की फसल से भरे हुए हैं, इन्हें हरिणियों के झुण्ड सुशोभित कर रहे हैं, ये खेत क्रौंच पक्षियों के कूजन से गूंज रहे हैं तथा लोगों के मन को प्रसन्न एवं उत्सुक बना रहे हैं :—

प्रभूतशालिप्रसवैश्चितानि,
मृगाङ्गनायूथविभूषितानि।

मनोहरक्रौंचनिनादितानि,
सीमान्तराण्युत्सुकयन्ति चेतः ।।

ऋतुसंहार ४।८

हेमन्त ऋतु का वर्णन करते हुए महाकवि ने यह शुभ कामना प्रकट की है कि यह ठण्डी ऋतु लोगों को सुख देने वाली हो, यह अपने अनेक गुणों के कारण मन को अच्छी लगने वाली है, स्त्रियों के चित्त को लुभाने वाली है, इसमें गांवों की सीमायें पके हुए धान के खेतों से भरी हुई हैं, इसमें पाला गिरता है और क्रौंच पक्षी खूब ध्वनि करते हैं—

बहुगुणरमणीयो योषितां चित्तहारी,
परिणतबहुशालिव्याकुलग्रामसीमा ।
विनिपतिततुषारः क्रौंचनादोपगीतः,
प्रदिशतु हिमयुक्तः काल एषः सुखं वः ।।

ऋतुसंहार ४।१९

इसी प्रकार शिशिर ऋतु (माघ, फाल्गुन=जनवरी, फरवरी) का वर्णन करते हुए कहा गया है कि हे सुन्दर नयन वाली प्रिये ! जिस ऋतु में धान और ईख के पके खेतों से भूमि भर जाती है, जिसमें कहीं-कहीं क्रौंच की बोली गूंजती है, जिसमें कामभावना बहुत बढ़ जाती है, स्त्रियों की प्रिय उस शिशिर ऋतु का वर्णन सुनो—

प्ररूढशालीक्षुचयावृतक्षितिं,
क्वचित्स्थितक्रौंचनिनादराजितम् ।
प्रकामकामं प्रमदाजनप्रियं,
वरोरु कालं शिशिराह्वयं शृणु ।।

ऋतुसंहार ५।१

कालिदास के उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि क्रौंच पक्षी में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

(१) यह गांवों के आसपास खेतों में पाया जाता है।

(२) यह धान के खेतों में विशेष रूप से मिलता है।

उपर्युक्त तीनों श्लोकों में इसका वर्णन शालि (धान) के साथ किया है। शालि (धान) के साथ क्रौंच के विशेष सम्वन्ध का उल्लेख रामायण (किष्किन्धा काण्ड ३०।५४) में भी हुआ है और यह कहा गया है कि निम्न वस्तुएँ वर्षा के अन्त की सूचना देती हैं—स्वच्छ जल, खिले हुए कुमुद, क्रौंच की ध्वनि, धान के पके हुए खेत, मृदु हवा और निर्मल चन्द्र—

जलं प्रसन्नं कुमुदं प्रहासं क्रौंचस्वनः शालिवनं विप्रकृष्टम् ।
मृदुश्चवायुर्विमलश्च चन्द्रः शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम् ।।

(३) इसकी आवाज हेमन्त और शिशिर ऋतु में सुनाई देती है। कालिदास ने इन विशेषताओं के अतिरिक्त उसके रूप का कोई ऐसा वर्णन नहीं किया, जिससे हम क्रौंच के स्वरूप का निश्चित रूप से निर्धारण कर सकें।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वैदिक काल से नीरक्षीरविवेकी समझे जाने वाले तथा पद्यात्मक संस्कृत काव्यधारा प्रवर्त्तन कराने वाले क्रौंच के यथार्थ रूप का हमें ज्ञान नहीं है।

प्राचीन एवं नवीन कोशकार, टीकाकार और अनुवादक क्रौंच की समस्या पर बहुत कम प्रकाश डालते हैं। वाजसनेयी संहिता के भाष्यकार उव्वट ने उपर्युक्त मन्त्र (१९।७३) का भाष्य करते हुए लिखा है।

क्षीरोदकयोः संसृष्टयोः अद्भ्यः सकाशात्,
क्षीरं वियुज्य अपिबत् पीतवान् क्रुङ् हंसः ।
हंसजातिमास्थायांगिरसः प्राणः ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि उव्वट क्रुङ् या क्रौंच को हंस समझता है। किन्तु यह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि कोशों में तथा प्राचीन साहित्य में सर्वत्र क्रौंच और हंस का पृथक् उल्लेख हुआ है। कालिदास ने ऋतुसंहार में हंस के निनाद का शरद ऋतु (३।१६) में तथा क्रौंच के कूजन का हेमन्त (४।८) तथा शिशिर (४।१) में वर्णन किया है। अतः क्रौंच और हंस अलग-अलग पक्षी होने चाहिएं।

अमरकोश के टीकाकार भानुजीदीक्षित 'क्रुङ्-क्रौंच' की व्याख्या करते हुए कहते हैं— क्रौंचस्य, करांगुल इति ख्यातस्य (पृ० १९५)। क्रुङ् और क्रौंच ये करांगुल नामक पक्षी के दो नाम है। किन्तु हमें यह नहीं पता कि करांगुल किस पक्षी को कहते हैं ?

शब्दकल्पद्रुम ने लिखा है—क्रौंचः पक्षिभेदः, कोंचबक इति भाषा अर्थात यह लोक भाषा में कोंचबक नाम से प्रसिद्ध है किन्तु हमें कोंचबक नामक पक्षी का भी पूरा पता नहीं।

आधुनिक कोशकारों में मोनियर विलियम्ज ने इसका अर्थ Curlew तथा Heron किया है।[1] मैकडानल और कीथ इसे Snipe मानते हैं।[2] इससे यह स्पष्ट है कि आधुनिक विद्वान् इसे Curlew, Snipe या Heron मानते हैं। इनका वैज्ञानिक स्वरूप निम्न लिखित है—

(१) Curlew को हिन्दी में बड़ा गुलिन्दा या गोरघूंघ और गुजराती में खलीली कहते हैं।[3] इसका वैज्ञानिक नाम Numenius arquata Linnaeus है। यह मुर्गी के आकार का खाकी भूरे रंग का पक्षी होता है। इसके बदन के उपरले हिस्से के खाकी रंग पर काले रंग के निशान बने होते हैं। छाती का निचला भाग सफेद होता है। पूँछ छोटी और धारियों वाली होती है। इसकी चोंच बड़ी लम्बी (लगभग ५'') तथा मुड़ी हुई होती है। यह इसे समुद्र तट पर कीचड़ में तथा केंकड़ों द्वारा बनाये छेदों में से कीड़े निकालने में विशेष रुप से सहायक होती है। यह पक्षी रूस के स्टेपीज़ मैदानों, उत्तरी योरोप और साइबेरिया में अप्रैल से जून तक अण्डे देने के बाद दक्षिण की ओर भारत, चीन तथा पूर्वी द्वीप समूह की तरफ प्रयाण करता है। यह हमारे देश में अगस्त, सितम्बर में आने लगता है और मार्च में उत्तर की ओर प्रव्रजन करता है।

ये पक्षी प्रायः जल के किनारे रहते हैं। श्री धर्मकुमारसिंहजी के शब्दों में इनका प्रिय स्थान समुद्र तट के कीचड़युक्त प्रदेश या रेतीले किनारे हैं। प्रातः और सायंकाल ये समुद्र में भाटे के समय तट पर अपने आहार की सामग्री—कीड़े आदि ढूंढ़ने में लगे रहते हैं और दोपहर के ज्वार के समय पानी चढ़ने पर विश्राम करते हैं। उड़ते हुए कूर-ली (Coor-lee) या Cur-lew की ध्वनि करते हैं। अतः इन्हें Curlew कहते हैं।

---

१. Monier Williams :—A Sankrit English Dictionary (Oxford 1956) p. 323.

२. Macdonell and Keith :—Vedic Index Vol. I P. 198-9.

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बड़ा गुलिन्दा समुद्र तट पर विचरण करने वाला पक्षी है और समुद्र के पानी में उतार आने पर अपने आहार की खोज करता है[३]। इसमें कालिदास द्वारा बतायी विशेषताएँ गांवों के आस-पास खेतों में मिलना नहीं पाया जाता है। अतः इसे कालिदास का क्रौंच नहीं माना जा सकता।[४]

(२) **चहा** (Common or Fantail Snipe)—कीथ और मैकडानल ने वैदिक इण्डेक्स में इसे भी क्रौंच माना है। इसका वैज्ञानिक नाम Capella gallinago Linnaeus है। यह ११" की छोटी सी चितकबरी चिड़िया है। इसके नर-मादा में कोई भेद नहीं होता। इसकी पीठ सफेद धारियों से युक्त गाढ़े रंग की होती है। नीचे का समस्त हिस्सा सफेद और दुम काली होती है। दुम में १२ से १८ तक तथा सामान्य रूप से १४ पर होते हैं। इन परों की आकृतियों के भेद से चहा पंखे के आकार वाली (fantail) तथा पतले तार जैसे परों वाली (Pintail snipe) कहलाती है। इसकी चोंच लम्बी, पतली, नोक पर कुछ मोटी होती है।

इसकी चोंच की ऐसी बनावट है कि इससे यह कीचड़ में से छोटे कीड़ों को पकड़ लेती है, और कीचड़ छनकर अलग हो जाता है। इसकी टाँगें और पैर काफी लम्बे और हरे रंग के होते हैं। आँखें बड़ी तथा सिर में पीछे की ओर होती हैं और पिछले सिर के नीचे कान का छेद होता है। इसकी बड़ी आँखें यह सूचित करती हैं कि यह मुख्य रूप से अपना भोजन ढूंढ़ने वाला पक्षी है। उसकी एक विशेषता यह है इसकी आँख के चारों ओर सफेद पट्टी होती है और आँख के सिर के पिछले भाग में कुछ दूर चली जाती है।

इसकी पहिचान लम्बी चोंच, आँख के चारों ओर की सफेद पट्टी तथा विशेष प्रकार की उड़ान से होती है। यह आहार पाने पर फौरन आवाज करके दलदली जगह से आसमान में काफी ऊँचे उड़ जाती है। उड़ते हुए गहरे भूरे, काले और चितकबरे तथा नीचे के सफेद परों से पहचान ली जाती है।

यह चिड़िया योरोप में नार्वे, स्वीडन से पिरेनीज पर्वत माला तक तथा उत्तरी और मध्य एशिया में अण्डे देने के बाद जाड़ों में दक्षिण की ओर भूमध्य सागर, उत्तर-पूर्वी अफ्रीका, भारत, लंका, बर्मा और मलाया में आती है। हमारे देश में इसका आगमन अक्टूबर में होता है और अप्रैल में यह उत्तर की ओर लौट जाती है।

यह तालाबों, झीलों के दलदली किनारों, समुद्रों तथा नदियों के तटों को बहुत पसन्द करती है। आहार की दृष्टि से विभिन्न स्थानों में पायी जाती है। प्रातः, शाम या रात्रि में अपना आहार खोजती है, दिन भर घास या सरकण्डों में छिपे-छिपे ऊँघती रहती है। यह बड़े शर्मीले स्वभाव की है। जरा-सी आहट से ही उड़ जाती है। एक पक्षिशास्त्री ने लिखा है कि इसकी प्रमुख विशेषता है कि यह अपना विनाश करने वालों को बहुत कम दिखायी देती है। यह

---

३. Salim Ali :—Ibid P. 94. Dharmakumarsinghji :—Ibid P. 183-4.

४. कालिदास के ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवादकों ने क्रौंच के बारे में बड़ी गड़बड़ की है। उदाहरणार्थ श्री आर० एस० पंडित ने ऋतुसंहार के अंग्रेजी अनुवाद (दी नेशनल इनफार्मेशन एण्ड पब्लिकेशन लि० बम्बई १९४६) में ४।८ (पृ० ५२) में क्रौंच का अर्थ Demoiselle crane किया है तथा ४।१८ में आगे इसी शब्द की विशेष व्याख्या करते हुए पृ० ९० पर इसे Curlew बताया है।

कीचड़ में तथा छिछले पानी में जहाँ घास और सरकण्डे उगे हों, वहाँ छिपे हुए अपने आहार का अन्वेषण करती है।[५]

इस चिड़िया के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यह बस्तियों से दूर एकान्त स्थानों में रहती है। यह शिकारियों की पकड़ में मुश्किल से आती है। फिर भी इसका शिकार बड़े चाव से किया जाता है, क्योंकि योरोप में यह अन्ध विश्वास फैला हुआ है कि इसका मांस खाने से सोने के दो दाँत उग आते हैं।

चहा क्रौंच नहीं हो सकता क्योंकि यह मनुष्यों की बस्ती से दूर रहता है। क्रौंच के विषय में कालिदास का यह वर्णन है कि वह गाँव की सीमा पर धान के खेतों में निनाद करता है। यदि आधुनिक कोशकारों का बड़ा गुलिन्दा या चहा क्रौंच नहीं है तो क्रौंच किस पक्षी को मानना चाहिए, यह समस्या बनी रहती है।

श्री सत्यचरण लाहा ने इसका कुछ समाधान शब्दकल्पद्रुम से और वैजयन्ती कोश से किया है।[६] शब्दकल्पद्रुम में इसे कोंचबक कहा गया है। इससे यह सूचित होता है कि यह बक या बगुले की जाति का पक्षी है। वैजयन्तीकोश में बक जाति के पक्षियों का परिगणन करते हुए कहा गया है:—

बको बकोटः कह्वोऽथ बलाका बिसकण्ठिका
बकजातिर्दर्वितुण्डो दर्विः क्रौंचश्चदर्विदा ॥

इससे यह स्पष्ट है कि क्रौंच को हमें बक जाति के पक्षियों में देखना चाहिए। आधुनिक पक्षिशास्त्रियों के मतानुसार इस जाति के पक्षियों का एक भेद धान के खेतों में पाये जाने के कारण Paddy Bird या धान का पक्षी कहलाता है। श्री लाहा उसे ही क्रौंच पक्षी मानते है। इसका दूसरा नाम Pond Heron या सरोवर बक है। इसके पंखों का रंग आस पास की घास और कीचड़ से मिलता है। इस कारण इसे पृथक रूप में पहिचानना कठिन होता है, अतएव इसे हिन्दी में अन्धा बगुला Blind Heron भी कहते हैं। इसका वैज्ञानिक स्वरूप निम्नलिखित है।

अन्धा बगुला (Pond Heron)—इसका वैज्ञानिक नाम Ardeola grayii (Sykes) है। यह आकार में मुर्गी के बराबर १८ इंच लम्बा पक्षी होता है। इसके पंखों का रंग रूप बदलता रहता है। सर्दियों में इसके सिर पर भूरे तथा पीले रंग के धब्बे और धारियाँ होती हैं, गर्दन के अगले भाग पर इन धारियों का रंग कुछ हल्का होता हैं। ठोड़ी और गला सफेद होता है। पीठ और कन्धे धूसर और भूरे रंग के होते हैं। किन्तु गर्मियों में गर्भाधान और सन्तानोत्पादन के समय इसके पंखों में परिवर्तन हो जाता है। सिर पर लम्बे नुकीले पंखों की नयी कलगी निकल आती है, पीठ के पर धूसर-भूरे रंग के स्थान पर गहरे लाल (Maroon) वर्ण के हो जाते हैं। चोंच के तीन रंग होते हैं। इसका निचला आधारभूत भाग नीला, बीच का भाग पीला और अगला काला होता है। इसकी टाँगें हरे रंग की होती हैं। अन्य बगुलों की अपेक्षा इसकी गर्दन और टाँगें छोटी होती हैं। नर और मादा एक जैसे होते हैं और

---

५. Salim Ali :— P. 96 Whistler P. 475-6 Dharmakumarsinghji P, 195-6.
६. श्री सत्यचरण लाहा—कालिदासेर पाखी पृ० ९२।
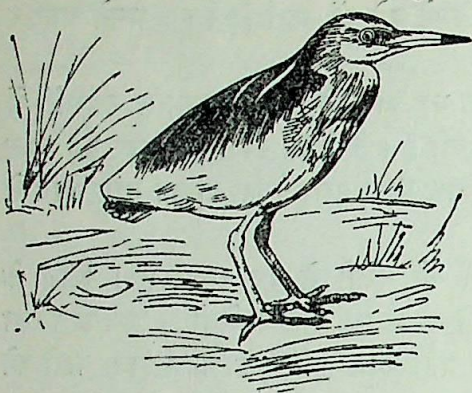
अन्धा बगुला

झुण्डों में रहते हैं।

यह ईरान की खाड़ी से भारत, बर्मा, लंका तथा मलाया प्राय:द्वीप तक पाया जाता है। भारत के मैदानों में सर्वत्र तथा पहाड़ों में ४००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह प्रधान रूप से भारत में बारह मास रहने वाला है, मेढकों, कीड़ों, केकड़ों और छोटी मछलियों को खाता है। इसे तालाबके किनारे कीचड़ में या घुटने तक गहरे पानी में निश्चल दशा में सिर और गर्दन पीछे की ओर किये हुए या सावधानी के साथ पैर रखे हुए देखा जा सकता है। यह अपना शिकार देखते ही उस पर झपट पड़ता है। जर्डन ने इसके विषय में यह लिखा है कि इसका विशेष भोजन केंकड़े (Crabs) है। यह पानी में, खेतों में या धान के खेतों की मेड़ों पर बैठकर बड़े धैर्य के साथ अपने आहार की तलाश करता है। पानी वाली जमीन पर थोड़ी थोड़ी दूरी पर बैठे हुए पक्षी कनिंघम के शब्दों में छोटे पहरेदारों की पंक्तियों की भाँति प्रतीत होते हैं। यही सम्भवतः कालिदास की क्रौंचमालाएँ हैं। इसलिए राजनिघण्टुकार ने इसे पंक्तिचर अर्थात् पांतों में विचरण करने वाला लिखा है।

मई से सितम्बर तक तथा विशेष रूप से जुलाई और अगस्त में ये अपने घोंसले बनाते हैं। ये घोंसले उपयुक्त स्थानों में पेड़ों की शाखाओं पर बनाये जाते हैं और अनेक पक्षी आस-पास अनेक घोंसले बनाते हैं। इस विषय में श्री धर्मकुंमारसिंह जी ने लिखा है कि घोंसलों के लिए शहरों में तथा तालाब के पास बड़े पेड़ों को अधिक पसन्द किया जाता है।[७] श्री सत्यचरण लाहा के मतानुसार इस पक्षी में क्रौंच की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(१) यह बक जाति का पक्षी है।

(२) यह धान के खेतों में बहुत पाया जाता है[८]।

(३) मनुष्यों की बस्तियों के पास पेड़ों पर घोसला बनाता है तथा ऊँची आवाज करता है। अतः श्री लाहा ने इसी पक्षी को क्रौंच माना है।

सारस परिवार का पक्षी—किन्तु श्री सत्यचरण लाहा का उपर्युक्त मत ठीक नहीं प्रतीत होता, इससे अन्य विद्वान् सहमत नहीं हैं। वे क्रौंच को कई कारणों के आधार पर सारस परिवार का पक्षी मानते हैं। पहला कारण यह है कि कालिदास का क्रौंच हंस की भाँति शीतऋतु का पक्षी है, यह वर्षा का अवसान होने पर हमारे देश में आता है। किन्तु अन्धा बगुला हमारे देश में बारह मास रहने वाला पक्षी है। अतः यह क्रौंच नहीं हो सकता। दूसरा कारण ध्वनिविषयक है तथा तीसरा भाषाशास्त्रविषयक (Philological) है। क्रौंच शब्द अनुकृति मूलक (Ornomatopoetic) है। अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी ने लिखा है—क्रुंचति इति

---

७. Shri Dharmakumarsinghji:--Birds of Saurashtra P. 140-1

८. श्री सत्यचरण लाहा—कालिदासेर पाखी पृ० ९३-४

क्रुङ् । पूर्वी सामान्य सारस (Eastern Common Crane) क्रों-क्रां (Kron-Kran) की ध्वनि करता है। यही सम्भवतः क्रौञ्च शब्द का मूल है। तीसरा कारण भाषाशास्त्र सम्बन्धी है। यह कहा जाता है कि संस्कृत क्रौंच ने भारतीय भाषाओं में कुंज (राजस्थानी-कुँझ, क्रुंझ, पंजाबी कूंज, गुजराती कुंज) का रूप धारण किया है। अतः वर्तमान कुंज ही क्रौंच होना चाहिए।

कुंज, शब्द का प्रयोग सारस परिवार के निम्नलिखित दो प्रकार के पक्षियों के लिए होता है—

(१) Eastern Common Crane (Grus Gilfordi Sharpe) श्री धर्मकुमारसिंह जी, भावनगर के प्रसिद्ध पक्षिविशारद श्री प्रद्युम्न भाई कंचनराय देसाई, गुजरात नेचुरल हिस्टरी सोसायटी के मन्त्री और पक्षी विशेषज्ञ श्री हरिनारायण आचार्य इसी को कुंज अथवा क्रौंच मानते हैं।

(२) Demoiselle Crane (Anthropoides Virgo) श्री सालिम अली तथा ह्विसलर (पृ० ४४४) ने इसे कुंज कहा है, इसका दूसरा नाम कुलंग तथा कर्र कर्र ध्वनि करने के कारण करकरा भी है। पंजाबी में इसे कुंज या कूंज कहा जाता है। इन दोनों पक्षियों का विस्तृत वर्णन आगे सारस के प्रकरण में किया गया है।

इस विषय में यह तथ्य भी स्मरणीय है कि जिस प्रकार संस्कृत में क्रौञ्च ने आदिकवि वाल्मीकि को श्लोक बनाने की प्रेरणा प्रदान की थी, उसी प्रकार कुंज ने आजकल अनेक सुन्दर लोकगीतों को माधुर्य एवं लालित्य दिया है। इस परदेसी पंछी के पंखों की सुन्दरता पर मुग्ध होकर प्रियतम के पास अभिसार करने वाली एक राजस्थानी किशोरी कहती है—"हे कुंज, अपने पंख मुझे दे दे। पंखों का वेश सजा करके मैं प्रियतम के पास जाऊँगी। बाद को तेरे पंख तुझे लौटा दूंगी।" एक अन्य राजस्थानी गीत में कहा है कि प्रियतम का मार्ग उचक-उचककर निहारते-निहारते मुग्धा नायिका की ग्रीवा भी कुंज की गर्दन की तरह लम्बी हो गयी है। इसी प्रकार एक दूसरे राजस्थानी गीत में यह वर्णन है कि प्रियतम की प्रतीक्षा में विरहिणी की टांगें कुंज की टांगों जैसी लम्बी हो गयी हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि कुंज का लोक साहित्य में बहुत वर्णन हुआ है. ये अन्धे बगले (Pond Heron) की अपेक्षा अधिक सुन्दर होते हैं, इनकी ध्वनि अधिक मधुर होती है। अतः इन्हें क्रौंच मानना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

५ | कोयल

शिशिर ऋतु का अवसान होने पर जब वसन्त का आगमन होता है, अमराइयाँ आम के बौरों से महक उठती हैं, तब इनमें कोयल की सुमधुर तथा संस्कृत कवियों के अनुसार कामोद्दीपक कूक सुनाई देने लगती है। जिस प्रकार चातक वर्षा की अगवानी करने वाला पक्षी है, वैसे ही कोकिल ऋतुराज वसन्त के आगमन की सूचक है। अतः कालिदास ने वसन्त का वर्णन करते हुए अपने काव्यों और नाटकों में इसका सर्वत्र स्मरण किया है।

अपने अण्डे को दूसरे पक्षी के घोंसले में रखती हुई कोयल

ऋतुसंहार में कहा गया है कि वसंत ऋतु में पाला पड़ना बन्द हो जाने से आम के बौरों से लदी हुई डालियों को प्रकम्पित करने वाला, कोयल की वाणी को चारों दिशाओं में फैलाने वाला, सब लोगों के मन को हरने वाला वसन्ती पवन बह रहा है—

आकम्पयन्कुसुमिताः सहकारशाखा
विस्तारयन्परभृतस्य वचांसि दिक्षु।
वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां
नीहारपातविगमात्सुभगो वसन्ते॥

ऋतुसंहार ६।२४

बौरे हुए आम के पेड़ों में बसे हुए पवन के कारण कामोन्माद से विह्वल कोयल की कूकों से तथा भौंरे के कानों को प्रिय लगने वाले गीत की गुंजन-ध्वनियों से (मान करने वाली) मनस्विनो स्त्रियों के हृदय भी डोल जाते हैं—

आकम्पितानि हृदयानि मनस्विनीनां
वातैः प्रफुल्लसहकारकृताधिवासैः।
उत्कूजितैः परभृतस्य मदाकुलस्य
श्रोत्रप्रियैर्मधुकरस्य च गीतनादैः॥

ऋतुसंहार ६।३४
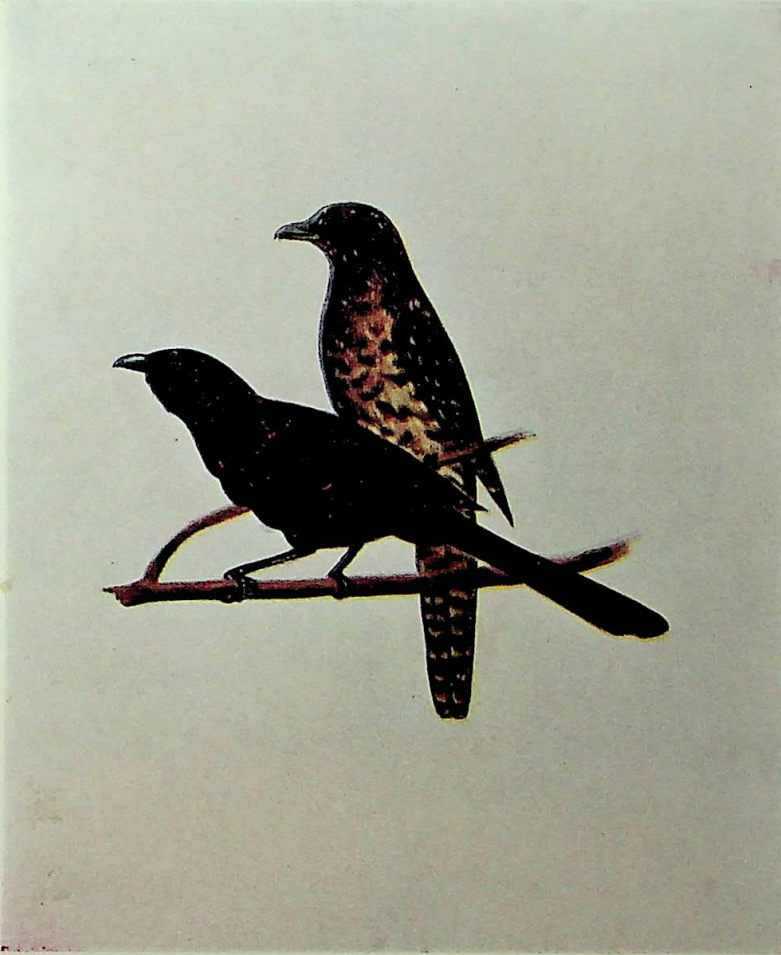
कोकिलदम्पती

प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ।

अभिज्ञानशाकुन्तल-५।२२

अन्यत्र कोकिल के मधुर कूजन से रम्य वसन्त के सम्बन्ध में कहा है—मलय के वायु-वाला, कोकिल की कूक के कारण रमणीय, सुरभित मधु के स्राव से सुगन्ध फैलाने वाला, विविध प्रकार के भौंरों के समूहों से घिरा हुआ वसन्त का यह सर्वोत्तम समय आपके लिए सुखकर हो—

मलयपवनविद्धः कोकिलालापरम्यः
सुरभिमधुनिषेकाल्लब्धगन्धप्रबन्धः ।
विविधमधुपयूथैर्वेष्ट्यमानः समन्ता—
द्भवतु तव वसन्तः श्रेष्ठकालः सुखाय ।।

ऋतुसंहार ६।३७

कामदेव का वैतालिक—वसन्त में कोयल के मधुर और मादक कूजन के कारण ही इसे कामदेव का स्तुति करने वाला वैतालिक अथवा वन्दी बताया गया है। "आम के सुन्दर बौर ही जिस कामदेव के बाण हैं, टेसू जिसका धनुष है, भौंरों की पाँत जिसके धनुष की डोरी है, मलयाचल से आने वाला मस्त पवन ही जिसका मतवाला हाथी है, चन्द्रमा ही जिसका धवल तथा निष्कलंक छत्र है, कोयल ही जिसकी वन्दना करने वाली गायक है, वह कामदेव वसन्त के साथ आपका कल्याण करे—

आम्री मंजुलमंजरी वरशरः सत्किंशुकं यद्धनु-
र्ज्या यस्यालिकुलं कलङ्करहितं छत्रं सितांशुः सितम् ।
मत्तेभो मलयानिलः परभृता यद्वन्दिनो लोकजि-
त्सोऽयं वो वितरीतरीतु वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः ।।

ऋतुसंहार ६।३८

रघुवंश के नवें सर्ग में दशरथ के शासनकाल में वसन्त ऋतु के वर्णन के प्रसंग में इसके क्रमिक विकास का सुन्दर चित्रण करते हुए कालिदास ने कहा है कि इसमें पहले फूल खिले, तदनन्तर कोंपलें फूटीं, फिर भौंरे गूंजने लगे और तब कोयल की कूक भी सुनाई पड़ने लगी, इस क्रम से धीरे-धीरे पेड़ों वाली वनस्थली में वसन्त प्रकट हुआ—

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवा-
स्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधु-
र्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ।।

रघु० ९।२६

मालविकाग्निमित्र में राजा की स्तुति करने वाले वैतालिक उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि आप शरीरधारी कामदेव के समान कोयल की सुन्दर कूक सुनने में अनुराग रखते हुए विदिशा के तीर पर फैले हुए उपवनों में अपना वसन्तकाल बिता रहे हैं—

परभृतकलव्याहारेषु त्वमात्तरतिर्मधुं,
नयसि विदिशातीरोद्यानेष्वनंगं इवांगवान् ।

मालविकाग्निमित्र ५।१

मधुर वाणी—कोयल अपनी मीठी वाणी के लिए प्रसिद्ध है। इसी कारण कौए की तरह

काली कलूटी होने पर भी कोयल सम्मान का पात्र बनती है और यह कहा जाता है कि कौआ और कोयल दोनों काले हैं, ऊपर से देखने में इनमें कोई भेद प्रतीत नहीं होता किन्तु वसन्त आने पर कोयल की बोली से दोनों का भेद स्पष्ट हो जाता है—

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः ।
वसन्तसमये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ॥

नीतिशतकम् १३

कालिदास ने अनेक स्थानों पर कोयल की मीठी वाणी का वर्णन किया है। विक्रमोर्वशी में राजा पुरूरवा ने उसे सम्बोधन करते हुए मधुरप्रलापिनि (४।२४) कहा है, इसे विभिन्न स्थलों में मंजुस्वना (विक्रमो ४।२७) मधुरस्वरा (माल० ४।२), कहा गया है। स्वाभाविक रूपसे यह मधुर वाणी बोलने में अतीव पटु है, अतः इसे कुमारसंभव (४।१६) में मधुरालापनिसर्गपंडिता कहा गया है। कुमारसंभव १।४५ में पार्वती की मधुर वाणी की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उनकी मीठी बोली के आगे कोयल की कूक कानों को ऐसी कड़वी लगती है जैसे किसी अनाड़ी ने अनमिली वीणा के बेसुरे तार छेड़ दिये हों। यहां तो कालिदास ने पार्वती की वाणी के आगे अतिशयोक्ति के रूप में कोयल की कूक की मिठास को अत्यन्त तुच्छ माना है। किन्तु सामान्यरूप से वह इसे स्त्रियों की वाणी से अधिक मीठा और उनका तिरस्कार करने वाला बताता है। उसके मत में चित्त को प्रसन्न करने वाले कोयल के गीतों से यह वसन्त सुन्दरियों की उत्तम (रसभरी) बातों की खिल्ली उड़ा रहा है।

परभृतकलगीतैर्ह्लादिभिः सद्वचांसि ।
... ...
उपहसति वसन्तः कामिनीनामिदानीम् ।

ऋतुसंहार ६।३१

मदनदूती—संस्कृत कवियों के वर्णनानुसार वसन्त कामी जनों के लिए विशेष महत्व रखता है। इस समय प्रकृति अपने विभिन्न मनोरम रूपों से मनुष्यों में कामोन्माद की भावनायें उत्पन्न करती हैं। इन कामोद्दीपक दृश्यों और परिस्थितियों में एक कोयल का कूजन भी है। महाकवि ने इसका उल्लेख बार-बार किया है। इस विषय में राजा पुरूरवा की कोयल के प्रति यह उक्ति उल्लेखनीय है कि कामी लोग तुम्हें मदन की दूती बताते हैं और मानिनी स्त्रियों का रूठना दूर करने के लिए तुम अचूक हथियार समझी जाती हो—

त्वां कामिनो मदनदूतिमुदाहरन्ति ।
मानावभंगनिपुणं त्वममोघमस्त्रम् ॥

विक्रमो० ४।२५

स्त्रियां अपने पतियों से कितना ही मान करें और उन पर कितना ही क्रोध करें, किन्तु कोयल की कूक सुनते ही उनके दिल में प्रियतम के लिये ऐसी हूक उठती है कि उनका मान स्वयमेव खण्डित हो जाता है और वे पति का प्रेम पाने के लिए विह्वल हो जाती हैं। इसलिए कुमारसंभव में रति शिवजी के त्रिनेत्र की अग्नि से दग्ध अपने पति कामदेव के लिए विलाप करती हुई कहती हैं कि हे कामदेव ! तुम पुनः पहले जैसा सुन्दर शरीर धारण करके स्वभाव से ही बोलने में मधुर इस कोयल को यह आज्ञा दो कि यह अपनी मधुर कूक से प्रेमियों

को मिलने का स्थान बताना आरम्भ कर दे—

प्रतिपद्यमनोहरं वपुः
पुनरप्यादिश तावदुत्थितः।
रतिदूतिपदेषु कोकिलां,
मधुरालापनिसर्गपंडिताम् ।

कुमारसंभव ४।१६

रघुवंश में कालिदास ने वसन्त में बोलने वाली कोयल की कामोद्दीपकता का वर्णन करते हुए कहा है कि उन दिनों जो कोयल कूक रही थी, वह मानो कामदेव का यह आदेश सुना रही थी, कि स्त्रियो रूठना छोड़ दो, लड़ाई-झगड़ा छोड़ो। बीती हुई ज़वानी फिर वापिस नहीं आती। यह सुनकर स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ रमण करने लगीं—

त्यजत मानमलं बत विग्रहैः—
न पुनरेति गतं चतुरं वयः।
परभृताभिरितीव निवेदिते,
स्म रमते रमते स्म वधूजनः॥

रघु० ६।४७

रघुवंश के इसी सर्ग में अन्यत्र कवि ने कहा है कि कामदेव की सेनाओं ने कोयल की कूकों से विलासी पुरुषों को ऐसा बना दिया कि वे कामोपभोग करने लगे।

परभृताविरुतैश्च विलासिनः स्मरबलैरबलैकरसाः कृताः।

रघु० ६।४३

ऋतुसंहार (६।२६, २६, ३५) में भी कोयल का ऐसा कामोद्दीपक प्रभाव बताया गया है।

कोयल का निवासस्थान—आधुनिक पक्षिशास्त्र की दृष्टि से कालिदास ने कोयलों के निवासस्थान, कूजन और दूसरे पक्षियों द्वारा अण्डे-बच्चे सेने तथा पलवाने के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं। कोयल का निवासस्थान सघन वृक्षों के निकुञ्ज हैं। इनके पत्तों में छिपकर पेड़ की डाली पर कूकना इसे बहुत अच्छा लगता है। इसीलिए इसकी बोली तो सुनाई देती है, किन्तु यह पक्षी आँख से बहुत कम दिखाई देता है। अतः यह हमारी आँख की अपेक्षा कान के लिए अधिक सुपरिचित पक्षी है।[1] कालिदास ने इसका उल्लेख करते हुए कहा है कि नाना प्रकार के मनोहर फूलों से सुशोभित पेड़ों वाले पहाड़ी प्रदेश कोयल की कूक से गूंज रहे हैं—

नानामनोज्ञकुसुमद्रुमभूषितान्ता—
न्हृष्टान्यपुष्टनिनदाकुलसानुदेशान् ॥

ऋतुसंहार ६।२७

पुंस्कोकिल का मधुर कूजन—सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि हमें कोकिल की जो मधुर कूक सुनाई देती है, वह मादा पक्षी द्वारा की जाती है। इसलिए यह कहा जाता है कि कोयल गाती है; किन्तु आगे यह बताया जायेगा कि वर्तमान पक्षीतत्ववेत्ताओं

१. EHA Common Birds of India P. 48-9

के मत के अनुसार यह धारणा सर्वथा भ्रान्त है। कोयल का मधुर गान मादा पक्षी द्वारा नहीं, किन्तु नरपक्षी द्वारा होता है, इसे संस्कृत में पुंस्कोकिल कहते हैं। कालिदास को इस वैज्ञानिक तथ्य का ज्ञान था और उसने बार-बार पुंस्कोकिल के कूजन का उल्लेख किया है। इसके कुछ उदाहरण ये हैं—कुमारसंभव ३।३२,४।१४, ऋतुसंहार ६।१६,२३,२५।

कुमारसम्भव के तीसरे सर्ग में कामदेव द्वारा लाये गये वसन्तावतार के वर्णन के प्रसंग में कहा गया है कि आमों की मंजरियों के खाने से लाल (अथवा मस्ती भरे मीठे) कण्ठ वाला नर कोयल जो मधुर कूजन कर रहा था, वह मान करने वाली स्त्रियों के मानभंग करने में दक्ष कामदेव का वचन हो गया—

चूताङ्कुरस्वादकषायकण्ठः ।
पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज ॥
मनस्विनीमानविघातदक्षं ।
तदेवजातं वचनं स्मरस्य ॥

कुमारसम्भव ३।३२

आनन्द में मस्त, मधुर वचन बोलने वाले नर कोयलों ने और मस्ती से गूंजते हुए भौरों ने सती स्त्रियों के लाज और मर्यादा भरे हृदयों को थोड़ी देर के लिए व्याकुल कर दिया है—

पुंस्कोकिलैः कलवचोभिरुपात्तहर्षैः
कूजद्भिरुन्मदकलानि वचांसि भृंगैः
लज्जान्वितं सविनयं हृदयं क्षणेन
पर्याकुलं कुलगृहेऽपि कृतं वधूनाम् ॥

ऋतु० ६।२३

ऋतुसंहार के षष्ठ सर्ग में वसन्त में कामदेव के सहायक और वर्द्धक रसायनों में विभिन्न वस्तुओं की गणना करते हुए नरकोकिल के कूजन का भी उल्लेख है—लुभावनी सांझें, छिटकी हुई चांदनी, पुंस्कोकिल की कूक, सुगन्धित पवन, मस्त भौंरों की गुँजार और रात में आसव पीना, कुसुमायुध के रसायन हैं—

रम्यः प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभासः
पुंस्कोकिलस्य विरुतं पवनः सुगन्धिः ।
मत्तालियूथविरुतं निशि सीधुपानं
सर्वं रसायनमिदं कुसुमायुधस्य ॥

ऋतुसंहार ६।३५

कोकिल के खाद्य के सम्बन्ध में कालिदास का मत है कि वह आम और जामुन खाती है।[२] पहले यह उल्लेख किया जा चुका है कि आम की मंजरियों का रस नरकोयल के कण्ठ को सुमधुर बनाने वाला (चूतांकुरस्वादकषायकण्ठः कुमा० ३।३२) है। ऋतुसंहार में भी इसका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि नरकोयल आम की मंजरियों के रस में मस्त होकर अपनी प्रिया का बड़े प्रेम से चुम्बन कर रहा है—

---

२. देखिये, मृच्छकटिक चतुर्थ अंक, अनेकफलरसास्वादप्रहृष्टकण्ठा कुम्भदासीव कूजति परपुष्टा।

पुंस्कोकिलश्चूतरसासवेन
मत्तः प्रियां चुम्बति रागहृष्टः ।
ऋतुसंहार ६।१६

मालविकाग्निमित्र में मीठी बोली वाली कोयल को तथा भौंरे को बौर वाले आम के साथ रहने वाला बताया गया है—

मधुरस्वरा परभृता भ्रमरी च विबुद्धचूतसंगिन्यौ
मालविकाग्निमित्र ४।२

कोकिल का प्रिय स्थान होने से आम का एक नाम कोकिलावास है।

कोयल के जामुन का फल खाने का उल्लेख विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक में है। उर्वशी के विरह में विह्वल राजा पुरूरवा जब कोयल से अपनी प्रिया का पता पूछना चाहता है तो वह उसके दुःख की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देती क्योंकि वह कोयल पकी हुई बड़ी जामुनों का रस पीने में आँख मूंदकर वैसे ही लगी हुई कि जैसे कोई मदान्ध प्रेमी अपनी प्रिया के अधररसपान में लगा हुआ हो—

अधरमिव मदान्धा पातुमेषा प्रवृत्ता।
फलमभिमुखपाकं राजजम्बूद्रुमस्य।
विक्रमोर्वशीय ४।२७

कोयल का परभृत होना—कोयल के सम्बन्ध में यह तथ्य वैदिक काल से विदित है कि यह अपने अण्डों को दूसरे पक्षियों के घोंसलों में रखती है। इसीलिए वाजसनेयी (२४।३७) तथा मैत्रायणी संहिताओं (३१।१४।१८) में कोयल को अन्यवाप कहा है।[३] प्राचीनकाल से संस्कृत के कवियों को यह ज्ञात था कि कोयल अपने अण्डों तथा बच्चों का पालन स्वयं नहीं करती, किन्तु यह कार्य दूसरे पक्षियों से करवाती है। इसीलिये इसे संस्कृत में परभृत अर्थात् अपने माता-पिता से अतिरिक्त पराये या दूसरे पक्षी कौए आदि द्वारा पाला जाने वाला कहा जाता है।[४]

कोयल के अन्य संस्कृत पर्यायों में परपुष्ट, अन्यभृत तथा अन्यपुष्ट भी उसकी इसी विशेषता को सूचित करते हैं।[५] कालिदास ने अपने नाटकों में इसका संकेत किया है। कौआ

३. मैकडानल एण्ड कीथ—वैदिक इन्डेक्स खं० १ पृ० २४।

४. अमरकोश २।५।१९, भानुजी दीक्षित की टीका—परेण काकेन भृतः। क्षीरस्वामी—परभृतः काकीपुष्टत्वात्। संस्कृत में परभृत तथा परभृत् दो पृथक् शब्द हैं। कौए से पालित एवं पोषित होने के कारण कोयल परभृत है, किन्तु कोयल आदि अन्य पक्षियों का पालन करने के कारण (परान् पिकान्बिभर्ति इति परभृत्) कौआ परभृत् कहलाता है।

५. संस्कृत में कोयल के विभिन्न पर्याय उसकी विविध विशेषताओं के अभिव्यंजक हैं। परभृत, परपुष्ट, अन्यभृत तथा अन्यपुष्ट उसके कौए आदि पक्षियों द्वारा पाले जाने को सूचित करते हैं। जंगलों में पेड़ों का निवास स्थान पसन्द करने के कारण उसे वनप्रिय कहा जाता है। मधुर कूजन के कारण उसे गन्धर्व, मधुगायन, कलकण्ठ, काकलीरव और कुहूरव के नाम प्राप्त हुए हैं। वसन्त के साथ सम्बन्ध होने से उसे वसन्तदूत, मदनदूत और वासन्त कहा जाता है। इसकी आँख लाल होने के कारण इसका नाम ताम्राक्ष भी है।

पक्षियों में बड़ा धूर्त, चालाक और चतुर माना जाता है। संस्कृत में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः'। किन्तु कोयल इसके घोंसले में अपने अण्डे डालकर और इससे उन्हें पलवाकर इस चतुर पक्षी को भी अच्छा बेवकूफ बनाती है, अतः इसे पक्षियों में सबसे चतुर समझना चाहिए। इसे दृष्टि में रखते हुए पुरूरवा ने कहा है कि पक्षियों में कोयल की जाति बहुत होशियार होती है।

परभृता विहंगमेषु पण्डिता जातिरेषा।

विक्रमोर्वशीय ४।२२

अभिज्ञान शाकुन्तल (५।२२) में कालिदास ने कोयल के पाण्डित्य का कारण स्पष्ट किया है। कण्वाश्रम में कण्वमुनि की अनुपस्थिति में दुष्यन्त के साथ शकुन्तला का गन्धर्व-विवाह हो जाता है। राजा को शीघ्र ही राजकार्य से अपनी राजधानी हस्तिनापुर में वापिस लौटना पड़ता है और जाते समय वे शकुन्तला को पहचान के लिए अपने नाम की अंगूठी दे जाते हैं। इसी समय जब शकुन्तला दुष्यन्त के ध्यान में तल्लीन होती है तथा आश्रम में अतिथि के रूप में पधारे दुर्वासा ऋषि का यथोचित आतिथ्य नहीं करती तो ऋषि उसे शाप देते हैं कि तू इस समय जिसका ध्यान कर रही है, वह तुझे भूल जायगा। कण्व ऋषि को आश्रम में लौटने पर विवाह का समाचार ज्ञात होता है, वे शकुन्तला को अपने शिष्यों-शार्ङ्गरव और शारद्वत-तथा तापसी वृद्धा गौतमी के साथ दुष्यन्त के पास भेजते हैं। शाप के प्रभाव से दुष्यन्त शकुन्तला को बिल्कुल भूल चुके हैं। बारम्बार स्मरण कराने पर भी उन्हें विवाह की बात याद नहीं आती और वे शकुन्तला को स्वीकार नहीं करते। शकुन्तला अंगूठी दिखाकर राजा को विवाह का स्मरण कराना चाहती है। किन्तु उंगली टटोलने पर जब अंगूठी नहीं मिलती तो गौतमी कहती है कि वह शक्रावतार में शचीतीर्थ के जल को प्रणाम करते समय पानी में गिर गई होगी। इस पर राजा व्यंग्य करते हुए कहता है कि यह स्त्रियों की तुरत बुद्धि (प्रत्युत्पन्नमति) का सुन्दर उदाहरण है। जब शकुन्तला दीर्घापांग मृगछौने की घटना को सुनाकर राजा को विवाह का विश्वास दिलाना चाहती है तो राजा कहता है कि कामी लोग ही स्त्रियों की ऐसी झूठी और मीठी बातों में फँसा करते हैं। इस पर गौतमी कहती है कि तपोवन में पली हुई शकुन्तला ऐसी छलपूर्ण बातों से सर्वथा अनभिज्ञ है। इसके प्रत्युत्तर में क्रूर व्यंग्य करते हुए राजा कहता है हे बूढ़ी तपस्विनी! जो मानवी स्त्रियाँ नहीं हैं, वे भी बिना सिखाये बड़ी चतुर हो जाती है; फिर इन समझ वाली स्त्रियों का तो कहना ही क्या? कोयलें आकाश में उड़ना सीखने से पहले तक अपने बच्चों का पालन-पोषण दूसरे पक्षियों से करवाती हैं---

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृताः[६] खलु पोषयन्ति॥

अभिज्ञानशाकुन्तल ५।२२

---

६. इस श्लोक में कालिदास ने परभृत शब्द का प्रयोग बहुवचन में किया है तथा इसके अन्य पक्षियों द्वारा पाले जाने का उल्लेख किया है। पक्षिशास्त्र की दृष्टि से यह बड़ा महत्वपूर्ण संकेत है।

कालिदास का यह विचार है कि कोयल कामोन्माद के कारण ही मधुर कूजन करती है। ऋतुसंहार (६।३४) में मद से विह्वल कोयल की कूक (उत्कूजितैः परभृतस्य मदाकुलस्य) का उल्लेख है। विक्रमोर्वशीय (४।२३) में इसके मदमत्त होने के समय का भी निर्देश है कि ग्रीष्मऋतु की समाप्ति के साथ इसका मद बढ़ जाता है—

अये इयमातपान्त आतपन्तराधुक्षित मदा जम्बूविटपमध्यास्ते परभृता ।

विक्रमोर्वशीय ४।२३

अकाल वृष्टि तथा प्रवल पूर्वी हवा कोयल को वृक्ष की कोटर में शरण लेने के लिए बाधित करती है। मालविकाग्निमित्र में राजा को विदूषक से यह हृदयविदारक समाचार मिलता है कि उसकी प्रेयसी मालविका तथा सहेली बकुलावलिका को रानी धारिणी ने ईर्ष्यावश बेड़ी डलवाकर नागकन्याओं के समान ऐसे पाताललोक में रख दिया है, जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं पहुंच सकतीं। इस पर राजा बड़े कष्ट के साथ कहता है कि यह तो बहुत बुरा हुआ कि बौरे हुए आम के साथ रहने वाली मिष्टभाषिणी कोयल तथा भौंरी दोनों को प्रचण्ड पूर्वी वायु और असमय की वृष्टि ने पेड़ के खोखले कोटर में बन्द कर दिया—

मधुरस्वरा परभृता भ्रमरी च
विबुद्धचूतसंगिन्यौ ।
कोटरमकालवृष्ट्या
प्रबलपुरोवातया गमिते ॥

मालविकाग्निमित्र ४।२

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि कालिदास ने कोयल के विषय में निम्न विशेषताओं का निर्देश किया है—

(१) यह अपना कूजन वसन्तकाल में आरम्भ करती है, अतः यह इसकी दूत और आगमन की सूचक है।

(२) इसका कूजन बड़ा मनोहर, कामोद्दीपक और मानिनी स्त्रियों का मान भंग करने वाला है।

(३) कोयल का निवास-स्थान सघन वृक्ष हैं।

(४) इसका प्रिय भोजन आम्रमंजरियाँ तथा जम्बूफल हैं।

(५) यह अपने अण्डे-बच्चे दूसरे पक्षियों से पलवाती है।

परभृत से यहाँ केवल कोयल ही नहीं किन्तु कोयल परिवार (Family cuculidae) के उपपरिवार Cuculinae के वे सभी पक्षी सम्मिलित हैं जो अपने अण्डों-बच्चों का पालन-पोषण दूसरे पक्षियों द्वारा कराने के कारण परभृत कहलाते हैं। इनमें कोयल, चातक, (Pied Crested Cuckoo) पपीहा (Common Hawk Cuckoo) आदि कई प्रकार के पक्षी हैं, अतः परभृत का प्रयोग बहुवचन में हुआ है। ये पक्षी अपने अण्डे अनेक प्रकार के पक्षियों से पलवाते हैं। चातक और पपीहा अपने अण्डे सतभैया (Babbler) के घोंसले में रखते हैं, कोयल साधारण घरेलू कौओं (House Crow) तथा जंगली कौओं (Jungle Crow) के घोंसलों में अपने अण्डे रखता है। दूसरी कोयलें विभिन्न प्रकार के पक्षियों से यह कार्य कराती हैं, अतः 'अन्यैर्द्विजैः' का प्रयोग बहुवचन में हुआ है।

(६) मधुर कूजन मादा नहीं, किन्तु नरकोकिल (पुंस्कोकिल) करती है ।

(७) यह कूजन कामोन्माद के कारण होता है ।

(८) ग्रीष्म ऋतु के अन्त में यह उन्माद बढ़ जाता है । कोयल के पक्षिशास्त्रसम्मत निम्नलिखित वर्णन से यह स्पष्ट हो जायगा कि इन विशेषताओं का समर्थन आधुनिक विहग-विद्यावेत्ता भी करते हैं ।

कोयल का स्वरूप—कोयल १७ इंच का, कौए के आकार का और रंगरूप में इससे साहश्य रखने वाला पक्षी है । किन्तु यह उससे पतला होता है तथा इसकी पूंछ अधिक लम्बी होती है । नर और मादा का वर्ण विभिन्न प्रकार का होता है । नर कोयल (पुंस्कोकिल) बिल्कुल काला होता है और इस पर नीली-हरी चमक की झलक होती है । मादा गहरे अथवा हल्के भूरे रंग की तथा सफेद चित्तियों तथा धारियों वाली होती है । कोयल की आंख चमकीले लाल वर्ण की होती है, अतएव संस्कृत में इसे ताम्राक्ष या रक्ताक्ष कहते हैं । इसके बच्चों की आँखें शुरू में भूरी होती हैं, अवस्था बढ़ने के साथ ये पहले पीली तथा बाद में लाल हो जाती हैं । मादा कोयल की चोंच का रंग कुछ भूरा तथा नर कोयल का हल्का हरा होता है । यह वृक्षों के कुंजों तथा सघन पेड़ों पर अकेले अथवा जोड़ों के रूप में पायी जाती है । यह सारे भारत, लंका और बर्मा में मिलती है ।

भारत में कोयल की दो जातियां हैं । छोटी जाति Eudynamys scolopacea scolopacea (Linnaeus) भारत के अधिकाँश भागों तथा लंका में पायी जाती है । इसकी बड़ी जाति Malyana आसाम तथा बर्मा में ही मिलती है ।

कोयल का प्रिय निवास-स्थान कुंज, उद्यान और अमराइयाँ हैं । इसे बड़े पेड़ों की पत्तों से ढकी डालियों पर बैठना अधिक प्रिय है क्योंकि यहाँ यह इनके फलों का आस्वाद लेती है तथा पत्रों में छिपकर अपना मधुर कूजन करती है ।[७] ह्विसलर के अनुसार इसका सामान्य भोजन बरगद, पीपल आदि के फल हैं, किन्तु यह घोंघे (Snails) भी खाती है (पृ० ३२७) ।

कोयल की ध्वनि—कोयल की कू-कू, कुहू-कुहू, या कुओ-कुओ की ध्वनि अत्यन्त सुपरिचित है । एटकिन के शब्दों में ज्यों-ज्यों मौसम में गर्मी आती है, यह अपनी प्रसन्नता का गीत गाना आरम्भ करती है, गर्मी बढ़ने के साथ-साथ इसका उत्साह बढ़ जाता है और मई के महीने में यह चौबीस घण्टों में हर समय गाती रहती है ।[८] उषाकाल में इसका गाना सुना जा सकता है । इसका कूजन पहले धीमे स्वर की कूक से शुरू होता है, इसके बाद प्रत्येक कूक में आवाज ऊंची चढ़ती जाती है, सातवीं-आठवीं बार यह ध्वनि उच्चतम स्वर पर पहुँच जाती है और इसके साथ ही एकदम बन्द हो जाती है । कुछ देर बन्द रहने के बाद यह इसी आरोह से पुनः आरम्भ हो जाती है और यह क्रम घण्टों तक चलता रहता है ।

नर कोयल का गान—कालिदास ने पुंस्कोकिल के मधुर कूजन का उल्लेख किया है । वर्तमान पक्षिशास्त्री भी ऐसा ही मानते हैं । श्री धर्मकुमार सिंह जी ने लिखा है—"यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भारत के प्राचीन और नवीन कवियों ने सदा इस बात का संकेत दिया है कि

---

७. Whistler:— Ibid p. 327.

८. EAH:— Ibid p. 49.

मादा कोयल मधुर गीत गाती है। वस्तुतः तथ्य यह है कि ऐसा मीठा गाने की विशेषता नर कोकिल में ही होती है।" [९] सालिम अली के कथनानुसार मादा एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक उड़ते हुए ही केवल किक-किक-किक की एक तीखी तथा बार-बार दोहरायी जाने वाली ध्वनि करती है।[१०]

गाने का कारण—कोयल के गाने का क्या रहस्य है ? कालिदास ने इसका कारण मदाकुल होना (ऋतुसं० ६।३४) बताया है। आधुनिक विहगवेत्ता भी ऐसा ही मानते हैं। जर्डन ने लिखा है कि सन्तानोत्पादन के समय कोयल बहुत शोर मचाती है। इस समय इसकी आवाज सब समयों में—रात में भी सुनी जा सकती है। यह पक्षी प्रायः कुइल-कुइल (Kuil) का शब्द करता है।[११] व्हिसलर ने भी कोयल की सब ध्वनियों को गर्भाधान के समय किया जाने वाले शब्द (Breeding notes) माना है।[१२] यही कारण है सन्तानोत्पादन की ऋतु समाप्त होते ही कोयल मौन हो जाती है। इसका गाना गर्मियों तक ही सुना जाता है। वर्षा और शीत ऋतु में कोयल की कूक नहीं सुनाई देती। अतएव श्री तुलसीदास जी ने लिखा है—

तुलसी पावस के समय, धरी कोकिला मौन।
अब तो दादुर बोलि हैं, ह में पूछित है कौन॥

ग्रीष्म ऋतु के अवसान के बाद इसकी कूक न सुनाई देने से यह कल्पना की जाती है कि यह हमारे देश में नहीं रहती और बाहर चली जाती है। किन्तु यह सत्य नहीं है। यह हमारे देश में ही स्थानीय प्रव्रजन (Local Migration) करती है। इसे ठण्ड पसन्द नहीं है। हमारे देश के जिन भागों में ठण्ड नहीं पड़ती, वहाँ यह साल भर पायी जाती है, जैसे कलकत्ता, सौराष्ट्र तथा दक्षिण भारत। उत्तर भारत में जहां अधिक ठण्ड पड़ती है, सर्दी शुरू होने पर यह दक्षिण की ओर चली जाती है तथा शीत समाप्त होने पर वसन्त ऋतु के आगमन के साथ यह उत्तर की ओर वापिस लौट आती है, उत्तर प्रदेश के उद्यानों, कुंजों तथा अमराइयों में कूकने लगती है।

दाम्पत्य जीवन की विशेषताएँ—कोयल के दाम्पत्य जीवन की दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। पहली विशेषता इसकी कामचार वृत्ति (Promiscuity) या स्वच्छन्द कामसम्बन्ध स्थापित करना है। सारस, चक्रवाक आदि कुछ पक्षियों में नर-मादा एक बार काम सम्बन्ध स्थापित करने के बाद आजीवन एक दूसरे के जीवन संगी बने रहते हैं, किन्तु कोयल में ऐसा नहीं है। श्री धर्मकुमारसिंह जी के शब्दों में ऋतुकाल में मादा कोयल जो भी नर कोयल उपलब्ध हो सके, उसके साथ कामोपभोग करती है। सन्तानोत्पादन काल में यह कभी जोड़ों में नहीं पायी जाती, किन्तु प्रत्येक मादा नर कोयल के साथ यौन सम्पर्क स्थापित करने के लिए उत्सुक रहती है। प्रायः नर मादाओं का पीछा करते हैं और इसके बाद दोनों का सम्बन्ध होता है।[१३] कोकिल की

---

९. Dharmkumarsinghji:—Ibid p. 135
१०. Salim :—Ali Ibid p. 5।
११. Jerdon:— The Birds of India Vol. I (1862) p. 343.
१२. Whistler Ibid p. 321.
१३. Dharmakumar Singhji Ibid P. 136.

प्रणयकेलियों का विशेष वर्णन श्री मैकडानल्ड ने अपनी पुस्तक में बड़े विस्तार से किया है (पृ० १२८-२९)।

कोयल की दूसरी विशेषता अन्य पक्षियों से अपने बच्चे पलवाने की है। यह अपने अण्डे स्वयं नहीं सेती, किन्तु दूसरी चिड़ियों के घोंसलों में रख देती है। कौओं से अपने बच्चे पालन कराने की बेगार कराती है। अतः मिस फ्रांसिस पिट ने यह सत्य ही लिखा है कि परपुष्ट (Cuckoo) से बढ़कर गर्हणीय (scandalous) कोई दूसरा पक्षी नहीं है। मानवीय अथवा पशु जगत् के आचरण के किसी भी मानदण्ड से देखा जाय, तो इसके जीवन की आदतों को किसी भी प्रकार क्षम्य नहीं माना जा सकता। अधिकांश पक्षी दाम्पत्य जीवन का निर्वाह बड़ी प्रतिष्ठा के साथ करते हैं, प्रायः जीवन पर्यन्त एक दूसरे के साथी बने रहते हैं, किन्तु कोयल किसी प्रकार का वैवाहिक बन्धन नहीं मानती। सन्तान के विषय में तो यह स्थिति है कि यह अपने अण्डे दूसरे पक्षियों के घोंसलों में डाल देती है और उनसे अपने बच्चों का पालन कराती है।

दूसरे पक्षियों से अण्डे-बच्चे पलवाने की प्रक्रिया—यद्यपि कालिदास आदि प्राचीन कवियों ने कोयल द्वारा दूसरे पक्षियों से अपने अण्डे-बच्चे सेने और पलवाने का उल्लेख किया है तथापि अब तक इस विषय की पूरी प्रक्रिया विस्तृत रूप से ज्ञात नहीं हो सकी। स्टुअर्ट बेकर ने Cuckoo Problems नामक ग्रन्थ में इसकी विभिन्न समस्याओं का विशद रूप से प्रतिपादन किया है। इस विषय में कई प्रकार के मत हैं। सब विहगविद्याविशारद इस बात में सहमत हैं कि ज्यों ही कौओं के नीड़-निर्माण और सन्तानोत्पादन का समय आता है, उस समय कोयलें विशेष रूप से क्रियाशील हो जाती हैं।[१४] मई में कोयलों की कूक चरम सीमा पर पहुँच जाती है क्योंकि अधिकांश कौए इसी समय घोंसले बनाकर सन्तानोत्पादन आरम्भ करते हैं। कोयल इस बात की टोह में रहती है कि कौआ कहाँ घोंसला बनाता है, वह उस स्थान को खूब देखती-भालती रहती है। ब्रिटिश राजदूत मैकडानल्ड के कथन के अनुसार उनके बगीचे में एक कोयलदम्पती ने अपना मैथुन कार्य भी कौए के घोंसले के पास वाली शाखा में किया। कोयल अपना अण्डा कौए के घोंसले में किस प्रकार डालती है, इस विषय में निम्नलिखित मत अधिक प्रचलित है।

नर-मादा पहले यह निश्चय करते हैं कि किस कौए की आँखों में धूल झोंकनी है। निश्चय होते ही नर कोयल कौए के घोंसले वाले पेड़ पर जा बैठता है और कूजन आरम्भ कर देता है। कौए को उसे बेवकूफ बनाने वाली कोयल से स्वाभाविक रूप से बड़ी चिढ़ होती है। वह उसे देखते ही क्रोध से उस पर टूट पड़ता है और उसका पीछा करता है। यह क्रोध कौए को विवेकान्ध बना देता है। नर और मादा कौआ नर कोयल का पीछा करते हैं। कोयल इन दोनों की अपेक्षा तेज दौड़ने वाला है, वह इन्हें अपने पीछे दौड़ाता हुआ घोंसले से बहुत दूर ले जाता है तथा एक विचित्र बोली--कर्री-कर्री बोलकर अपनी मादा को सूचित करता है कि मैदान साफ है, अपना काम कर डालो। बस मादा कोयल फौरन कौए के घोंसले में पहुँचकर वहाँ अपना अण्डा रख देती है और कौए का एक अण्डा या तो चोंच में दबाकर उठा लाती है अथवा उसे नीचे गिरा देती है।

---

१४. Bates and Lowther:— Breeding Birds of Kashmir P. 213.

उधर कौओं को कुछ नहीं पता चलता कि उनके घोंसले में क्या हो रहा है, वे तो कोयल का पीछा कर रहे हैं। नर कोयल जान-बूझकर अपनी चाल ऐसी रखता है कि वह उनसे कुछ आगे रहे और कौए ये समझें कि वे बस उसे पकड़ने ही वाले हैं। कुछ समय बीत जाने पर जब नर कोयल यह समझ लेता है कि मादा कोयल ने अपना काम पूरा कर लिया होगा तो वह अपनी चाल अधिक तेज कर देता है। कौए नर कोयल का पीछा करते हुए जब उसे पकड़ने में असमर्थ होते हैं तो हताश होकर वे अपने घोंसले में वापिस लौट आते हैं। किन्तु घर लौटने पर उन्हें तनिक भी सन्देह नहीं होता कि उनके घोंसले में कुछ गोलमाल हुआ है।

ऐसा संदेह न होने के कई कारण हैं।[१५] कई बार कोयल द्वारा नया अण्डा रखते समय एक पुराना अण्डा निकाल लिया जाने से अण्डों की संख्या में कोई अन्तर नहीं आता, अतः कौए को कोई शक नहीं होता। यदि अण्डों की संख्या बढ़ जाय तो भी उसे सन्देह नहीं होता। क्योंकि एटकिन के मतानुसार कौआ तीन से अधिक नहीं गिन सकता, इससे अधिक की सब संख्यायें उसके लिए बराबर हैं। कौए तथा कोयल के अण्डों का रंगरूप बहुत कुछ मिलता है, अतः कौए को सन्देह नहीं होता और वह कोयल के अण्डों को सेना तथा पालन करना आरम्भ कर देता है। इस प्रकार कोयलदम्पती मिलकर एक दूसरे का सहयोग करते हुए कौए को बेवक़ूफ बनाते हैं। कई बार ऐसा करते हुए मादा कोयल पकड़ी भी जाती है। कौए उस पर हमला करते हैं, उसके कुछ पंख नोचते हैं, किन्तु कोयल की उड़ान तेज होने के कारण वह इनके चंगुल से बच निकलती है।

श्री धर्मकुमारसिंह जी ने लिखा है कि उन्होंने कई बार नर के सहयोग के बिना अकेले ही मादा कोयल को यह कर्म करते देखा है।[१६] अनेक बार दो मादा कोयलें एक दूसरे को सहयोग देकर यह कार्य करती हैं। कौए नर कोयल की अपेक्षा मादा कोयल को अधिक सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और उसे घोंसले के पास नहीं आने देते। कोयल यह कार्य तभी तक कर सकती है, जब तक मादा कौए ने पूरे अण्डे न दिए हों, क्योंकि पूरे अण्डे देने के बाद मादा कौआ उन्हें सेने के लिए दिन-रात वहीं बैठी रहती है और एक क्षण के लिए भी इधर-उधर नहीं होती। इस अवस्था में कोयल द्वारा वहां अण्डा रखने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है।

कौए के घोंसले में अण्डा देने के लिए कोयल या तो उसमें सामान्य रूप से बैठती है और यदि घोंसले का मुँह बहुत तंग होने के कारण ऐसा सम्भव न हो तो यह उसके पास ही किसी डाली का सहारा लेकर बैठती है तथा अपना अण्डा घोंसले में डालने का प्रयत्न करती है, इसमें कई बार उसे विफलता होती है और अण्डे नीचे गिर जाते हैं।[१७] कौए के एक घोंसले में कोयल के १३ तक अण्डे पाए गये हैं।[१८]

कोयल तथा कौए के अण्डों में कुछ सूक्ष्म अन्तर होते हैं। कोयल के अण्डे कौए के अण्डों

---

१५. EHA:— Common Birds of India P. 50
१६. Dharmakumarsinghji:— Ibid. P. 136
१७. Bates and Lowther :—Ibid P. 216
१८. Salim Ali:— Ibid P. 51

से छोटे होते हैं। रंग में ये अधिक हरे रंग के होते हैं, इन पर हल्की लाल-भूरी धारियाँ होती हैं, कौए के अण्डों की अपेक्षा ये अधिक गोल होते हैं।

किन्तु इन दोनों के अण्डों में कोयल को लाभ पहुंचाने वाला महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि कोयल के अण्डों के परिपक्व होने का काल कम अर्थात् १२-१३ दिन का ही होता है। कौए के अण्डों की अपेक्षा कोयल के अण्डों से बच्चे जल्दी निकल आते हैं। प्रकृति की एक अनोखी देन इस समय इनकी बड़ी सहायता करती है। नवजात कोयल-शिशुओं की पीठ में एक छोटा सा गढ़ा होता है। ये इसकी सहायता से कौए के अण्डों या बच्चों को पीठ से ठेलते और धकेलते हुए घोंसले से बाहर फेंक देते हैं।[१९] कोयल के बच्चे स्वभाव से अधिक दुष्ट होते हैं, ये जन्म लेने के दो-चार दिन में ही न केवल ऐसी करतूत से कौए के बच्चों का सफाया करते हैं, अपितु कौए के एक-दो बच्चे बच जाएँ तो उन्हें भूखा मारने की कोशिश करते हैं। कौओं के नवजात शिशुओं से अधिक बड़ा होने के कारण ये अपने नकली माता-पिता से लाए गये आहार को तेजी से अपनी चोंच में ले लेते हैं। इस प्रकार कौए के बच्चों को अपने ही घर में भूखा मरना पड़ता है।

कौए के बच्चों से जल्दी जन्म लेने और बड़ा होने के कारण अपने नकली माता-पिता द्वारा लाया गया सारा आहार ये झटपट उनकी चोंच से ले लेते हैं, असली बच्चों को भूखा मारकर स्वयं मोटे-ताजे होने लगते हैं।

दुष्टता के साथ कोयल के बच्चे में धूर्तता भी पाई जाती है। जब पहले पहल यह घोंसले से बाहर निकलता है, तब अपनी बोली न बोलकर कौओं की बोली बोलने की चेष्टा करता है। कौओं का संततिस्नेह उन्हें ऐसा मोहान्ध कर देता है कि वे कोयल शिशु के बड़ा होने पर भी उसे ठीक तरह नहीं पहचान पाते, साथ लिए फिरते हैं और खिलाते-पिलाते हैं। अन्त में एक दिन बड़ा तथा समर्थ होने पर यह शिशु अपने नकली माता-पिता से अलग होकर अपनी जाति के कोयलों में चला जाता है।

कौए को कोयल की कारस्तानी का कभी पता नहीं चलता। फिर भी उसकी अन्तरात्मा मानो यह कहती रहती है कि इस चिड़िया से सावधान रहना। यही कारण है कि कौआ कोयल का, विशेषत: मादा कोयल का जन्मजात शत्रु है। इसे अपने घर के पास देखते ही आग बबूला हो जाता है और उसे वहाँ से हटाने की पूरी कोशिश करता है। वह दृश्य बड़ा ही विडम्बनापूर्ण होता है, जब कौआ कोयल के बच्चों को अपना बच्चा समझता तथा पालता हुआ घोंसले के पास आने वाली कोयलों पर हमला करके उन्हें दूर भगाता है। वह यह नहीं जानता कि जिन कोयलों को अपना शत्रु समझ कर वह दूर भगा रहा है उन्हीं के बच्चों को वह पाल रहा है।

कौआ बड़ा धूर्त पक्षी है। किन्तु कोयल धूर्तता और चालाकी में उसके भी कान काटती है। कोयल चाहे कितनी धूर्त और दुष्ट क्यों न हो, उसका यह कार्य न केवल उसके लिए किन्तु हमारे लिए भी बड़ा लाभदायक है। उसे इस प्रकार बच्चों के पालन-पोषण की भारी जिम्मेदारी से मुक्ति मिल जाती है। जिस समय दूसरे पक्षी घोंसला बनाने की उधेड़-

---

१९. Bates and Lowther op. cit. P. 216.

बुन में लगे रहते हैं या जिस समय अण्डे सेने में उनके प्रेम और धर्य की परीक्षा होती है, उस समय कोयल बस गाने में मस्त रहती है। उसे गाने से फुर्सत कहाँ कि घास इकट्ठा करके घोंसला बनाए और उसमें अण्डे देकर उन पर चुपचाप बैठी रहे। "पर साथ ही कोयल चालाक परले सिरे की होती है। अपना काम नहीं बिगड़ने देती, हमारे कितने कवि और गवैये भूखे मर जाते हैं पर कोयल अपना बाल बाँका नहीं होने देती, अपना नहीं तो दूसरे का घर मौजूद है। अपने पास इतना समय नहीं कि वह अण्डों के पास बैठे और बच्चों का लालन-पालन करे। पर जब बेगार काफी मात्रा में मिल जाती है तो कोयल घर के जंजाल में क्यों पड़े।"

कोयल के इस जंजाल में न फँसने तथा कौए के अण्डों को नष्ट कर उनसे अपने बच्चे पलवाने का पक्षी जगत् को तथा हमें बड़ा लाभ होता है। कौआ बहुत दुष्ट पक्षी है, वह दूसरे पक्षियों के अण्डे लूटता-खसोटता है, उन्हें कष्ट पहुँचाता है और हमारे घर की चीजों की सफाई करने में बहुत पटु है। यदि कौए जैसे दुष्ट पक्षियों की संख्या बहुत बढ़ती चली जाय तो संसार में त्राहि-त्राहि मच जाए। कोयलें कौओं के घोंसलों में अपने अण्डे-बच्चे रखकर उनकी वंश-वृद्धि पर प्रभावशाली नियन्त्रण रखती है और हमें कौओं के उत्पात से बचाती हैं।

ब्रिटिश राजदूत मैकडानल्ड ने नई दिल्ली के अपने बगीचे में कौए के एक घोंसले में कोयल के बच्चों के पाले जाने का बड़ा विशद वर्णन किया है।[२०] इस घोंसले को एक काकदम्पती ने ६ जून को आम के पेड़ पर २० फुट की ऊँचाई पर बनाना शुरू किया। तीन सप्ताह तक वे इसे बनाने में लगे रहे। २७ जून के बाद ही इसमें अण्डे देने का समय आया। इसी समय कोयलें इसके आसपास चक्कर काटने लगीं, १४ जुलाई को कौआ एक मादा कोयल का बुरी तरह पीछा करता हुआ देखा गया। १५ जुलाई को तथा उसके दो दिन बाद नीचे घास में कौए के अण्डे के टूटे हुए छिल्के पाये गये। सम्भवत: कोयल ने अपने अण्डे रखते हुए कौए के अण्डे नीचे गिरा दिये थे। १० दिन बाद अण्डों से बच्चे निकले और ८ अगस्त को इनके सूक्ष्म निरीक्षण से यह पता लगा कि एक बच्चा मादा कोयल तथा दूसरा नर कोयल है। कौओं के अपने बच्चे बिलकुल नष्ट हो चुके थे। कौए इन नकली बच्चों को बड़े प्रेमसे पालते रहे। जब कभी कोयल घोंसले के पास आती तो वे उस पर पूरे वेग से आक्रमण करते थे और उसे भगा देते, पर घोंसले में लौटकर उसी के छोटे बच्चों का दुलार करते थे, उन्हें चुग्गा खिलाते थे। धीरे-धीरे बच्चे बड़े होने लगे, उड़ना और स्वयं आहार ढूंढ़ना सीखने लगे, इस सारे समय में कौए उन्हें इसमें सहायता देते रहे और शत्रुओं से उनकी रक्षा करते रहे। सितम्बर के पहले सप्ताह में, अपने घोंसले से पहली बार निकलने के एक महीना बाद कोयल के बच्चे समर्थ होने पर अपने नकली माता-पिता को छोड़कर अपनी बिरादरी में चले गये।

कोयल को यह चतुराई कौन सिखाता है कि वह अपने अण्डे कौए के घोंसले में रखे। मनुष्य बहुत-सी बातें अपने माता-पिता से तथा शिक्षा से जानता है। कोयल जैसे पक्षी को अपने माता-पिता के साथ रहने का सौभाग्य नहीं मिलता, उसके लिए कोई पाठशाला भी नहीं है। फिर उसे ये सब बातें कौन सिखाता है ? इस प्रश्न का उत्तर एक शब्द में है—सहज बुद्धि (Instinct)। आत्मरक्षा और वंशवृद्धि के लिए पशु-पक्षी स्वभाव से ही यह जान जाते हैं

---

२०. Macdonald, Malcom :—Birds in My Indian Garden P. 30-35.

कि उन्हें क्या करना चाहिए। कोयल भी इसी प्रकार अपने अण्डों को कौए के घर में रखना सीख जाती है। कालिदास ने इसी को बिना सीखी चतुराई या अशिक्षितपटुत्व कहा है। यह ऐसी होशियारी और दक्षता है, जो कोयल को स्वभाव से प्राप्त होती है, यह उसे किसी व्यक्ति द्वारा नहीं सिखाई जाती। अतः वर्तमान पक्षिशास्त्र की दृष्टि से कालिदास की यह उक्ति सर्वथा सत्य है—

प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात—
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥

अभिज्ञानशाकुन्तल ५।२२

६ | चातक

बादल के साथ चातक का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह मेघजीवी है। इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह बादलों से पानी मांगता है,[१] वर्षा के जल से ही जीवन धारण करता है तथा प्यासा होने पर भी यह भूमि के किसी अन्य जल को नहीं ग्रहण करता। अतः वर्षाऋतु इसके लिए विशेष महत्व रखती है। कालिदास के पावस काल के वर्णनों में चातक का उल्लेख अनेक स्थानों पर है।

चातक

ऋतुसंहार में वर्षा-वर्णन के आरम्भ में ही कहा गया है—"प्यास से विह्वल चातक पक्षियों के समूह जिन बादलों से पानी माँग रहे हैं, ऐसे पानी के भार से नीचे झुके हुए, मूसलाधार पानी बरसाने वाले तथा कानों को भली लगने वाली गड़गड़ाहट करते हुए बादल धीरे-धीरे घिरते चले जा रहे हैं—
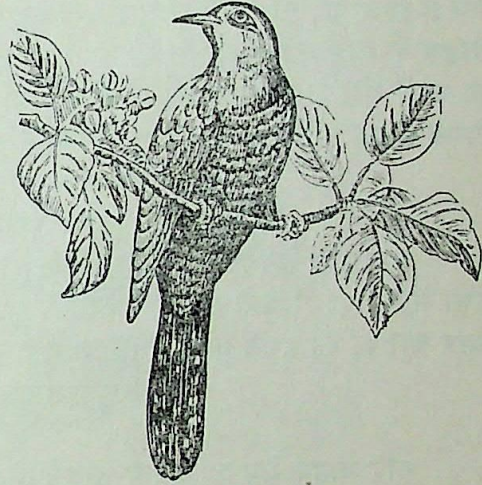
तृषाकुलैश्चातकपक्षिणां कुलैः
प्रयाचितास्तोयभरावलम्बिनः ।
प्रयान्ति मन्दं बहुधारवर्षिणो
बलाहकाः श्रोत्रमनोहरस्वनाः ॥

ऋतुसंहार २।३

मेघदूत वर्षा ऋतु का काव्य है, उसमें प्रावृट् के अग्रदूत चातक का उल्लेख सर्वथा

---

१. संस्कृत कोशकारों के मतानुसार चातक की व्युत्पत्ति है मेघ से पानी मांगने वाला (चतते याचते जलमम्बुदमिति—शब्दकल्पद्रुम)। इसके अन्य पर्याय भी इसी प्रकार के हैं। वर्षा की नन्ही बूदों पर निर्भर रहने के कारण इसे स्तोकक कहते हैं (अमरकोश २।५।१७ पर क्षीरस्वामी, स्तोकं कायति वाशते याचते वा।) इसका एक अन्य नाम शारंग या सारंग भी है (अमरकोश २।५।१७ अथ शारंगः स्तोककश्चातकः समाः)। धूप अथवा गर्मी से क्षीण होने के कारण इसे (शारयति शार्यंते वातपादिना) यह नाम दिया गया है। इसी का दूसरा रूप सारँग है। बादलों पर अवलम्बित रहने के कारण इसे मेघजीवन कहा जाता है, वर्षा में इसके प्रसन्न रहने से पावस का एक नाम चातकानन्दन भी है।

स्वाभाविक है। यक्ष मेघ को उसकी यात्रा के शुभ लक्षणों का वर्णन करता हुआ कहता है कि तुम्हारे बांयी ओर गर्वीला चातक मधुर शब्द कर रहा है—

वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगर्व: ।

मेघदूत ६

इसके दो पाठान्तर भी मेघ के साथ चातक के घनिष्ठ सम्बन्ध को बतलाते हैं। पहला पाठान्तर वल्लभदेव की पंजिका तथा कल्याणमल्ल की मालती टीकाओं का है। इनमें **'चातकस्तोयगृध्नु:'** का पाठ है, उसका अर्थ है वर्षा के जल का लोभी चातक। दूसरा पाठान्तर तिब्बती अनुवाद तथा चरित्रवर्द्धन की टीका के अनुसार **'चातकस्ते सगन्ध:'** है। सगन्ध का अर्थ है सम्बन्धी, चातक के मेघ से जल ग्रहण करने के कारण दोनों सम्बन्धी माने गये हैं। संस्कृत के प्राचीन शकुनशास्त्रियों के विचारानुसार मोर, चातक और नरपक्षियों तथा मृगों का बायीं ओर से होकर जाना या बोलना यात्रियों के लिये शुभ शकुन है। विल्सन ने इस विषय में यह प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है—

बर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुंसंज्ञिता: खगा: ।
मृगा वा वामगा दृष्टा: सैन्यसम्पद्बलप्रदा: ।।

चातक के मेघजल पर जीवन निर्वाह करने के कारण वे इसकी बूंदों को लेने की कला में प्रवीण हो जाते हैं। वर्षा काल में आकाश मार्ग से जा रहे सिद्ध अम्भोबिन्दुग्रहण-चतुर चातकों का दर्शन करते हैं।

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणा: ।

मेघदूत प्र० २१

यदि चातक मेघ का अनन्य भक्त है तो मेघ भी उस पर कम कृपालु नहीं है, वह उसकी याचना पर उसे पानी देना अपना कर्त्तव्य समझता है। मेघदूत के अन्त में विरही यक्ष ने अपना सन्देश समाप्त करते समय उसे अपना कार्य करने की प्रेरणा देने के लिये उसकी प्रशंसा करते हुए कहा है—तेरा यह स्वभाव है कि तू बिना गरजे भी उन चातकों को जल देता है जो तुझसे इसे माँगते हैं। सज्जनों का याचकों के लिये इतना ही प्रतिवचन होता है कि वे उनका काम पूरा कर देते है—

नि:शब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्य:
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ।।

मेघदूत ११०

चातक वर्षाकाल के अग्रदूत हैं। उनके आने पर यह कल्पना कर लेनी चाहिये कि वृष्टि होने वाली है, मानसून आने में देर नहीं है। अतएव यक्ष ने मेघ को कहा है कि चातक पानी की बूंदों को बरसाने वाले तेरे मार्ग की सूचना देंगे—

सारंगास्ते[१] जललवमुच: सूचयिष्यन्ति मार्गम् ।

मेघदूत २१

---

१. संस्कृत में सारंग के निम्न अर्थ होते हैं— चातक, हरिण, हाथी तथा शबल। (अमर कोश ३/३/२३ चातके हरिणे पुंसि,सारंग: शबले त्रिषु)। मेदिनीकोश—सारंग: पुंसि हरिणे चातके च मतंगजे।

चातक

वामश्चायं नुदति मधुरं चातकस्ते सगर्वः ॥

मेघदूत-९
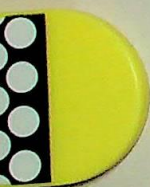
चातक का जीवन मेघजल पर निर्भर है, अतः चातक ऐसे बादलों का स्वागत करता है जो पानी से भरे हुए हों—

अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते ।

रघु० १७।६०

बरसात के काले बादलों में पानी होता है, उनसे याचना करने में लाभ है क्योंकि उनसे जलप्राप्ति की सम्भावना है। वर्षाकाल बीत जाने पर शरत्काल के शुभ्र मेघ निर्जल हो जाते हैं, इनसे जलयाचना करना व्यर्थ है। अतः चातक शरत् ऋतु में जल की प्रार्थना की रट लगाना बन्द कर देता है। वरतन्तु का शिष्य कौत्स जब अपनी गुरुदक्षिणा की चौदह करोड़ स्वर्णमुद्राओं के याचन की अभिलाषा से रघु के पास आता है और यह देखता है कि वे विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दान कर चुके हैं तो वह उन्हें कहता है कि आपके पास तो कुछ है नहीं, अब मैं गुरु के धन को कहीं और से लाने का यत्न करूंगा, क्योंकि चातक भी बिना जल वाले शरद् ऋतु के बादल से पानी नहीं मांगता—

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये ।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि ॥ **रघुवंश ५।१७**

चातक व्रत—चातक का बादल की बूंदों पर ही जीवन निर्वाह करने का संकल्प इतना प्रसिद्ध है कि कालिदास ने इसे चातकव्रत का नाम दिया है।[३] विक्रमोर्वशीय नाटक के दूसरे अंक में राजा जब अपने प्रियवयस्य विदूषक से देवांगना उर्वशी के प्रति अगाध अनुराग को अभिव्यक्त करता है तो विदूषक उसे कहता है—

अतः खलु भवता दिव्यरसाभिलाषि चातकव्रतं गृहीतम् ।

दिव्यरस अर्थात् देवलोक की अप्सरा उर्वशी की अभिलाषा रखने वाले आपने चातकव्रत ले लिया है, जिस प्रकार चातक आकाश से पानी बरसाने वाले मेघजल के दिव्यरस के अतिरिक्त पृथ्वी के वापी, कूप, तड़ाग, सागर आदि के किसी पार्थिव जल को नहीं ग्रहण करता

सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने यहाँ इसका अर्थ हरिण और हाथी लिया है। सुमतिविजय ने इनके अतिरिक्त इसका अर्थ भ्रमर भी माना है। वल्लभ इससे मोर का अर्थ लेता है। किन्तु सारोद्धारिणी टीका के मतानुसार हरिण, हाथी और भ्रमर के अतिरिक्त इसका अर्थ चातक भी है। कालिदास ने रघुवंश (१७।१५) में इसी अर्थ में सारंग का प्रयोग करते हुए कहा है—

प्रवृद्ध इव पर्जन्यः सारंगैरभिनन्दितः ।

चातकों द्वारा पानी से भरे बड़े बादल का अभिनन्दन या स्वागत किया जाता है।

कुछ पाँडुलिपियों में जललवमुचः के स्थान पर नवजलमुचः का पाठ है, इसका अर्थ है नया जल छोड़ने वाले वर्षा ऋतु के पहले बादल। आगे यह बताया जायेगा कि चातक मानसून के आगे-आगे चलता है, इस दृष्टि से यह पाठ अधिक सुन्दर तथा वैज्ञानिक है।

३. संस्कृत साहित्य में चातकव्रत के कारण और स्वरूप पर बहुत कुछ कहा गया है। मल्लिनाथ ने (रघुवंश ५।१७) इसके कारण पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि पृथ्वी पर पड़े हुए जल को लेने से चातक बीमार हो जाता है (धरणीपतितं तोयं चातकानां रुजाकरम्), अतः वह अपने चञ्चुपुट में बादल की दो-तीन नन्हीं बूँदें ही लेता है, मि० भर्तृहरि—सूक्ष्मा एव पतन्ति चातकमुखे द्वित्राः पयोबिन्दवः। संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध गद्य लेखक महाकवि बाणभट्ट ने

इसी प्रकार आप भी सुरसुन्दरी उर्वशी के अतिरिक्त भूतलवासिनी किसी अन्य रूपसी को नहीं ग्रहण करना चाहते।

चातक की आशा सजल मेघ से ही पूरी होती है; बहुत गरजने वाले निर्जल बादल से उसे निराश होना पड़ता है, इससे आशा रखना मूर्खता है। मालविकाग्निमित्र के द्वितीय अंक में विदूषक अपने सम्बन्ध में यह कहता है कि बेवक़ूफ चातक की तरह मैंने आसमान में सूखे किन्तु गरजने वाले बादल से जलपान की इच्छा की थी---मया नाम मुग्धचातकेनेव शुष्कघनगर्जितेऽन्तरिक्षे जलपानमिष्टम्।

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में भी चातक का मेघों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बताया है। सातवें अंक में असुरों को हराने के बाद देवराज इन्द्र से सम्मानित होकर उसके रथ में स्वर्ग से भूतल पर लौटते हुए राजा बादलों के रास्ते (मेघपदवी) पर आ गये हैं। मातलि पूछता है कि यह आपने कैसे जाना? राजा इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहता है कि रथ के पहियों के अरों के छेदों में से निकल कर उड़ते हुए चातक, बिजली की चमक से आलोकित घोड़े तथा पानी वाले बादलों के ऊपर चलने के कारण जलबिन्दुओं से भीगे हुए धुरे वाला यह रथ सूचना दे रहा है कि हम बादलों के बीच में हैं—

अयमरविवरेभ्यः चातकैर्निष्पतद्भिः
हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणाम्
पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः॥

अभिज्ञानशाकुन्तल ७।७

इस श्लोक पर एक बड़ी आपत्ति यह की जाती है कि कालिदास का यह वर्णन सर्वथा अस्वाभाविक और काल्पनिक है। कोई रथ ऐसा नहीं हो सकता जिसके अरों के छेदों में से चातक पक्षी निकल सकें। सामान्य रथों में तो यह सम्भव नहीं, किन्तु यदि इसे देवराज इन्द्र का अत्यन्त विशाल पहियों वाला रथ मान लें तो भी ऐसा सम्भव नहीं, क्योंकि पक्षी आकाश में उड़ने वाले हवाई जहाजों से इतना डरते हैं कि वे उनके निकट नहीं जाते। अतः उनके तेज चलने वाले पहियों के नीचे से उनका निकलना सर्वथा असम्भव है। ए. एम. निकल्सन ने लिखा है कि हवाई जहाजों के शोर और विशाल आकार के कारण पक्षियों के उनके पास स्वाभाविक रूप से उड़ते हुए आने की सम्भावना नहीं है।[४]

ग्लैडस्टन के मतानुसार पक्षी हवाई जहाज को एक बड़ा बाज़ (Falcon) समझते हैं और

कादम्बरी में इसका संकेत करते हुए कहा है कि चातक इव कृत्वा जलमयमाहारम्। चातकव्रत के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि पक्षियों में केवल वही मनस्वी है, जो प्यासा मर जाता है परन्तु वर्षाजल के अतिरिक्त कुछ नहीं पीता—

एक एव खगो मानी वने वसति चातकः।
पिपासितो वा म्रियते याचते वा पुरन्दरम्॥

(भर्तृहरि नीतिशतक)

४. **A. M. Nicholsan : The Art of Bird Watching (1931)**

पक्षियों के इनसे भयभीत होने के अनेक उदाहरण हैं।[५] अतः इस बात की बहुत कम सम्भावना है कि दुष्यन्त के रथ के पहियों में से चातक पक्षी गुजर रहे हों। यह सर्वथा कपोलकल्पित और अस्वाभाविक वर्णन प्रतीत होता है। क्या कालिदास ने वस्तुतः ऐसा वर्णन किया है ?

इस प्रश्न का समुचित उत्तर हमें जर्मन विद्वान् पिशल द्वारा सम्पादित अभिज्ञान-शाकुन्तल से मिलता है। उसमें अर के स्थान पर अग का पाठ है और पहली पंक्ति इस प्रकार है—

अयमगविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भिः

इस पाठ के अनुसार चातक रथ के पहियों के छेदों से नहीं किन्तु पर्वतों (अग) के छेदों से अर्थात् गुफाओं से निकल रहे थे। यह अर्थ सर्वथा स्वाभाविक है और आगे यह बताया जायेगा कि चातक हिमालय में कई हज़ार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। स्टुअर्ट बेकर ने लिखा है कि एवरेस्ट का अभियान करने वाले दल को इसका एक नमूना तिब्बत में १४००० फीट की ऊँचाई पर मिला था, वौल्ट ने रोटुंग (लाहुल) में इसे १२००० फीट पर पाया था।[६] अतः यदि अग-विवरेभ्यः का पाठ माना जाय तो कालिदास का वर्णन सर्वथा वैज्ञानिक है।

कालिदास के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि उसके चातक में निम्न विशेषताएँ हैं—

(१) चातक वर्षाकाल का पक्षी है।

(२) वह वर्षा का अग्रदूत और उसकी सूचना देने वाला तथा उसका मार्ग प्रदर्शन करने वाला है।

(३) मेघ चातक को जल देना अपना कर्त्तव्य समझता है।

(४) चातक वर्षा का अभिनन्दन करते हैं।

(५) चातक का यह व्रत है कि वह वर्षाजल की बूंदों के अतिरिक्त कोई अन्य जल ग्रहण नहीं करता।

(६) चातक वर्षा ऋतु में ही जलभरे मेघों से याचना करता है, शरद ऋतु के शुष्क बादलों से वह पानी नहीं माँगता (रघुवंश ४।१७)।

चातक का स्वरूप—कालिदास ने उपर्युक्त सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त चातक के आकार-प्रकार और रूपरंग का कोई ऐसा वर्णन नहीं किया जिससे इस पक्षी के यथार्थ स्वरूप का बोध हो सके। कालिदासग्रन्थावलि में उपर्युक्त सभी स्थलों में चातक का अनुवाद पपीहा किया गया है। आर० एस० पण्डित ने अपने ऋतुसंहार के अनुवाद में (पृ० ७७) में चातक को पपीहा माना है। विल्सन ने मेघदूत के अनुवाद (पृ० १२) में तथा मोनियर विलियम्ज़ ने अपने सुप्रसिद्ध कोश में चातक को Cuculus Melanoleucus माना है। श्री कोलब्रुक ने अमरकोश की टीका में लिखा है कि चातक पक्षी अभी तक अच्छी तरह ज्ञात नहीं है। यह संभवतः पपीहा है, जो एक प्रकार की कोयल होती है। सामान्य रूप से पपीहे के नाम से दो पक्षी प्रसिद्ध हैं—

(१) सादा पपीहा (Common Hawk-Cuckoo या Cuculus varius Vahl)

---

५. Birds and War (1941)

६. Fauna of British India, Birds, second Vol 1927, P. 169.

(२) चोटीदार पपीहा (The Pied Crested Cuckoo)।[७]

सादा पपीहा—इसका सामान्य अंग्रेजी नाम Common Hawk Cuckoo तथा Brainfever Bird है। Cuckoo के वंश का होते हुए भी यह रंगरूप में शिकरे (Hawk) जैसा प्रतीत होता है अतः इसे Hawk Cuckoo का नाम दिया गया है। उड़ते हुए यह सूरत-शक्ल में बिल्कुल शिकरा लगता है। इसके दूसरे नाम की कई व्याख्यायें हैं। जैसे हिन्दी में पी-पी की रट लगाने से इसे पपीहा कहा जाता है वैसे ही भारत में आने वाले अंग्रेजों को इसकी ध्वनि Brainfever शब्द जैसी प्रतीत हुई। इस नाम का दूसरा कारण यह भी कहा जाता है कि शीत देश वासी अंग्रेज जब ग्रीष्म ऋतु की रातों में यहां की गर्मी से बेचैन और पसीने से परेशान होते थे और उन्हें निद्रा बड़ी कठिनता से आती थी, उस समय यह पक्षी घण्टों तक अपनी पी-पी की रट से उनकी नींद हराम कर देता था और उनके दिमाग में अजीब तूफान और क्रोध उत्पन्न करता था। इसलिये उन्होंने इसे Brainfever अर्थात् मस्तिष्क में ज्वर पैदा करने वाला या मगजखाऊ पक्षी का नाम दिया। फ्लेचर और इंगलिस ने इस विषय में यह सत्य ही लिखा है कि—"प्राय: पपीहे की रट सायंकाल अन्धेरा होते ही उस समय शुरू हो जाती है जब कि इस अपराधी का पता नहीं लगाया जा सकता और यह पुकार रात भर बिना विराम के जारी रहती है। जब यह वस्तुतः एक उष्ण रात्रि को होती है तो दिन के कठोर परिश्रम के बाद नींद चाहने वाला व्यक्ति इसका शिकार होता है और यदि पौ फटते ही थोड़ा प्रकाश होने पर वह इसका बदला लेने के लिये कटिबद्ध होता है तो उसे इसके लिये क्षमा करना उचित है।"[८]

पपीहा १३ इंच लम्बा, कबूतर जैसे आकार का किन्तु उससे पतला और लम्बी दुम वाला पक्षी है। नर-मादा का रूपरंग एक जैसा होता है। इसके उपरले पंख राख जैसे धूसर वर्ण के तथा उड़ने वाले पंख अधिक भूरे रंग के होते हैं। नीचे का हिस्सा चोंच से छाती तक सफेद होता है और इसमें भूरे रंग की धारियां होती हैं। इसकी दुम के पास कुछ दूर तक सफेदी और इसके बाद काली और सफेद आड़ी पट्टियां होती हैं। आंख की पुतली और चारों ओर का घेरा पीला, चोंच कुछ हरी किन्तु अगले हिस्से में काली तथा टांगें और पैर पीले होते हैं। इसकी सूरत शकल तथा उड़ान का ढंग शिकरे से मिलता है तथा इसके बच्चों का रंग भी शिकरे के बच्चों से विलक्षण साम्य रखता है। यह देश के अधिकाँश भागों में मिलता है, अम्बाला, जोधपुर और कच्छ इसकी पश्चिमी सीमा तथा उत्तरी कछार और ढाका पूर्वी सीमा है। हिमालय की पर्वतमाला में सामान्यतः यह २५०० फीट की ऊंचाई तक मिलता है। यह हमारे देश का

---

७. अंग्रेजी में जिसे Cuckoo कहा जाता है वह भारत में बहुत कम होती है। किन्तु इसके वंश का भारत में पाया जाने वाला सबसे प्रसिद्ध पक्षी कोयल है, अतएव अंग्रेज इसे Indian cuckoo कहते हैं। अतः Cuckoo के लिये कोयल शब्द का प्रयोग वैज्ञानिक दृष्टि से समीचीन नहीं है। इसके लिये परपुष्ट या परभृत का प्रयोग वांछनीय है, क्योंकि इस वंश के सभी पक्षियों की यह विशेषता है कि वे अपने अण्डे-बच्चे स्वयं नहीं पालते किन्तु उन्हें दूसरे पक्षियों के घोंसलों में छोड़ आते हैं, अन्य पक्षियों से पुष्ट होने के कारण ये परपुष्ट या परभृत कहलाते हैं। पपीहा भी इसी परपुष्ट पक्षिपरिवार का सदस्य है।

८. Fletcher T. B. and Inglis C. M :—Birds of an Indlan Garden p. 147

बारहमासी पक्षी है और इस देश में ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर थोड़ा बहुत प्रव्रजन करता है।

इसे जंगलों के पेड़ों तथा अमराइयों में रहना अधिक पसन्द है। यह मानवीय बस्तियों के निकट पेड़ों पर प्राय: मिलता है। परपुष्ट (Cuckoo) वंश का होने के कारण यह अपनी आवाज के लिए प्रसिद्ध है। सर्दियों भर यह चुप रहता है किन्तु गर्मी आते ही मुखर हो जाता है। गर्मी बढ़ने के साथ-साथ इसकी आवाज में तेजी आने लगती है। इसकी आवाज या बोल को विभिन्न भाषाभाषी विविध रूपों में समझते हैं। हिन्दी भाषी क्षेत्र के कुछ व्यक्ति इसके बोल पियु-पियू, पियु-पियू अर्थात् अपने प्रिय को पुकारने वाला मानते हैं। कुछ इसकी ध्वनि में तीव्र विरह की कल्पना करते हुए कहते हैं कि यह पी-कहाँ, पी-कहाँ की रट लगा रहा है। महाराष्ट्र के लोगों का कहना है कि पपीहा बोल रहा है—पावस-आला, पावस-आला अर्थात् वर्षाकाल आया, वर्षाकाल आया। अंग्रेजों ने इसकी ध्वनि के सम्बन्ध में दो प्रकार की कल्पना की है। पहली तो यह है कि यह Brainfever, Brainfever, कहता है और दूसरी यह कि O lor, O lor, How very hot it is getting. we feel it. We feel it. WE FEEL IT (हे भगवन्, हे भगवन् गर्मी कितनी अधिक बढ़ रही है, हम इसका अनुभव करते हैं, अनुभव करते हैं, अनुभव करते हैं। गर्मी से परेशान अंग्रेजों के लिए ऐसी कल्पना करना सर्वथा स्वाभाविक था। "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।"

पपीहा जब एक बार बोलना शुरू करता है तो उसके बोलों में निरन्तर आरोह होता है, ये एक के बाद एक निरन्तर ऊंचे होते जाते हैं। वह एक दौर में पाँच छः बार बोलता है और ऐसा लगता है कि स्वर ऊँचा चढ़ाते-चढ़ाते उसका कंठ फट जायेगा; एक दौर में पांच-छ: बार बोल कर वह एक दम एक आध मिनट के लिये चुप हो जाता है। इस चुप्पी के बाद उसके बोल पुनः उसी तरह शुरू हो जाते हैं और यह क्रम बहुधा दिन भर तथा चांदनी रातों में निरन्तर चलता रहता है।

पपीहे तथा कोयल के बोलों में एक जैसा आरोह होने के कारण कई बार दोनों में कुछ भ्रान्ति हो जाती है। किन्तु इनमें मुख्य अन्तर यह है कि कोयल का बोल एक ही स्वर (Single note) का है, यह कुऊ, कुऊ के रूप में बारंबार उच्चारित होता है, किन्तु पपीहे के बोल में द्विगुण स्वर (Doublenote) है इसमें पियु-पियू, पियु-पियू बारम्बार उच्चारित होता है। दोनों के ही बोल मधुर होते हैं किन्तु तारतम्य और माधुर्य की दृष्टि से पपीहे के बोल हम लोगों को अधिक मनोरम प्रतीत होते हैं, भले ही अंग्रेजों ने इसे मगजखाऊ पक्षी या Brainfever Bird का नाम दिया हो।

यह बड़ा लजीला पक्षी है। बारहमास भारत में ही रहता है और यहीं एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में आता-जाता रहता है।

ह्विसलर के मतानुसार यों तो इसके बोल साल में किसी भी समय सुने जा सकते हैं, किन्तु यह अपने सन्तानोत्पादन के काल में वसन्त के आरम्भ से वर्षाकाल तक अत्यधिक मुखर रहता है (पृ० ३२२) इसका कूजन कामोन्माद के तथा अनुरञ्जन और संवनन (Courtship) के काल में बहुत बढ़ जाता है।

१० वर्ष तक गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार में इसका सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले मेरे मित्र श्री

शंकरदेव जी विद्यालंकार का यह मत है कि हरिद्वार के निकट शिवालक की तराई में यह पक्षी प्रतिवर्ष फरवरी के प्रथम सप्ताह में बोलने लगता है। कई वर्ष तक २ फरवरी से ७ फरवरी तक गुरुकुल काँगड़ी की अमराइयों तथा उद्यानों में इसके बोल पहली बार सुनाई दिये और इसके बाद दिवाली तक इस पक्षी की आवाज यहाँ सुनाई देती रही। एक बार एक ही पपीहा सवेरे के ७ बजे से रात के ७ बजे तक रह, रह कर बोलता रहा। कई बार निस्तब्ध निशा में सारी अमराई रात के ६ बजे से सवेरे के ७ बजे तक इनके बोलों से गूंजती रहती है। इसका भोजन मुख्य रूप से जंगली अंजीरें, फल, कीड़े तथा अन्य पक्षियों से न खाये जाने वाली रोम वाली इल्लियाँ (Hairy Caterpillars) हैं।

इसके सन्तानोत्पादन का समय मार्च से जून तक होता है। परपुष्ट सम्प्रदाय के अन्य पक्षियों की भाँति यह अपना घोंसला नहीं बनाता, किन्तु अपने अण्डे दूसरे पक्षियों के घोंसलों में रखता है। पपीहे के अण्डे रंग-रूप तथा आकार-प्रकार में सतभय्या (Common Babbler) या इसी जाति के अन्य पक्षियों के अण्डों से मिलते हैं। दोनों का अण्डा देने का समय एक ही है। सतभय्या के अण्डे बिल्कुल नीले, चमकीले, सख्त खोल वाले चौड़े तथा अंडाकार (Oval) होते हैं। पपीहे के अण्डे का रंग भी यही होता है पर इतनी चमक नहीं होती है, इसका खोल अधिक सख्त होता है ताकि उँचाई से गिराये जाने पर यह जल्दी न टूटे। ये गोलाकार (Spherical) या दीर्घवृत्तीय (Elliptical) तथा सतभय्या के अण्डों से कुछ बड़े होते हैं। किन्तु सतभय्या के घोंसले में एक साथ पड़े हुए दोनों पक्षियों के अंडों में भेद करना बहुत कठिन है।

पपीहा तथा अन्य कोयलों के दूसरे पक्षियों के घोंसलों में अण्डे रखने की विधि अभी तक पक्षिशास्त्रियों को पूरी तरह ज्ञात नहीं हुई है[६]। इस विषय में दो प्रकार के मत हैं। पहला मत यह है कि ये अण्डे मादा स्वयं सतभय्या आदि पक्षियों के घोंसलों में प्राकृतिक रूप से देती है। इसकी पद्धति इस प्रकार है: जब मादा अण्डे देने वाली होती है तो वह सतभय्या के घोंसले में जाकर पहले अपनी चोंच में उसका एक अण्डा चुरा लाती है और इसके बाद उसके स्थान पर अपना एक अण्डा दे देती है। इस समय भी उसकी चोंच में चुराया हुआ अण्डा होता है। यह बात इस तथ्य से पुष्ट होती है कि परपुष्ट वंश की कोयलों की चोंच में प्राय: अण्डे देखे जाते है। पपीहे को इस पद्धति से अण्डा रखने में एक बड़ी सुविधा यह है कि उसका रंग-रूप शिकरे से मिलता है। उसे आते देखकर ही अन्य पक्षी उड़कर भाग खड़े होते हैं। नर पपीहे के आने पर सतभय्या अपना घोंसला छोड़कर चले जाते हैं और मादा पपीहे को उसके घोंसले में अपना अण्डा देने का स्वर्ण अवसर मिल जाता है।

किन्तु कई बार घोंसले का छेद या मुंह बहुत तंग होने से इस विधि से मादा द्वारा उसमें अण्डे देना संभव नहीं होता। ऐसी दशा में दूसरी पद्धति अपनायी जाती है। मादा अपना अण्डा पहले जमीन पर देती है, फिर उसे चोंच में उठाकर अभीष्ट घोंसले में डाल देती है। फ्लेचर और इंगलिस (पृ० १४९-५०) का मत है कि इन दोनों विधियों का प्रयोग होता है, किन्तु दूसरी विधि अधिक अपनायी जाती है। पपीहे के अण्डे का खोल अधिक सख्त होता है और उसके कुछ ऊँचाई से गिराये जाने पर भी टूटने का भय नहीं रहता।

---

६. Stuart Baker:— Cuckoo Problems

(२) चोटीदार पपीहा (The Pied Crested Cuckoo, Clamator Jacobinus Boddaert)--यह मैना के आकार का किंतु उससे लम्बी पूँछ वाला पक्षी होता है। काले और सफेद रंगों के मिश्रण के कारण इसे कर्बु र या शबल (Pied) तथा परों की एक चोटी अथवा शिखा होने के कारण चोटीदार (Crested) कहते हैं। इसकी चोटी तथा ऊपर के पंख काले तथा हरी चमक वाले होते हैं। उड़ने वाले पर गहरे भूरे होते हैं तथा इनमें चौड़ी सफेद पट्टी होती है। पूंछ लम्बी होती है, इसके परों का अन्तिम भाग सफेद होता है, गर्दन तथा छाती के निचले पंख सफेद, आंख की पुतली लाल और भूरी, चोंच काली तथा टाँगें नीले रंग की होती हैं। बगीचों में या पेड़ों पर यह पक्षी अपनी चोटी से, ऊपर के काले तथा नीचे के श्वेत परों तथा पूंछ के अन्तिम भाग के परों की सफेदी से झटपट पहचान लिया जाता है। इसका प्रिय निवास स्थान वनों में पेड़ तथा पेड़ों वाले खुले मैदान हैं। यह आठ हजार फीट की ऊँचाई तक हिमालय के पहाड़ों में तथा सारे देश में पाया जाता है।"[11]
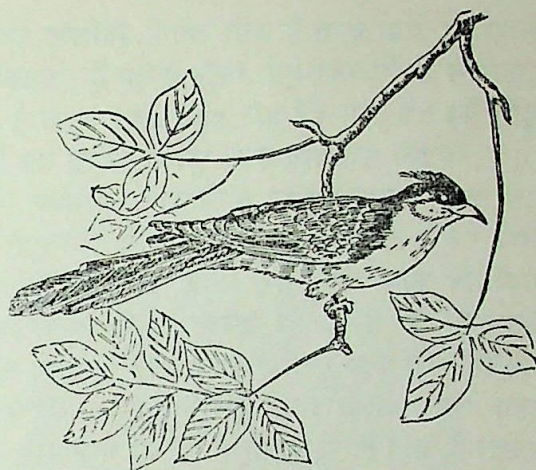
चोटीदार पपीहा (चातक)

भारत के अधिकांश भागों में इस पक्षी की बड़ी जाति Clamator Jacobinus pica पाई जाती है। यह अफ्रीका महाद्वीप में एबीसीनिया, सूडान, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका तथा पश्चिमी अफ्रीका में भी मिलता है और शीतऋतु वहाँ बिताने के बाद मानसून के साथ हमारे देश में आता है। ह्विसलर ने लिखा है कि इसे आर्द्र तथा अच्छे जल वाले प्रदेश पसन्द हैं। यह भारत के अधिकांश भागों में वर्षाकाल में जून से अगस्त या सितम्बर तक पाया जाता है (पृष्ठ ३२४)। पेड़ों तथा कुन्जों का प्रेमी (Arboreal) होने पर भी यह अन्य परपुष्टों की अपेक्षा भूमि के निकट कम ऊँची झाड़ियों में भी बैठता है और अपना कुछ भोजन भूमि पर से ग्रहण करता है। इसका भोजन मुख्य रूप से इल्लियाँ (Caterpillars), चींटी, मकड़ियाँ, भौंरे तथा अन्य कीड़े-मकोड़े (mealy bugs) होते हैं और पाचन-क्रिया की दृष्टि से यह हरे पत्ते भी खाता है।

यह पपीहे की तरह से न तो लजीला, न छिपने वाला और न मनुष्य को देखकर दूर भागने वाला है। प्रायः एक पक्षी दूसरे पक्षी का पीछा करता हुआ देखा जा सकता है। पपीहे की तरह यह बड़ा शोर करने वाला है। इसके बोल सालिम अली (पृ० ५०) के मतानुसार पियु—पियु—पी—पी—पिय...पी—पी—पियु या पियु—पियु हैं। स्टुअर्ट बेकर ने इसके विषय में लिखा है कि गर्भाधान काल में यह बड़ा कोलाहल करता है। प्रायः दो या तीन नर

---

11. Whistler :—Ibid P. 324.

मादा का पीछा करते हैं तथा अपनी विशिष्ट ध्वनि करते हैं, जो बड़ी ऊँची होती है। यह उड़ान में भी निरन्तर ऐसी ध्वनि करता है। इसकी उड़ान बहुत तेज नहीं होती, यह एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक तथा कई बार बहुत ऊँचा उड़ता है।[12]

इसका गर्भाधान काल जून से अगस्त तक है और पपीहे की भाँति यह भी अपने अण्डे इसी समय सन्तानोत्पादन करने वाले सतभय्या (Babblers) के घोंसले में रखता है। इसके अण्डे रंग में तो सतभय्या के अण्डों जैसे नीले होते हैं, किन्तु आकार में कुछ बड़े होते हैं। गर्भाधान काल आने पर मादा पक्षी सतभय्या के घोंसलों की खोज करने लगते हैं।[13] सतभय्या के अण्डों की अपेक्षा इससे बच्चा जल्दी निकल आता है। यह उसके बच्चों की अपेक्षा जल्दी बड़ा होता है और अपने पालक माता-पिता द्वारा लाया हुआ सारा आहार स्वयं लेकर जल्दी पुष्ट होने लगता है। यह पक्षी सतभय्या के एक घोंसले में एक ही अण्डा रखता है, यदि किसी घोंसले में ऐसे दो अण्डे पाये जाँय तो ये संभवत: विभिन्न मादा पक्षियों के होते हैं।[14] मैल्कम मैकडानल्ड ने नई दिल्ली के अपने बगीचे में सतभय्या के घोंसले में चोटीदार पपीहे के अण्डे के विकसित होने तथा उसके अपने अण्डों, बच्चों के नष्ट होने की प्रक्रिया का बड़ा विशद और मनोरंजक विवरण प्रस्तुत किया है।[15]

चातक का स्वरूप—उपर्युक्त सादे और चोटीदार पपीहों में से पिछले को ही कालिदास का चातक मानना उचित प्रतीत होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि कालिदास का चातक वर्षाकाल से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। वह वर्षा का अग्रदूत है, वर्षा के आगे चलता है, यह विशेषता सादे पपीहे में नहीं है, क्योंकि उसका कूजन वर्षाकाल से बहुत पहले फरवरी मास से ही हमें सुनाई देने लगता है, वह वसन्त और ग्रीष्म में भी बोलता है। किन्तु चोटीदार पपीहे की ध्वनि जून से पहले सुनाई नहीं देती। हरिद्वार के निकट गुरुकुल काँगड़ी में श्री शंकरदेव जी के निरीक्षण के अनुसार यह जून के प्रथम सप्ताह में पहुँचता है। सालिम अली ने इसके सम्बन्ध में यह लिखा है कि यह पक्षी प्रतिवर्ष बड़ी नियमितता से मानसून के साथ बम्बई में मई के अन्तिम तीन दिनों में या जून के पहले तीन दिनों में आता है। इसके यहाँ पाये जाने वाले नमूनों से यह ज्ञात होता है कि यह बड़ी नस्ल वाला Clamator Jacobinus pica (Hemps and Ehr) है। यह अफ्रीका से आने वाला माना जाता है किन्तु इसकी एक छोटी नस्ल C. Jacobinus (Bodd.) लंका तथा दक्षिण भारत में बारह मास रहती है और यह दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के साथ प्राय द्वीपीय भारत की यात्रा करती है और वर्षा के महीने यहाँ बिताती है।[16]

श्री धर्मकुमारसिंहजी ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि मानसून के महीनों में ये

---

12. Stuart Baker :—Fauna of British India Birds. Second Edition Vol IV. (1927) P. 167.
13. Dharmakumarsinghji :—Birds of Saurashtra P. 131.
14. Salim Ali :—Ibid. P. 50.
15. Malcom Macdonald. Ibid P. 173-7.
16. EHA :—Common Birds of India P. 184.

सारंग

सारंगास्ते जललवमुचः
सूचयिष्यन्ति मार्गम् ।

मेघदूत-२१

सौराष्ट्र में सर्वत्र पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। यह पक्षी बहुत शर्मीला नहीं है, प्रायः मनुष्य को अपने बहुत पास तक आने देता है। इसके बोल पी—उक (Pee—uk) जैसे होते हैं। यह तेज और ऊँची आवाज भी निकालता है। इस जाति के अधिकांश पक्षी बरसात होने के बाद सन्तानोत्पादन करते हैं—जब कि सादा पपीहे (Hawk Cuckoo) गर्मी के महीनों में गर्भाधान करते हैं अतः यह मानसून का विशेष पक्षी (Typical monsoon bird) है।[17]

बेटस तथा लौथर ने मानसून के साथ इसका सम्बन्ध बताते हुए लिखा है कि यह जून में हमारे देश में आता है और अगस्त या सितम्बर में यहाँ से वापिस चला जाता है। वर्षा शुरू होने पर यह जाति (Clamator Jacobinus pica Hemprich and Ehrenberg) मद्रास प्रान्त तक सारे भारत में फैल जाती है। काश्मीर में यह असाधारण पक्षी है, किन्तु दक्षिण-पश्चिमी मानसून के साथ जून में यह लगभग उसी समय कश्मीर को घाटी में सीमित संख्या में अकस्मात् प्रकट होता है जबकि यह उत्तरी भारत में दिखाई देता है।[18]

श्री सालिम अली ने लिखा है कि इसके स्थानीय प्रव्रजन दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से नियन्त्रित होते हैं। किसी स्थान में इसका आगमन और उपस्थिति एक दूसरे का पाछा करने वाले तथा एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक उड़ने वाले पक्षियों से प्रकट होती है।[19] यह कालिदास द्वारा वर्णित इस तथ्य का पोषक हैं—

सारंगास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ।

मेघदूत २१

आर्द्र जलवायु से सम्बन्ध होने के कारण इसका अम्भोबिन्दुग्रहण में चतुर हाना स्वाभाविक है। इस पक्षी के सितम्बर से यहाँ से चले जाने के कारण कालिदास का यह वर्णन भी वर्तमान पक्षिशास्त्र से पुष्ट होता है कि चातक शरद ऋतु के निर्जल बादल से पानी नहीं माँगता। अतः कालिदास का चातक चोटीदार पपीहे (Pied Crested Cuckoo) को ही मानना उचित है।

पपीहे और चातक का भेद—यदि हम इसे चातक मानें तो हमें वज्ञानिक स्पष्टता का दृष्टि से एक ही परपुष्ट वंश (Cuckoo) का होने पर भी पपीहे और चातक में निम्नलिखित भेद स्वीकार करने चाहियें—

(१) पपीहे का आकार शिकरे जैसा, ऊपर के पर धूसर भूरे, नीचे के पर सफेद, आँख की पुतली पीली, चोंच हरी, टाँगें पीली होती हैं। चातक का रंग काला और सफेद, सिर पर चोटी, आँख लाल-भूरी, चोंच काली, टाँगें नीली होती हैं।

(२) पपीहे के बोल वसन्त, गर्मी और वर्षा तीनों ऋतुओं में सुने जा सकते हैं, किन्तु चातक केवल बरसात में ही बोलता है।

(३) पपीहा बड़ा लजीला पक्षी है, चातक ऐसा नहीं है।

(४) पपीहा हमारे देश में बारह मास रहने वाला पक्षी है। चातक वर्षाकाल में

---

17. Dharmakumarsinghji :—Birds of Saurashtra. P. 131.
18. Bates and Lowther :—Breeding Birds of Kashmir. P. 221-22.
19. Salim Ali :—The Book of Indian Birds (1961) P. 50.

मानसून हवाओं के साथ जून में हमारे देश में आता है और वर्षा समाप्त होते ही सितम्बर में हमारे देश से चला जाता है।

यदि हम चातक की उपर्युक्त विशेषताओं पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे साहित्य में इसे मेघजीवी या पयोदवृत्ति क्यों कहा गया है। यह हमारे देश में वर्षाकाल में ही आता है अतः यह सर्वथा स्वाभाविक है कि इसका विशेष सम्बन्ध मेघ से जोड़ा जाय। इसी सम्बन्ध को बाद में कवि कल्पना ने यह रूप दे दिया है कि चातक प्यासा मर जाता है किन्तु मेघजल के अतिरिक्त कोई जल ग्रहण नहीं करता। वस्तुतः वर्षा की समाप्ति के साथ यह हमारे देश से विदा हो जाता है और इसे कभी प्यासा मरने की नौबत नहीं आती।
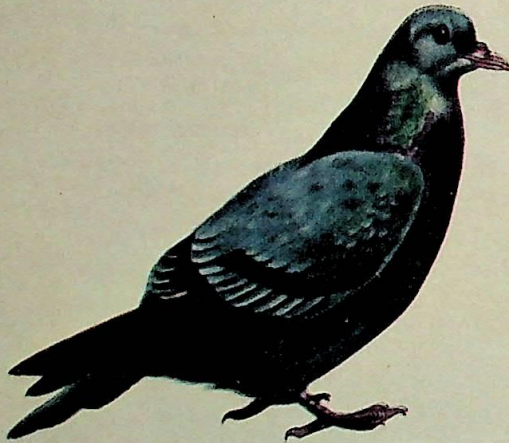
पारावत

तां कस्यांचिद् भवनवलभौ सुप्तपारावतायाम् ।

मेघदूत-४०

७ | पारावत

अत्यन्त प्राचीन काल से पारावत या कबूतर अपनी प्रणय लीलाओं तथा कलकूजन के कारण मनुष्य का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। यद्यपि सदा साथ रहने वाले तथा आदर्श दाम्पत्य जीवन बिताने वाले चक्रवाक, सारस आदि अनेक पक्षी हैं, तथापि कबूतर-कबूतरी का जोड़ा आठों पहर एक दूसरे से अलग नहीं होता, लोक-लज्जा की परवाह न करते हुए अनेक प्रकार की प्रणय-केलियाँ—नर का मादा के आस-पास नाचना, गाना, गुटरगूं का कलकूजन करना तथा चोंच से चोंच मिलाकर प्यार दिखाने की क्रियायें—सदा करता रहता है। काव्यादर्श (२।१०) में दण्डी ने इसके प्रणय-व्यापार का उल्लेख करते हुए कहा है कि यह कबूतर मधुर वाणी बोलकर, गर्दन घुमाकर, मदभरी आँखों से प्रीतिपूर्वक देखता हुआ अपनी प्रियतमा के साथ रमण करने की इच्छा से उसे चूम रहा है—

कलक्वणितगर्भेण कंठेनाघूर्णितेक्षणः।
पारावतः परावृत्य रिरंसुश्चुम्बति प्रियाम्।

कबूतर

महाकवि कालिदास की सूक्ष्म दृष्टि से ऐसा प्रणयी पक्षी कैसे अछूता रह सकता था? उसने मेघदूत में उज्जयिनी नगरी की अभिसारिकाओं के प्रणय-व्यापार के प्रसंग में इसका बड़ा मनोरम निर्देश किया है। विरही यक्ष मेघ को अलकापुरी का मार्ग बताते हुए उज्जयिनी के प्रसंग में कहता है कि वहाँ घर के काम-काज से फुर्सत पाने पर नवीन अनुराग से चंचला अभिसारिकायें जब रात्रि के सूचीभेद्य घनान्धकार में प्रेमियों द्वारा निर्दिष्ट अभिसारस्थलों की ओर प्रस्थान करें, उस समय तुम इनको मार्ग दिखाने में सहायता करना; काली कसौटी पर कसी हुई कांचन रेखा के समान अंधेरे रास्तों पर क्षण भर के लिए अपनी प्रियतमा विद्युत् को चमकाकर इन रमणियों के प्रियतम के पथ को आलोकित करना। किन्तु मुझे ऐसी आशंका है कि हे मित्र, उस समय कहीं तुम्हें विनोद न सूझ पड़े। कहीं ऐसा न कर बैठना कि झमाझम पानी बरसाकर और गम्भीर गर्जन करके अभिसारिकाओं के भयग्रस्त मुख-मण्डल और कम्पमान हृदय का रस लेने लगो।[1] अभिसारिकायें वैसे ही डरपोक

---
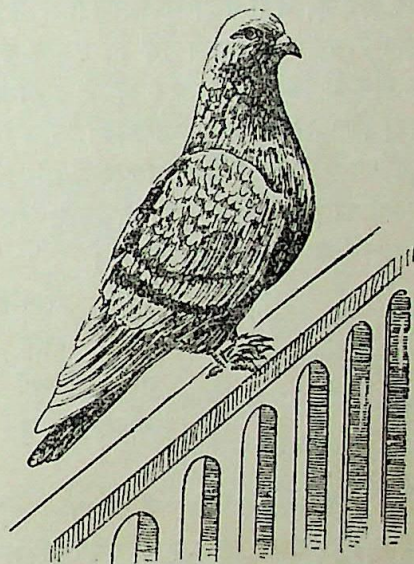
१. हजारीप्रसाद द्विवेदी :—मेघदूत एक पुरानी कहानी पृ० ७४।

होती हैं, तुम उन्हें अधिक न डराना। चुपचाप विद्युत् की हल्की आभा से मार्ग दिखाकर आगे बढ़ जाना (मेघदूत श्लोक ३७)। परन्तु यह प्रार्थना करके मैंने तुम्हारे साथ थोड़ा अन्याय किया है। बार-बार तुम्हारी प्रिया को कौंधने के लिए कहना सचमुच अपने हृदय की कठोरता को ही व्यक्त करता है। उससे तुम्हारे हृदयदेश में विराजमान चिरसहचरी विद्युत्प्रिया को कष्ट होगा और सुकुमार देहयष्टि वाली वह तन्वंगी अवश्य क्लान्त हो उठेगी। किन्तु इस कष्ट को भी हल्का करने का उपाय बताता हूँ। उज्जयिनी के विशाल महलों में अनेक मनोहर भवन तथा वलभियाँ (अटारियाँ) या छज्जे हैं। इनमें रात को कहीं-कहीं कबूतरों के जोड़े विश्रब्ध भाव से विश्राम करते हैं। जहाँ भी तुम्हें यह अनुभव होने लगे कि तुम्हारी विद्युत्प्रिया थक गई है; वहीं कहीं सुन्दर अटारी में चुपचाप सो रहे कपोतदम्पती की बगल में जा बैठना और प्रिया को विश्राम देने का प्रयत्न करना। चिरविलास से खिन्न वधुओं के लिए प्रियतम के अंक में विश्रब्ध भाव से शयन करने की अपेक्षा अधिक शान्तिदायक दूसरा उपाय नहीं है। मेरा विश्वास है कि प्रत्यूषकाल तक तुम दोनों मार्ग की थकान दूर करने में समर्थ हो सकोगे। सूर्योदय होते ही वहाँ से चल देना और अपना शेष मार्ग पूरा करना। उज्जयिनी को इतनी जल्दी छोड़ना सम्भव नहीं है, किन्तु जो सज्जन मित्रों का काम पूरा करने का बीड़ा उठाते हैं, वे इसमें कभी देर नहीं लगाते।

तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः॥

मेघदूत ४०

पारावत का निवास-स्थान—कालिदास ने उपर्युक्त श्लोक में पारावत का निवास-स्थान महल की अटारी, छज्जा या उपरला भाग (वलभी)[२] बताया है। मालविकाग्निमित्र में भी कबूतर के इसी प्रिय स्थान का निर्देश है।। द्वितीय अंक में वैतालिक ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न की प्रचण्ड गर्मी के प्रभाव का सुन्दर शब्दचित्र उपस्थित करते हुए यह उल्लेख करता है कि अत्यधिक गर्मी से भवन इतने तप गये हैं कि पारावतों ने इनके छज्जों पर बैठना बन्द कर दिया है—

सौधान्यत्यर्थतापाद् वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि

मालविकाग्निमित्र २।१२

छतें और छज्जे कबूतरों के प्रिय स्थान हैं किन्तु दोपहर की गर्मी से इनके तप जाने पर कबूतरों ने उन्हें भी छोड़ दिया है।

विक्रमोर्वशीय (३।२) में भी कालिदास ने इनके इसी प्रिय स्थान—वलभी का निर्देश किया है। कंचुकी तीसरे अंक में राजगृह की सायंकालीन सुषमा का वर्णन करते हुए कहता है कि छतों से बाहर निकली हुई टांड (वलभी) में बैठे हुए कबूतरों और इन टांडों के छेदों में से निक-

२. मल्लिनाथ—कस्यांचित् भवनस्य वलभौ आच्छादने उपरिभागे इत्यर्थः "आच्छादनं स्याद् वलभी गृहाणाम्, इति हलायुधः।

लने वाले धुएं—दोनों में यह भेद करना कठिन है कि कौन धुआं है और कौन कबूतर है।

धूपैर्जालविनिःसृतैर्वलभयः संदिग्धपारावताः ।

विक्रमोर्वशीय ३.२

कपोत का वर्णन—यहाँ कवि ने कबूतर के रंग का संकेत करते हुए उसे धुएं जैसा धूसर वर्ण का बतलाया है। इसी प्रकार कुमारसम्भव में भी कबूतर का रंग भस्म जैसा कहा गया है। शिवजी के त्रिनेत्र से उत्पन्न अग्नि से भस्मीभूत कामदेव के शरीर को संकेत करती हुई उसकी दुःखिनी पत्नी रति वसन्त से कहती है—"वसन्त, देखो तुम्हारे मित्र की क्या दशा हो गई है। कबूतर के समान चितकबरे (कर्बुर) राख के इस ढेर को हवायें कण-कण करके इधर-उधर बिखेर रही हैं—

इति चैनमुवाच दुःखिता सुहृदः पश्य वसन्त किं स्थितम् ।
तदिदं कणशो विकीर्यते पवनैर्भस्म कपोतकर्बुरम् ॥

कुमारसम्भव ४.२७

पारावत की प्रणयचेष्टायें—दाम्पत्य प्रेम का प्रतीक होने के कारण कालिदास ने पारावत[३] का उल्लेख शिव-पार्वती के प्रणय-प्रसंग में भी किया है। देवताओं ने तारकासुर के उत्पात से रक्षा के लिए शिव को पार्वती के साथ परिणय के लिए उद्यत किया ताकि इनकी शक्तिशाली सन्तान असुरों का पराभव कर सके। किन्तु शिव-पार्वती अपनी प्रणयकेलियों में इतने मस्त हो गये कि उन्हें यह उद्देश्य स्मरण ही नहीं रहा। इस प्रकार जब बहुत समय बीत गया और देवताओं के धैर्य का बांध टूटने लगा तो उनकी ओर से उनके कुमार के सम्भव या जन्म के महत्त्वपूर्ण कार्य का स्मरण कराने के लिये अग्नि ने पारावत का रूप धारण किया और शिव ने पार्वती के साथ अनंगरसप्रसंग में व्याप्त होने पर इसे अपने संभोगगृह में प्रवेश करते हुए देखा (कुमारसम्भव ९.१)।

यहाँ तीन श्लोकों में कवि ने पारावत की प्रणय काल में की जाने वाली चेष्टाओं और कार्यों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया है (कुमारसम्भव ९.२-४)। यह उस समय प्रियतमा की अत्यन्त मनोहर और मीठी वाणी की तरह कूजन कर रहा था, इसके नेत्र मदभरे और रतनारे थे; यह अपने कण्ठ को फैला रहा था तथा ऊँचा-नीचा कर रहा था, बार-बार अपनी सुन्दर पूँछ को सिकोड़ रहा था, इसके पंखों के मूल भाग उन्मुक्त या ढीले थे, कामोन्माद (मद) के कारण इसकी चाल मस्तानी थी, इसका वर्ण चांद जैसा शुभ्र था और यह मण्डलाकार या गोल गति से इधर-उधर विचरण कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह रति और कामदेव द्वारा आलोडित किये जाने वाले सफेदी के सरोवर की झाग से उत्पन्न हुआ नया पुंज है, शिव ऐसे कपोत को देखकर कुछ देर बहुत प्रसन्न हुए—

सुकान्तकान्ताभणितानुकारम् ।
कूजन्तमाघूर्णितरक्तनेत्रम् ॥

---

३. यह शब्द हिन्दी के परेवा का मूल है, इसके विषय में बिहारी का यह दोहा प्रसिद्ध है—

पट्टु पाखै, भखु कांकरै, सपर परेई संग ।
सुखी परेवा पुहुमि मैं, तू ही एक विहंग ॥

प्रस्फारितोन्नम्रविनम्रकण्ठम् ।
मुहुर्मुहुर्न्यञ्चितचारुपुच्छम् ॥
विच्छृंखलं पक्षतियुग्ममीषद्
दधानमानन्दगतिं मदेन ।
शुभ्रांशुवर्णं जटिलाग्रपाद-
मितस्ततो मण्डलकैश्चरन्तम् ॥
रतिद्वितीयेन मनोभवेन ।
ह्रदात्सुधायाः प्रविगाह्यमानात्
तं वीक्ष्य फेनस्यचयं नवोत्थ-
मिवाभ्यनन्दत्क्षणमिन्दुमौलिः ।

कुमारसम्भव ६।२-४

कालिदास द्वारा कबूतर की प्रणयकेलियों का उपर्युक्त वर्णन अनेक अंशों में आधुनिक विहगविद्याविशारदों द्वारा वर्णित इसकी अनुरञ्जन (courtship) के समय की जाने वाली चेष्टाओं से बहुत मिलता है। उपर्युक्त श्लोकों में प्रिय को प्रसन्न करने के लिए मण्डल या गोलाकार गति का उल्लेख है। भारतीय विहगविद्याविद् श्री धर्मकुमारसिंह जी ने लिखा है कि अनुरंजन के समय नर कबूतर अपनी छाती को फुलाकर नीचा करता है; नीचे झुकता है तथा वृत्तों में चक्कर काटता है।"[४] आर्थर थाम्पसन ने कपोतों के प्रणय व्यापार तथा प्राङ्मैथुन लीला पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि इस समय उनकी निम्न चेष्टायें होती हैं—"Preening and shaking the feathers, elaborate bowing and cooing, approaching the mate, giving amorous glances, wagging the wings, lowering the head, swelling and spreading the tail and feathers on the back and the rump, alternately stamping and striking the feet and wagging the body from side to side and strutting with drooping wing.[५]

'सुकान्तकान्ताभणितानुकारकूजन' के विषय में इसी लेखक ने लिखा है कि it gives the driving coo consisting in (bronze wing pigeons) of three notes, with raised wings, raised and spread tail, while the beak is on the floor.[६]

इसी लेखक ने कालिदास के 'विश्रृंखलपक्षतियुग्ममीषद्धानं', का समर्थन करते हुए लिखा है—walping with its wings raised and arched in an elegant manner.

इससे यह स्पष्ट है कि सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर कालिदास का पारावत की केलियों का वर्णन वर्तमान पक्षिशास्त्र की दृष्टि से यथार्थ है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कालिदास ने पारावत के सम्बन्ध में निम्न बातों पर प्रकाश डाला है।

(१) पारावत घरों में ऊँचे स्थानों पर रहते हैं।

---

४. Dharma Kumarsinghji :—Birds of Saurashtra P. 281.
५. Thomson Arther :—The Biology of Birds (1923) P. 178.
६. वही ग्रन्थ पृ. पृ १७८।

(२) इनका रंग कर्बुर, राख जैसा तथा विशुद्ध श्वेत रंग का होता है।

(३) इनके प्रणय-व्यापार की चेष्टायें बड़ी मनोरंजक होती हैं।

कबूतरों के आधुनिक विहगविद्या सम्मत निम्नलिखित वर्णन से कालिदास के कथन की वैज्ञानिकता स्पष्ट हो जायेगी।

कबूतरों का वैज्ञानिक स्वरूप—वर्तमान वैज्ञानिक कबूतरों का एक बड़ा विस्तृत वर्ग मानते हैं। लैटिन भाषा के कपोतवाची शब्द Columba के आधार पर इसे कपोताकार वर्ग (Order Columbiformes) का नाम देते हैं, इसका एक उपवर्ग (Suborder) Columbae है। इस में एक परिवार Family Columbidae कहलाता है। इसके दो उपपरिवारों में एक उपपरिवार (Subfamily) Treroninae या दक्षिणी हरे कबूतरों का है, इनका वर्णन हारीत के प्रकरण में किया गया है। दूसरा उपपरिवार (Subfamily) Columbinae है, इसमें कबूतरों तथा फाख्ता या पंडक (Dove) के सभी भेदों का समावेश होता है ?[७]

---

७. संस्कृत में कबूतर के लिए निम्न शब्दों का प्रयोग होता है—

(१) पारावत—यह नाम इसे इसके मजबूत डैनों तथा लम्बी उड़ान में दक्ष होने के कारण दिया गया है। दे० शब्दकल्पद्रुम—पारे गिरिदुर्गनद्यादिपारे आपततीति। उड्डीयत सुदक्षत्वादेवास्य तथात्वम्, यद्वा परावद् दूरदेशस्तस्मिन् अन्तरिक्षादिदूरदेशे भवः उड्डीयमानः स्थितः इत्यर्थः।

(२) छेद्यकण्ठ—इसके शाकाहारी तथा खूब मोटा होने से शिकारी इसका मांस अच्छा और सुस्वादु समझते हैं तथा इसका गला काटने योग्य मानते हैं। यदि यह निरन्तर अधिक संख्या में सारे वर्ष सन्तान न उत्पन्न करे तो इसका उच्छेद हो जाय।

(३) कपोत—क अर्थात् वायु में जो पोत या जहाज की तरह चलता है (को वायुः पोतः नौरिवास्य)।

(४) रक्तलोचन—अर्थात् लाल रंग की आँख वाला।

(५) पारापत—यह पारावत का ही दूसरा रूप है।

(६) कलरव—मधुर शब्द करने वाला।

(७) अरुणलोचन—लाल नेत्र वाला।

(८) मदनकाकुरव—मदन अर्थात् कामोन्माद के समय मधुर ध्वनि करने वाला।

(९) कामी—अत्यन्त काम वासना वाला। इस विषय में शब्दकल्पद्रुम में उद्भट का यह श्लोक दिया गया है।

'सिंहो बली द्विरद कुंजरमांसभोजी, संवत्सरेण कुरुते रतिमेकवारः ?
पारावतः खलु शिलाकणमात्रभोजी, कामी भवेदनुदिनं वद कोऽत्र हेतुः ॥

सिंह के बारे में तो पता नहीं, किन्तु कबूतर के बारे में उपर्युक्त बात बिलकुल सही है, कि उसका गर्भाधान और सन्तानोत्पादन निरन्तर वर्ष भर चलता रहता है। (EHA. Ibid p. 138 Salim Ali Ibid P. 14)

(१०) मदनमोहनवाग्विलासी—कामदेव जैसी मुग्ध करने वाली वाणी से विलास करने वाला।

(११) कण्ठीरव—कण्ठ से मधुर ध्वनि करने वाला।

(१२) गृह कपोतक—हमारे घरों में निवास करने वाला। अंग्रेजी के Columbinae शब्द की भाँति संस्कृत कपोत में कबूतर और फाख्ता का समावेश है, इन दोनों में भेद करने के लिये पहले को

इस वर्ग के पक्षियों की कई विशेषतायें हैं। इनकी चोंचें मोटी, अग्रभाग में कठोर तथा पिछले हिस्से में मृदु होती हैं। इनकी आँखें बड़ी, चमकीली तथा सिर में काफी पीछे की ओर होती हैं। इनके शरीर सुगठित, पूंछ सुन्दर न बड़ी न छोटी तथा पंख तेज और मज़बूत उड़ान के लिए समर्थ होते हैं। यद्यपि कलगी, पूंछ, रंगीन पंख आदि जैसा सुन्दर बनाने का कोई विशेष अलंकरणात्मक तत्त्व कबूतरों में नहीं होता, फिर भी ये बहुत सुन्दर और अत्यधिक मनोरम होते हैं। एटकिन के शब्दों में इनका सौन्दर्य पीलक (Golden oriol) या किलकिला (Kingfisher) जैसा नहीं होता किन्तु इनमें मेघों, दूरस्थ पर्वतों और मृदु सूर्यास्त जैसी चारुता होती है।[८] इनका सौन्दर्य केवल परों में ही नहीं, किन्तु इनकी आंखों, पैरों और चोंच में होता है। अन्य पक्षियों की अपेक्षा इनकी गति, चेष्टायें तथा हाव-भाव अधिक लालित्यपूर्ण होते हैं।

कबूतरों के कुछ आन्तरिक गुण भी इन्हें अन्य पक्षियों से पृथक् करते हैं। ये शाकाहारी होते हैं, अनाज और फल खाते हैं। मांस का भोजन किसी रूप में नहीं करते। अत एव अहिंसक समझे जाने के कारण भारत में जैनियों द्वारा बड़ी प्रतिष्ठा पाते हैं। ये अन्य पक्षियों की भांति घूंट-घूंट (Sip) करके पानी नहीं पीते, किन्तु चोंच को पानी में डुबाकर रखते हुए घोड़े की तरह पानी पीते हैं। ये अपने दो सफेद अण्डे टहनियों से बनाये चपटे घोंसलों में रखते हैं और अपने शरीर के भीतर की एक थैली में धड़ाधड़ जमा किए दानों से दूध जैसा तरल पदार्थ निकालकर अपने बच्चों का पोषण करते हैं। बच्चों की चोंच में अपनी चोंच रखकर उन्हें दूध पिलाना इनकी एक बड़ी विशेषता है। ये दूसरे पक्षियों की तरह गाते या चहचहाते नहीं हैं, केवल अपने कण्ठ से मधुर कूजन (Coo) करते हैं, इसीलिए इन्हें संस्कृत में कलरव भी कहा जाता है।

एटकिन ने लिखा है कि "इनकी सबसे बड़ी विशेषता इनके दाम्पत्य जीवन की पवित्रता है। इस विषय में ये मानव समाज के अधिकांश भाग से बहुत आगे हैं। इनमें बहुविवाह (Polygamy) तथा बहुभार्यता (Polyandry) की प्रथा बिल्कुल नहीं है। ये एकविवाही (Monogamous) पतिव्रत और पत्नीव्रत होते हैं। एक बार दम्पती बन जाने पर दोनों मृत्यु पर्यन्त एक-दूसरे के प्रति सच्चे रहते हैं।[९] उनकी प्रेम तथा अनुरंजन करने की रीति हमारे जैसी है और विवाह हो जाने के बाद एक-दूसरे को प्रेम प्रदर्शित करते रहते हैं। इन्हें अपने बच्चों से बहुत प्यार होता है। एटकिन ने लिखा है कि एक बार उससे पाले गये कबूतर के जोड़े में से कबूतरी अपने दो छोटे बच्चे छोड़कर मर गई; ऐसा प्रतीत होता था कि ये बच्चे जीवित नहीं रहेंगे। किन्तु पिता ने इनके पोषण का दायित्व अपने पर लिया और बड़ी सफलता के साथ इनका पालन किया।[१०]

घरों में घोंसला और निवास-स्थान बनाने के कारण गृह-कपोत कहा जाता है और फाख्ता पंडक या घुग्घी (Dave) को वन में रहने के कारण वन-कपोत का नाम दिया जाता है। इसके अन्य नाम चित्रकण्ठ, कोकदेव, धूसर, धूमलोचन आदि हैं।

८. EHA. Common Birds of India P. 137

९. EHA :—Ibid P. 137

१०. Ibid P. 138

नीला चट्टानी कबूतर—भारत में सामान्य रूप से पाये जाने वाले कबूतर को नीला चट्टानी कबूतर (Blue Rock Pigeon, Columba livia Gmelin) कहा जाता है। इसे यह नाम दिये जाने का यह कारण है कि इसमें नीले रंग की प्रधानता होती है और बिल्कुल जंगली दशा में यह चट्टानों में और पहाड़ों के पाषाणों की दरारों में अपना निवास स्थान बनाता है। यह आकार में १३ इंच का होता है। हमारे आसपास की बस्तियों और शहरों में सर्वत्र दृष्टि-गोचर होता है क्योंकि यहाँ इसे मकानों की छतों और ऊँचे रोशनदानों में घर बनाने और रहने की तथा आहार पाने की सुविधा होती है। इसका रंग स्लेटी तथा धूसर होता है; गर्दन पर चमकीले हरे रंगों की कण्ठी, उसके नीचे चारों ओर चमकीली बैंगनी पट्टी होती है। पीठ और डैनों का रंग अधिक गहरा होता है, पंखों पर दो काली पट्टियाँ होती हैं, पूँछ के पिछले सिरे पर चौड़ी काली पट्टी तथा बाहरी पंखों के मूल में सफेद निशान होता है। आँख की पुतली भूरी लाल, चोंच काली, इसका निचला भाग मोटा तथा सफेद होता है। लाल-गुलाबी टांगें इसकी शोभा बढ़ाती हैं। पैर की चार उँगलियों में तीन आगे की ओर तथा एक पीछे की ओर, सिर छोटा, शरीर भारी, चोंच नर्म तथा डैने बड़े मजबूत होते हैं।

यह सारे भारत में तथा हिमालय में १३००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। मनुष्य द्वारा बनाई गई इमारतों के छज्जे, कुएं, रेलवे स्टेशन, इनके पुल, गोदाम इसके प्रिय निवास-स्थान हैं। ये बम्बई जैसे शहरों में निवास एवं आहार की सुविधा के कारण बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। एटकिन के शब्दों में ये दो बातों से बम्बई की ओर आकृष्ट होते हैं—निवास स्थान की प्रचुरता तथा अनाज का व्यापार करने वाले हिन्दुओं की धर्मनिष्ठा और उदारता।[११] यहाँ यद्यपि ये बहुत निर्भीक और पालतू बन जाते हैं, किन्तु उन्हें अपनी वन्य दशा में लौटने में कुछ भी देर नहीं लगती। अन्य पक्षियों के समान इनके सन्तानोत्पादन का काल वर्ष में कुछ निश्चित महीने नहीं होते। यह साल भर अण्डे-बच्चे देता रहता है। एटकिन के कथनानुसार यदि पालतू कबूतरों के एक जोड़े को घोंसला बनाने के दो बक्से दे दिये जाएँ तो यह पहले बक्से में दिये अण्डों से बच्चे निकलने से पूर्व ही दूसरे बक्स में अण्डे दे देते हैं।[१२]

कबूतरों द्वारा संवादप्रेषण—कबूतरों में अपना घर पहचानने तथा दूर से भी वहाँ तक पहुँचने की विलक्षण सहज बुद्धि (Homing instinct) होती है। इसीलिये प्राचीन काल से ये सन्देश भेजने के लिए पाले जाते रहे हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र में कहा गया है जो राजा शत्रु के दुर्ग को जीतना चाहता हो तो उसे ऐसा प्रचार करना चाहिए कि वह छल्ला (मुद्रा) बंधे हुए कबूतरों के द्वारा विदेशों के समाचार घटना होने वाले दिन में ही प्राप्त कर लेता है (१३।१ विदेशप्रवृत्तिविज्ञानं तदहरेव तेन मुद्रासंयुक्तेन)। इसी प्रकार उसने अन्यत्र यह व्यवस्था की है कि शत्रुओं तथा जंगली जातियों की गतिविधियों को देखकर यह समाचार शिकारी मुद्रायुक्त पालतू कबूतरों द्वारा राजा के पास भेज दें (३।३४—अमित्राटवीसंचारे च राज्ञो गृहकपोतैर्मुद्रायुक्तैर्हारयेयुः)। मध्यकाल में अबुलफजल के वर्णनानुसार अकबर ने संवाद-प्रेषण के प्रयोजन से बीस हजार कबूतर पाल रखे थे। प्रथम विश्वयुद्ध तक कबूतरों का इस कार्य के लिए बहुत प्रयोग होता रहा। बेतार की तार और रेडियो आदि संवादप्रेषण के नवीन साधनों के

११. EHA Ibid P. 139
१२. EHA Ibid P. 138.

आविष्कार के बाद अब कबूतर का इस कार्य के लिए विशेष उपयोग नहीं रहा।

पालतू कबूतरों के भेद—मनुष्यों ने कबूतरों को पालतू बनाकर इनकी नाना रंगों और विशेषताओं वाली किस्मों का बहुत विकास किया है। डार्विन के मतानुसार ये सब किस्में नीले चट्टानी कबूतरों से प्रादुर्भूत हुई हैं। जिस प्रकार ब्रिटिश युग में शासकों का अनुसरण करते हुए सम्भ्रान्त भारतीयों में विविध प्रकार के कुत्ते पालने का फैशन चला, उसी प्रकार मध्य युग में मुगल बादशाहों के कबूतर पालने के शौक का अनुसरण करते हुए हमारे देश में इन्हें पालने का बहुत रिवाज़ था और हमारे यहाँ काला, हरा, गुलाबी, श्वेत आदि विभिन्न रंगों वाले, गिरहबाज, लोटन, मुक्खी, शीराज़ी, बगदादी, लक्का आदि अनेक पालतू कबूतरों का विकास हुआ था। क्या कालिदास के समय में भी ऐसी स्थिति थी ?

इसका ज्ञान हमें कबूतर के रंगों से हो सकता है। प्राकृतिक दशा में वह एक ही नीले वर्ण का होता है; पालतू दशा में उसके रंग अनेक प्रकार के होते हैं। कालिदास ने पारावत के वर्ण का उल्लेख दो स्थानों में किया है। कुमारसम्भव (४।२७) में उसने इसे कर्बुर तथा भस्म के वर्ण का कहा है। कर्बुर का अर्थ है—नाना रंगों वाला (Variegated), क्योंकि अमर-कोश (१।६।१) में कहा गया है—

चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे।

कालिदास ने कर्बुर के साथ इसके भस्म के वर्ण का भी उल्लेख किया है; राख धूसर (grey) रंग की होती है। अतः कालिदास का यह वर्णन प्राकृतिक दशा में पाये जाने वाले नीले चट्टानी कबूतर का प्रतीत होता है। इसमें धूसर वर्ण भी होता है तथा गर्दन में पीले और बैंगनी, आँख में भूरे नारंगी, पैर में गुलाबी रंग का मिश्रण होने से नाना रंगों वाला होने के कारण उसने इसे कर्बुर का विशेषण बिल्कुल ठीक ही दिया है।

किन्तु कालिदास ने कुमारसम्भव में ही अन्यत्र (६।४) में शिव-पार्वती के सुरतप्रसंग में जिस कबूतर का उल्लेख किया है,उसका वर्ण चन्द्र के समान धवल (शुभ्रांशुवर्ण) था, उसे सफेदी के सरोवर (सुधाह्रद) की फेन का पुंज बताया गया है। कबूतर का ऐसा शुभ्र रंग (वर्ण) प्रकृति में स्वाभाविक रूप से नहीं पाया जाता, किन्तु विभिन्न प्रकार के पालतू कबूतरों के अन्तः मिश्रण (Inbreeding) का परिणाम होता है। अतः यह कल्पना की जा सकती है कि कालिदास को सफेद रंग के पालतू कबूतरों का भी ज्ञान था।

कालिदास के टीकाकारों का भी यही मत प्रतीत होता है। उज्जयिनी की भवनवलभी में उसने जिन कबूतरों के सोने की बात लिखी है, वे आरण्यक एवं पालतू दोनों प्रकार के कबूतर हो सकते हैं। किन्तु मल्लिनाथ का यह मत है कि वे पालतू कबूतर थे और शौकीन नागरिक इनका मधुर कूजन सुनने के लिए इन्हें अपने घरों में रखा करते थे।[१३]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महाकवि का पारावत के रंग, निवास-स्थान और प्रणय-केलियों का वर्णन सर्वथा स्वाभाविक और वैज्ञानिक है तथा उसने जंगली और पालतू दोनों प्रकार के कबूतरों का उल्लेख किया है क्योंकि जंगली कबूतर भी हमारे घरों की छतों में अपना घोंसला बनाते हैं।

---

१३. पूर्वमेघ ३८ पर मल्लिनाथ की टीका—ते हि कण्ठरुतश्रवणार्थं नागरकैर्गृहे धार्यन्ते।

१० | हारीत

कालिदास ने हारीत का उल्लेख केवल एक बार किया है। रघुवंश के चौथे सर्ग में रघु की दिग्विजय का वर्णन करते हुए दक्षिणी भारत के प्रकरण में कहा गया है कि कावेरी नदी में स्नान करने के बाद काफी रास्ता चलने पर उसकी विजय चाहने वाली सेनाएँ मलय पर्वत के पास के उन प्रदेशों में पहुँची जहाँ काली मिर्च के वनों में हारीत उड़ रहे थे—

बलैरध्युषितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वनः ।
मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः ॥ रघु० ४।४६

क्या मलयाद्रि में काली मिर्च के वन हैं? क्या यहाँ हारीत पक्षी होते हैं?

हारीत

मलयाद्रि पार्जिटर के मतानुसार दक्षिण भारत में पश्चिमी घाट का नीलगिरि से कन्याकुमारी तक फैला हुआ भाग है। कावेरी के दक्षिण में पश्चिमी घाट का बढ़ाव मलयगिरि का पश्चिमी भाग है।[१]

मलाबार का प्रदेश प्राचीन काल से काली मिर्च की पैदावार के लिए प्रसिद्ध है। वाट ने लिखा है कि काली मिर्च एक लता है, जो ट्रावनकोर तथा मलाबार के वनों में जंगली रूप में पायी जाती है और दक्षिण भारत के गर्म तथा आर्द्र प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है।[२]

हारीत हरे रंग के कबूतर (Green Pigeon) को कहते हैं। संस्कृत में अपने हरे रंग के कारण इसे यह नाम दिया गया है।[३] यह हारित या हारीतक भी कहलाता है। हिन्दी

---
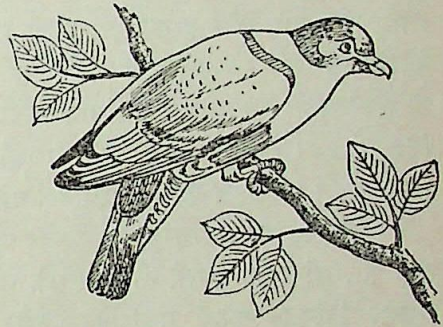
१. B. C. Law—Historical Geography of Ancient India. Page 193. नन्दलाल दे (The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India. Second Ed. 1922. P. 122) का भी यह मत है कि पश्चिमी घाटों का कावेरी नदी से दक्षिण का हिस्सा मलयगिरि है, इसमें ट्रावनकोर की पहाड़ियाँ, कार्डेमम पर्वत तथा कोयम्बटूर के व्यवधान (gap) से कन्याकुमारी तक फैले हुए पहाड़ आते हैं।

२. Watt :—The Commercial Products of India (1908) P. 896.

३. शब्द कल्पद्रुम में इसकी एक दूसरी व्युत्पत्ति यह भी की गई है कि **'हारि मनोहारि इतं गमनं यस्य'** अर्थात् जिस पक्षी का उड़ना बहुत सुन्दर है।

में यह हारिल या हरियल के नाम से प्रसिद्ध है और इसके बारे में ऐसी किंवदन्ती है कि इसका प्रण है कि यह भूमि पर कभी पैर नहीं रखेगा और इसलिए यह उड़ते हुए ही प्राण छोड़ता है।

गही टेक छूट्यो नहीं, कोटिन करौ उपाय।
हारिल धर पग न धरै, उड़त फिरत मरि जाय॥

हारीत के भेद—हमारे देश में आकार और शरीर में तथा रंगों के भेद की दृष्टि से हरियल की कई किस्में पाई जाती हैं। यह आकार में १८ इंच से १२-१३ इंच तक होता है। यद्यपि सब किस्मों के हरियलों के पर हरे होते हैं, किन्तु हरेपन में अन्तर होता है। कोई गाढ़ा हरा तथा कोई हल्का हरा होता है। इसके अन्य अंगों में भी कुछ अन्तर होता है। कालिदास ने मलयाद्रि के जिस हारीत का उल्लेख किया है, उसे पिछली शताब्दी के सुप्रसिद्ध भारतीय विहंगविद्याविशारद जर्डेन (Jedon) ने दक्षिणी हरा कबूतर (Southern Green Pigeon) कहा था और इसे Crocopus Chlorogaster का वैज्ञानिक नाम दिया था। आजकल इसका वैज्ञानिक नाम Treron phoenicoptera Latham है।[४]

इसका आकार सामान्य कबूतर जैसा होता है। इसके सिर का उपरला भाग धूसर वर्ण का, आंख की पुतली नीली, इसके चारों ओर का हिस्सा गुलाबी होता है। चोंच का अगला हिस्सा सफेद मुड़ा हुआ और मोटा तथा पिछला हिस्सा धूसर वर्ण का होता है। टांगें नारंगी पीली तथा कुछ पक्षियों में चमकीली या हल्की पीली होती हैं। गर्दन और छाती का अगला भाग पीला, उपरले पंख पीलिमा लिए हरे रंग के होते हैं। कन्धों पर डैने (Wing) के मुड़ाव के पास नीले रंग का कुछ अंश (Lilac patch) इसकी एक प्रमुख विशेषता है। पीठ कुछ हरे धूसर रंग की तथा डैने कुछ काले-पीले तथा निचला हिस्सा पीला-हरा, मलद्वार श्वेत तथा लाल-भूरी धारियों वाला, पूछ धूसर एवं पिछले हिस्से में काली पट्टी वाली होती है और इसके बीच के पर हल्के हरे रंग के होते हैं। नर-मादा दोनों एक जैसे होते हैं।

यह पक्षी बड़े झुण्डों में फल के पेड़ों पर घने पत्तों वाली शाखाओं में रहने वाला, हरे-पीले और धूसर रंग का, मोटा, भारी बदन का कबूतर होता है। इसके शरीर का रंग वृक्ष के पत्तों जैसा हरा होने के कारण यह उनसे ऐसा मिल जाता है कि उसे बहुत निकट से भी पृथक् रूप में पहिचानना सुगम नहीं होता। खतरे के समय यह पक्षी उसकी ओर पीठ करके बैठ जाते हैं, इस समय इनके मलद्वार (Vent) के पंखों का रंग ऐसी सूखी लकड़ी जैसा प्रतीत होता है, जिस पर हल्की लाल फफूंद (Fungus) लगी हो। उपरले पंखों का हरा रंग पत्तों से तथा पिछली ओर के पंखों का रंग लकड़ी से मिलने के कारण इनको पेड़ की डालियों से और पत्तियों से पृथक् रूप में पहिचानना अत्यन्त कठिन हो जाता है। यह कठिनाई इसलिए भी बढ़ जाती है कि ये दिन के समय चुपचाप पेड़ों की डालों पर सोते रहते हैं। कूजन करने पर ही इसे कंधे के नीले तथा शरीर के हरे-पीले रंग के कारण झट पहिचाना जा सकता

४, हरियल में हरे, पीले वर्ण की प्रधानता होती है, अतएव सुश्रुत के टीकाकार डल्हण ने लिखा है—
हरितपीतवर्णः हरितास इति लोके।

है। चाँदनी रातों में इन्हें जोड़ों में पीपल, बड़ आदि पेड़ों की एक शाखा से दूसरी शाखा पर फुदकते हुए देखा जा सकता है।

यह पक्षी मुख्य रूप से फलाहारी है। अंजीर, बड़, पीपल के फल इसे बहुत प्रिय हैं। अतः इन पेड़ों पर यह अधिक संख्या में मिलते हैं। इनके आहार के विषय में एटकिन ने लिखा है कि वे पूर्ण रूप से फलों पर रहते हैं, वे इन्हें समूचा ही निगल लेते हैं क्योंकि इनकी तोतों जैसी कुतरने वाली चोंच नहीं होती। किन्तु इस कमी की क्षति-पूर्ति, इनका बड़ा चौड़ा मुखद्वार (Gape) और बहुत ही लचकीला गला कर देता है। फिर भी इस फलाहारी हरे कबूतर को आम और अमरूद से वंचित रहना पड़ता है। इस कमी की पूर्ति यह भारत के प्रत्येक जंगल में बड़ी संख्या में उगने वाले जंगली अंजीरों की जाति के अनेक प्रकार के वृक्षों से कर लेता है। "जब अंजीर वर्ग के पेड़ों में फल आता है तो यह सारा पेड़ एक ही साथ फल देता है और समूचे देहात को वैसे ही दावत देता है जैसे राजा अपनी गद्दी के उत्तराधिकारी पुत्र के उत्पन्न होने पर दावत देता है। जैसे भिक्षुक ब्राह्मण सुदूर प्रान्तों से आकर राजा के भोज में सम्मिलित होते हैं, वैसे ही फलाहारी कबूतर दूर-दूर से इस प्रकार फलने वाले पेड़ पर एकत्र होते हैं और जब तक इस पर फल रहते हैं, तब तक दिन में पहली बार सबेरे आठ बजे के लगभग और दूसरी बार शाम के चार बजे यह अपना पेट भरते हैं।"[५]

हरियल के बारे में प्रसिद्ध है कि ये कभी भूमि पर नहीं उतरते। सामान्य रूप से यह बात ठीक है और इसके कई कारण हैं। इनका मुख्य भोजन फल हैं, वे इन्हें पेड़ों पर ही मिलते हैं। अतः इन्हें भूमि पर आने की आवश्यकता ही नहीं होती। इनके पैरों की बनावट ऐसी होती है कि पेड़ों की शाखाओं पर चढ़ने में अधिक सुविधा रहती है, ज़मीन पर चलने में अच्छा नहीं जान पड़ता। अधिक चर्बी के कारण मोटे होने से यह बहुत आलसी हो जाते है, पेड़ों पर ही एक शाखा से दूसरी शाखा तक उड़ना इनके लिए बहुत सुगम है। अतः इन्हें ज़मीन पर उतरना कठिन कार्य जान पड़ता है। ये जिन फलों को खाते हैं उनमें पानी का अंश बड़ी मात्रा में होता है, अतः इन्हें पृथक् रूप से पानी पीने की आवश्यकता बहुत कम होती है। ह्विसलर ने लिखा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि ये पानी कदाचित् ही पीते हैं (पृ० ३८६)। पेड़ों पर फल मिल जाने से तथा उसी से पानी की आवश्यकता पूरी कर लेने से इसकी पूर्ति के लिए इन्हें भूमि पर उतरने की ज़रूरत नहीं होती। किन्तु फिर भी यह कहना सत्य नहीं है कि हरियल कभी भूमि पर उतरता ही नहीं, क्योंकि कई बार उसे भूतल पर देखा गया है। श्री धर्मकुमारसिंह जी ने लिखा है कि इनका घर पेड़ है, किन्तु कई बार मैंने इन्हें पानी पीने के लिए भूमि पर उतरते हुए देखा है (पृ० २३०)।

वृक्षवासी होने के कारण यह अपना घोंसला मार्च से जून तक पीपल आम आदि बड़े पेड़ों की शाखाओं में २० फीट की ऊँचाई पर सूखी लकड़ियों और छोटी टहनियों के टुकड़ों से बनाता है, यह पेड़ों की शाखाओं में ढका रहता है। आँधी आदि से शाखाओं के हिलने पर इसके अंडे घोंसले से प्रायः गिर जाते हैं। इनको सुरक्षित रखने के लिए नर-मादा इनके ऊपर बैठे रहते हैं। संकट के समय ये बड़ी वीरता प्रदर्शित करते हैं और अपने घोंसले को सामान्यतः

---

५. EHA:—Common Birds of India, P. 140

कभी नहीं छोड़ते, किन्तु अपने पंख उठाकर संकट के निवारण का पूरा प्रयत्न करते हैं। कौआ इनके अंडों का सब से बड़ा शत्रु होता है, फिर भी हरियल प्रायः उन्हीं पेड़ों पर अपना घोंसला बनाते हैं जिनमें कौआ अपना घर बनाता है, क्योंकि वे यह जानते हैं कि कौआ उस पेड़ में बने घोंसलों के अण्डों पर हमला करने वाले अन्य सभी पक्षियों को वहाँ से भगाता रहेगा। कौए से जहाँ हरियल को यह लाभ है, वहाँ यह हानि भी है कि वह इसके अण्डों को चुराने और हड़पने का पूरा प्रयत्न करता है।

ऐसे समय में हरियल अपने अण्डों-बच्चों की रक्षा कितनी वीरता से करते हैं, इसका एक सरस और विशद वर्णन ब्रिटिश राजदूत मैल्कम मैकडानल्ड ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में किया है। उसमें यह बताया गया है कि एक विशेष जाति के कौए (Tree Pie) ने किस प्रकार हरियल के दो नवजात बच्चों का दारुण वध किया।[६]

हरियल की ध्वनि गर्भाधान काल के समय बहुत मधुर और सुरीली हो जाती है और इसमें मनोरम आरोह-अवरोह होता है। इनकी प्रणय-केलि बड़ी सुन्दर होती है। घोंसला बनाने के समय नर मादा के सामने पंखों को अपने सिर पर फैलाता है, सुन्दर छाती को फुला-कर बड़ा मनोरम कूजन और कण्ठ-ध्वनि करता है और इस प्रकार उसका अनुरंजन करके उसे प्रसन्न करता है। मादा प्रायः एक बार में दो अण्डे देती है, दोनों इनकी देख-रेख करते हैं। इनके बच्चों का रंग शुरू में कुछ पीला-सा होता है किन्तु बड़ा होने पर इन में हरापन बढ़ता जाता है। इनके छोटे बच्चे सूरत-शक्ल में शिशु गृहकपोतों से गहरा साम्य रखते हैं।

हरियल के भेद :—हरा कबूतर हमारे देश के सभी भागों में बर्मा, लंका, कोचीन, चीन और स्याम में पाया जाता है। इसके विभिन्न भेदों और किस्मों में उपरली छाती के समान निचली छाती और पेट का पीला-हरा रंग रखने वाले हरियल का ऊपर वर्णन हो चुका है।

दूसरा भेद राख जैसी धूसर रंग की छाती और पेट वाले हरियल का है। यह मुख्य रूप से बंगाल में और पश्चिम में हिमालय की पर्वतमाला में यमुना नदी तक मिलता है। उत्तर पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी भारत और लंका में पाए जाने वाले इसके अन्य भेद ये हैं :—

१. नारंगी छाती वाला (Orange breasted) हरियल (Dendrophassa bicicta)—इसमें नर की छाती पर नारंगी तथा आसमानी रंग के कुछ निशान (Patches) होते हैं।

२. धूसराग्र (Grey Fronted) हरियल (Dendrophassa Pompadora)—इस में नर का अगला भाग धूसर वर्ण का तथा पीठ गहरे लाल रंग (Maroon) की होती है।

३. कोकला हरा कबूतर Sphenocercus Sphenurus (Vigors)—यह हिमालय की पर्वतमाला में ४००० फीट से ८००० फीट की ऊँचाई तक मिलता है। इस में नर की पीठ गहरी लाल तथा छाती नारंगी और गुलाबी रंग की होती है। इसका एक अन्य भेद पिन जैसे लम्बे आकार की पूँछ वाला (Pintailed) पक्षी होता है। इसकी पीठ पर गहरा लाल रंग नहीं होता तथा इसकी पूंछ के दो मध्यवर्त्ती पर बहुत लम्बे होते हैं। यह हिमालय में आसाम तथा कुमाऊं की पहाड़ियों में और बर्मा में पाया जाता है।

---

६. Malcolm Macdonald:—Birds in My Indian Garden. P. 73-75.

(४) इसका एक अन्य भेद शाही हरियल (The Green Imperial Pigeon) है। इसका वैज्ञानिक नाम Muscadivora Aenea (Linnaeus) है। यह लम्बाई में १८ इञ्च होता है। इसके नर-मादा में कोई भेद नहीं है। इसका सारा सिर, गर्दन तथा निचले हिस्से राख जैसे धूसर तथा कुछ गुलाबीपन लिए होते हैं। पीठ, कटि तथा पंखों के पार्श्वों का रंग चमकीला हरा, आंख की पुतली लाल, टाँगें बैंगनी लाल होती हैं। पेड़ों पर रहने वाले इस हरियल की आवाज़ बहुत मधुर होती है।

यह पक्षी भारत, लंका, बर्मा, मलाया, फिलिपाईन, बोर्नियो, जावा, फ्लोर्स टापू तक पाया जाता है। भारत में यह बारहमासी पक्षी है और आकार की दृष्टि से दो भेदों वाला है। (१) छोटे आकार वाला Muscudivora Aenea Pusilla है। यह लंका तथा दक्षिण भारत में २०वीं अक्षाँश रेखा तक मिलता है। मलाबार तट पर यह उत्तरी कनारा से ऊपर बहुत कम पाया जाता है (२) Muscadivora Aenea (Linn.) sylvatica—बड़े आकार का यह पक्षी आसाम में तथा नेपाल से पूर्व की हिमालय की पर्वत-माला में तथा निचले मैदानों में और घाटियों में ३००० फी० की ऊंचाई तक मिलता है।

जर्डन ने बड़े आकार वाले हरियल के एक अन्य भेद शाही कबूतर (Ducula Badia) का उल्लेख किया है। इसके पंखों का रंग काला, भूरा तथा राख जैसा धूसर होता है। यह दक्षिण-पश्चिमी भारत में मिलता है, इसका एक भेद पूर्वी हिमालय तथा आसाम में भी पाया जाता है। यह पक्षी वनों में जोड़ों में तथा तीन-चार पक्षियों के छोटे समूह में एवं आहार अधिक होने पर तीस तक के झुण्डों में रहता है। ह्विसलर (पृ० ३६१) ने लिखा है कि यह पानी पीने तक के लिए कभी ज़मीन पर नहीं उतरता। यह मुख्य रूप से प्रातःकाल और सायंकाल अपना पेट भरता है, दिन की गर्मी में छायादार पेड़ों में आराम करता है। इसका स्वभाव बहुत शर्मीला होता है।

यह बड़े फलों को समूचा निगल जाता है। जर्डन के कथनानुसार यह पक्षी बड़े समूहों में मलाबार के समुद्र तट की विस्तृत खारी दलदलों में इसलिए आता है कि यहाँ की खारी भूमि तथा ज्वार वाले प्रदेशों में उगने वाली झाड़ियों, पौधों तथा Ariceania की कलियों को खा सके। यह हरियल की अन्य जातियों की भाँति झगड़ालू नहीं होता और इसके समूहों के सब सदस्य प्रीतिपूर्वक मिलकर रहते हैं।

इसकी ध्वनि बड़ी मधुर होती है। ह्विसलर के मतानुसार यह गहरी गूंजने वाली वुह-वूह या गुर-गुर, गूम-गूम जैसी ध्वनि होती है। पक्षी विश्राम करते समय काफी देर बाद ऐसा कूजन करता है। पूरी घाटी में इसकी प्रतिध्वनि होने पर यह बड़ी मनोरम प्रतीत होती है।

शाही हरियल का गर्भाधान फरवरी से अप्रैल तक है। यह अपना घोंसला भूमि से १० से ३० फीट की ऊंचाई पर पेड़ों में तथा बाँसों में बनाता है। घोंसला बहुत भद्दा तथा कबूतर के घोंसले जैसा होता है। इसमें एक समय में एक या दो सफेद रंग के अण्डे दिए जाते हैं।

हरियल बड़ा उपयोगी पक्षी है। यह समझना ठीक नहीं है कि यह फलों के पेड़ों को हानि पहुंचाता है। इस के पुरीष में जंगल के ऐसे अनेक पेड़ों के बीज पाए जाते हैं जिन्हें अन्य पक्षी नहीं खाते। इस प्रकार यह इन पेड़ों के बीजों को दूर-दूर तक फैलाने में सहायक होता

है। आजकल बड़े पेड़ों वाले जंगल तेजी से कटने के कारण इसके विनाश का बड़ा खतरा पैदा हो गया है। ऐसे उपयोगी पक्षी की सब उपायों से रक्षा की जानी चाहिए।

हरियल के उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि मलाबार के कालीमिर्च के वनों में हरियलों के उड़ने का वर्णन सर्वथा वैज्ञानिक है। पहले यह बताया जा चुका है कि कालीमिर्च की लतायें मलाबार में बड़े पेड़ों पर चढ़ायी जाती हैं। ये लताएं अंगूरों की बेलों जैसी लगती हैं। हरियल फलों का लोभी पक्षी है। अतः उस का ऐसे स्थानों में पाया जाना सर्वथा स्वाभाविक है।

सारिका

पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थाम् ।

मेघदूत-८२

९ | सारिका

कालिदास ने सारिका या शारिका का उल्लेख अपने काव्यों और नाटकों में केवल एक बार किया है। मेघदूत में यक्ष मेघ से कहता है कि यक्षिणी उसके विरह की दुःखमय घड़ियाँ जिन कार्यों तथा मनोविनोदों में व्यतीत करती है, उनमें से एक घर में पिंजरे में बन्द सारिका से उसके विषय में प्रश्न पूछना है।[१] उसकी पत्नी जब मेघ को अलकापुरी में दिखाई देगी, उस समय या तो वह देवताओं की पूजा में व्यग्र होगी या विरह से कृश हुए मेरे शरीर का अपनी कल्पना से चित्र बना रही होगी अथवा पिंजरे में बैठी हुई, मीठी बोली बोलने वाली मैना से यह पूछती हुई मिलेगी कि हे मैना, तुम अपने जिस पति की प्यारी हो, उसे भी कभी स्मरण करती हो ?

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा,
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थां,
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति॥

मेघदूत ८५

सारिका अत्यन्त प्राचीनकाल से अपनी मधुर वाणी से मनुष्यों का मनोविनाद करती रही है। यजुर्वेद की अनेक संहिताओं में इसको पुरुष जैसी बोली बोलने वाली (पुरुषवाक्) कहा गया है। तैत्तिरीय संहिता (५।५।१२।१) में अश्वमेध के प्रकरण में इसका उल्लेख करते हुए कहा गया है—

सरस्वत्यै शारिः श्येता पुरुषवाक्।

इसी प्रकार का उल्लेख मैत्रायणी संहिता (३।१४।४) तथा वाजसनेयी संहिता (२४।३३) में भी है।[२]

---

१. अमरकोश के टीकाकार भानुजी दीक्षित (पृ० ४५१) ने सारिका या शारिका की व्युत्पत्ति हिंसार्थक शृ धातु से करते हुए कहा है—शृणाति दुःखं विरहिणामिति पक्षिभेदः। इसे सारिका इसलिए कहते हैं कि यह विरहियों का दुःख दूर करती है, इसकी मीठी बोली सुनने तथा इसके साथ बातें करने से विरहियों का समय अच्छी तरह कट जाता है। शब्दकल्पद्रुम तथा आप्टे कोश में इसकी व्युत्पत्ति गत्यर्थक सृ धातु से करते हुए कहा गया है—सरति गच्छतीति सारिका।

२. इन प्रसंगों में सारिका या मैना के लिये शारि शब्द का प्रयोग है। प्राचीन भाष्यकार उव्वट और महीधर ने सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् (वाजसनेयी संहिता २४।३३) की टीका करते हुए लिखा है—पुरुषवाक् मनुष्यवद्वादिनी शारिः शुकी। मनुष्य की तरह बोलने वाली शारि अर्थात्

मैना मनुष्य जैसी बोली बोलने के कारण प्राचीन भारत में राजप्रासादों में तथा धनी एवं सम्भ्रान्त परिवारों में पाली जाती रही है। अयोध्या के राजमहल में रामचन्द्रजी की माता कौशल्या ने एक मैना पाल रखी थी और उसे तथा तोते को यह कहना सिखाया हुआ था कि अपने शत्रु को काट ले। पिता की आज्ञा से वन में जाने पर रामचन्द्र जी को इस बात पर गहरा दु:ख होता है कि माता ने सारिका का तथा उनका एक साथ पोषण किया, फिर भी सारिका तो घर पर कौशल्या को अपने शत्रु को काट लेने के उपर्युक्त सिखाये गये वचनों को बोलकर माता को शान्ति प्रदान कर रही है और मैं अपनी जननी को कोई सुख नहीं पहुँचा सकता। अत: मुझसे तो सारिका ही अच्छी है। वे अपने इस दु:ख को व्यक्त करते हुए लक्ष्मण से कहते हैं—हे लक्ष्मण मैं यह मानता हूँ कि वह पाली हुई सारिका माता के प्रति मुझ से अधिक प्रीति रखती है क्योंकि माता द्वारा उसका यह वाक्य सुना जाता है कि हे शुक ! शत्रु के पैर को काट ले—

मन्ये प्रीतिविशिष्टा सा मत्तो लक्ष्मण सारिका ।
यत्तस्याः श्रूयते वाक्यं शुक पादमरेर्दश ।।

अयोध्या काण्ड ५३।२२

महाभारत के अनुशासन पर्व में राजा कुशिक को च्यवन ऋषि ने दिव्य प्रभाव से एक राजप्रासाद का दर्शन कराते हुए उसमें जो आश्चर्यमय स्वर्गोपम दृश्य दिखाये हैं, उनमें एक झाँकी पक्षियों की भी है और उनमें सबसे पहले मनुष्य की वाणी बोलने वाले तोतों तथा सारिकाओं का उल्लेख है—

वाणीवादाञ्छुकांश्चैव सारिकान् भृंगराजकान् ।
कोकिलांच्छतपत्रांश्च सकोयष्टिकक्कुभान् ।।

महाभारत १३।५४।११

सारिका प्राचीन काल में उच्चकुलों के घर का एक आवश्यक अंग समझी जाती थी।[3]

शुक या तोते की स्त्री । इस भ्रम का कारण सम्भवत: इस मन्त्र के अन्त में आने वाला पद 'सरस्वत्यै शुकः' है। किन्तु मैना मादा तोता नहीं है। तोता और मैना दोनों पुरुष की वाणी अनुकरण करते हुए भी सर्वथा भिन्न प्रकार के पक्षी हैं।

३. मृच्छकटिक नाटक में शूद्रक ने गणिका वसन्तसेना के विशाल गृह का वर्णन करते हुए इसके सातवें प्रकोष्ठ में विहंगवाटी (Aviary) का वर्णन किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय सम्भ्रान्त एवं समृद्ध घरों की पक्षिशालाओं में किन पक्षियों को पाला जाता था। इसमें मैना (मदनसारिका) का भी उल्लेख है। पूरा सन्दर्भ इस प्रकार है—आश्चर्यं भोः इहापि सप्तमे प्रकोष्ठे सुश्लिष्टविहंगवाटीसुखनिषण्णान्यन्योन्यचुम्बनपराणि सुखमनुभवन्ति पारावतमिथुनानि । दधिभक्तपूरितोदरो ब्राह्मण इव सूक्तं पठति पञ्जरशुकः। इयमपरा संमाननालब्धप्रसरेव गृहदासी अधिकं कुरकुरायते मदनसारिका । अनेकफलरसास्वादप्रहृष्टकण्ठा कुम्भदासीव कूजति परपुष्टा। आलम्बिता नागदन्तेषु पञ्जरपरम्पराः । योध्यन्ते लावकाः । आलाप्यन्ते कपिञ्जलाः । प्रेष्यन्ते पंजरकपोताः । इतस्ततो विविधमणिचित्रित इवायं सहर्षं नृत्यन्विकिरण-संतप्तं पक्षोत्क्षेपैर्विधुवतीव प्रसादं गृहमयूरः। इतः पिण्डीकृता इव चन्द्रपादाः पदगतिं शिक्षमाणानीव

यह कुलवधू के लिए दर्पण आदि शृंगार सामग्री के समान आवश्यक थी। भागवत पुराण (४।४।५) में यह कहा गया है कि सती ने जब शिवजी के मना करने पर भी अपने पिता दक्ष के घर की ओर प्रस्थान किया तो उनके अनुचरों ने उस समय उन्हें जो विलास और मनोविनोद की सामग्री दी, उसमें सबसे पहले मैना को गिनाया गया है—

तां सारिकाकन्दुकदर्पणाम्बुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः।
गीतायनैर्दुन्दुभिशंखवेणुभिर्वृषेन्द्रमारोप्य विटंकिता ययुः॥

भागवत पुराण ४।४।५

शब्दकल्पद्रुम में हेमचन्द्र के अभिधानचिन्तामणि, शब्दरत्नावली और राजनिघण्टु में बताये गये शारिका के १५ पर्याय दिये गये हैं।[४] इनमें पांच नाम उसके मनुष्य की वाणी बोलने की विशेषता को प्रकट करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि यह उसकी सबसे बड़ी विशेषता है और इसी कारण उसे पिंजरे में वन्द होना पड़ता है।[५]

स्फुट वाणी बोलने की विशेषता के कारण संस्कृत साहित्य में शुक के साथ सारिका का उल्लेख संस्कृत साहित्य में बहुत हुआ है। महाकवि बाण ने अध्ययन-अध्यापन के प्रसंग में शुक सारिकाओं का वर्णन कई बार किया है। कादम्बरी की भूमिका में लिखा है कि पिंजरों में वैठी हुई शुक-सारिकायें विद्यार्थियों को अशुद्ध पढ़ने पर डाँटा करती थीं।[६] वे विद्यार्थियों को स्वयं अध्ययन करवा के गुरुओं को विश्राम देती थीं। शंकरदिग्विजय में मंडन मिश्र के घर की पहिचान बताते हुए कहा गया है कि जहां शुक-सारिकायें स्वतःप्रमाण और परतःप्रमाण के सम्बन्ध में शास्त्रीय विवाद कर रही हों, उसे मंडन मिश्र का घर समझना।[७]

कामिनीनाँ पश्चात्परिभ्रमन्ति राजहंसमिथुनानि। एतेऽपरे वृद्धमहल्लका इव इतस्ततः संचरन्ति गृहसारसाः। आश्चर्यं भोः प्रसारणं कृतं गणिकया नानापक्षिसमूहैः। यत्सत्यं खलु नंदनवनमिव मे गणिकागृहं प्रतिभासते।

४. शब्दकल्पद्रुमः—तत्पर्यायाः १. पीतपादा २. गोराटी ३. गोकिराटिका इति हेमचन्द्रः ५. शारिका ६. सारी ७. शारी ८. चित्रलोचना इति शब्दावली ९. मधुरालापा १०. पूती ११. मेधाविनी १२. गोराण्टिका १३. गोकिराटी १४. गोरिका १५. कलहप्रिया इति राजनिघण्टुः। इसे गोराटी इसलिये कहते हैं कि यह मनुष्य की तरह वाणी रट लेती है। गां मनुष्यवद्वाचं रटतीति। गोकिराटिका का अर्थ है—मनुष्य की तरह वाणी बोलने-वाली तथा घूमने फिरने वाली। गाँ वाचं किरति रटतीति: गोकिरा तथा अटतीति गोकिराटिका। गोराण्टिका (१२) गोकिराटी (१३) तथा गोरिका (१४) का भी ऐसा ही अर्थ है। मधुरालापा नाम उसकी मधुर वाणी की विशेषता को प्रकट करता है। पीतपादा उसके पीले रंग के पैरों की तथा चित्रलोचना आँखों के पास आगे बतायी जाने वाली शारीरिक विशेषता को सूचित करता है। मेधाविनी उसकी बुद्धिमत्ता को द्योतित करता है।

५. पंचतन्त्र ४।४४
आत्मनो मुखदोषेण बध्यन्ते शुकसारिकाः।

६. कादम्बरी पूर्वभाग कविवंशवर्णन श्लोक १२।

७. शंकर दिग्विजय ८। ६—८।

मैनाओं की जातियां

(क) देसी मैना—आधुनिक पक्षिशास्त्रियों के अनुसार मैना का परिवार बहुत बड़ा है। इसकी एक उपजाति देसी या सामान्य मैना हमारे मकानों की छतों, घर के आंगनों, मैदानों और बगीचों में दिन भर फुदकती, चहचहाती और शोर मचाती रहती है। कीड़े खाकर तथा सांप नेवले आदि के आगमन पर जोरों से आवाज करके यह हमारा बड़ा उपकार करती है। यह बड़ी झगड़ालू है, अपने चुगने के क्षेत्र में दूसरे का हस्तक्षेप नहीं सहन करतीं और मादाओं की संख्या कम होने से नरों में इन्हें पाने के लिये उग्र संघर्ष और भयंकर कोलाहल होता है। इसीलिये संस्कृत साहित्य में इसका कलहप्रिया अर्थात झगड़ालू होने का नाम बिल्कुल ठीक है। भुनगे (Grasshopper) इसका प्रिय आहार है। इसलिए इसे सुप्रसिद्ध प्राणिशास्त्री लिनियस ने Acridotheres tristis (भुनगे का शिकार करने वाली दुःखी चिड़िया) का नाम दिया था। इस नाम का पूर्वार्द्ध तो यथार्थ है, किन्तु उत्तरार्द्ध अर्थात् दुःखी (Tristis) का विशेषण ठीक नहीं प्रतीत होता। यह सदा हमारे घरों और आँगनों की छतों में खुशी से फुदकती और लड़ती-झगड़ती रहती है। फ्लेचर ने ठीक ही लिखा है कि इसे कभी किसी ने उदास नहीं देखा। लिनियस ने शायद इसे कभी जीवित नहीं देखा और इसके संग्रहालय में सुरक्षित मृत नमूने तथा हल्के निष्प्रभ (Dull) वर्ण को देखकर ही इसे ऐसा नाम दे दिया है।[8] यह मैना मनुष्य की वाणी का अनुकरण नहीं कर सकती।

(ख) पहाड़ी मैना—कालिदास द्वारा उल्लिखित पुरुष की बोली बोल सकने वाली सारिका को साधारण रूप से पहाड़ी मैना या (Hill Myna) कहा जाता है क्योंकि यह पार्वत्य प्रदेशों में अधिक पायी जाती है। देसी मैना की तरह इसे कीड़े प्रिय नहीं है, किन्तु यह पर्वतीय वनों में फलों का आहार करना अधिक पसन्द करती है। इसका वैज्ञानिक नाम—Gracula Religiosa Linnaeus है। अँग्रेजी में इसे Grackle Myna भी कहते हैं। ग्रा ग्रा (Gra) की ध्वनि करने के कारण अंग्रेजी में इसे Grackle का नाम दिया जाता है।

यह कद में १० इंच की छोटी चिड़िया होती है। नर-मादा एक जैसे होते हैं। इसके पंखों का रंग चमकीला काला हरा और बैंगनी (Purple) होता है, डैनों (Wings) पर कुछ सफ़ेदी भी होती है। आँख की पुतली के चारों ओर का रंग भूरा होता है। चोंच

पहाड़ी मैना

नारंगी आभा लिये लाल तथा इसका सिरा पीला होता है, आंख के नीचे और पीछे चमकीले पीले रंग की नंगी खाल तथा माँस-तन्तु (Wattles) होते हैं। इसकी टाँगें पीली होती हैं। इसीलिए संस्कृत में इसे पीतपादा का नाम दिया गया है। यह पहाड़ी जंगलों में पेड़ों पर जोड़ों तथा

---
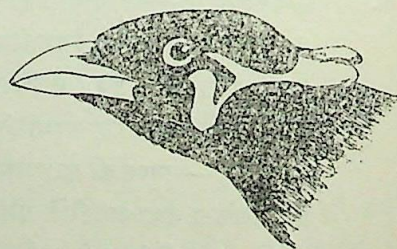
8. T. Bainbrigge Fletcher and C. M. Inglis:— Birds of An Indian Garden (1936) P. 77.

झुण्डों के रूप में मिलती है। इसके पंखों का काला रंग, पीली चोंच और टाँगें, डैने का सफ़ेद धब्बा और आंख के पीछे पीले मांस-तन्तु इसको पहिचान में बड़े सहायक होते हैं। यह प्रायः बड़े पेड़ों पर झुण्डों में खूब शोर मचाते हुए दृष्टिगोचर होती है।

यह भारत, लंका, बर्मा, मलाया, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो में पायी जाती है। यह हमारे देश का बारहमासी पक्षी है और निम्न तीन विशिष्ट प्रदेशों में उपलब्ध होता है—(१) २५०० फी. की ऊँचाई तक हिमालय की पहाड़ियों में अल्मोड़ा से आसाम तक। (२) छोटा नागपुर, उड़ीसा तथा दक्षिण-पूर्वी मध्य प्रदेश में। (३) बम्बई तक पश्चिमी घाट की पहाड़ियों में।

पहाड़ी मैना को सिर के पीछे के मांस-तन्तुओं (Wattles) के स्वरूप और आकार के आधार पर अनेक उपजातियों में बांटा जाता है। हमारे देश में इसकी प्रमुख उपजातियां निम्नलिखित हैं—(१) Gracula Religiosa Intermedia—यह जाति कुमाऊँ के पूर्व की ओर १००० से २००० फी० तक की पहाड़ियों में, पूर्वी बंगाल और आसाम में पायी जाती है। इसमें मांस-तन्तु (Wattle) गर्दन की समाप्ति पर एक चौड़े लटकने वाले मांस खण्ड (Pendant lobe) के रूप में समाप्त होता है। आँख के नीचे शुरू होने वाले मांस-तन्तु में पर बहुत कम होते हैं।

(२) Gracula Religiosa Indica—यह पश्चिमी घाटों में ५००० फी० की ऊँचाई तक तथा लंका के निचले प्रदेशों में पायी जाती है। इसका आकार छोटा तथा चोंच कुछ कमजोर होती है। इसका मांस-तन्तु छोटा तथा गर्दन के निचले सिरे (Nape) पर एक इञ्च लम्बा होता है। इसमें मांस-तन्तु के पर पहली उपजाति से अधिक तथा इसके निचले सिरे तक पहुँचने वाले होते हैं।

(३) Gracula Religiosa Peninsularis—यह सम्बलपुर और उत्तरी सरकार जिलों में गमसूर से बस्तर तक पायी जाती है। यह दूसरी उपजाति Indica से इस बात में भिन्न है कि इसमें सिर से गर्दन तक का मांस-तन्तु बिल्कुल नहीं पाया जाता। पहली उपजाति Intermedia की अपेक्षा आकार में लघु होती है, पर इसकी चोंच अधिक सुन्दर और छोटी होती हैं।

(४) Gracula Religiosa Andamanensis—यह अण्डेमान और निकोबार में बहुत पायी जाती है और कलकत्ता में बेचे जाने के लिये इसका बहुत निर्यात होता है।

(५) Gracula Religiosa Ptilogenys—इसके चेहरे में कोई मांस-तन्तु (Wattle) नहीं होते, केवल गर्दन के दोनों ओर लम्बे लटकते मांसपिण्ड (Pendant lobe) होते हैं। यह जाति लंका के पहाड़ी भाग में पायी जाती है। जंगल कट जाने से यह निचले भाग में भी पायी जाने लगी है।

ये सभी मैनायें पेड़ों पर रहना अधिक पसन्द करती हैं। पेड़ों में भी ये अधिकतर छोटे या बड़े झुण्डों में घने पेड़ों की उपरली शाखाओं पर ही बैठती हैं, निचली डालों पर वे तभी आती हैं, जब उन्हें कोई विशेष बात देखनी हो या स्थानीय घटना के विषय में अपना कुतूहल शान्त करना हो। कभी-कभी ये भूमि पर उतरती हैं, किन्तु गौरेया की तरह

---

9. Whistler :—Handbook of Indian Birds. P. 194

कूद-कूदकर चलती है। इनका प्रिय आहार फल और कीड़े हैं। सेमल (Bombax Malabaricum) तथा मन्दार (Erytbrina Indica) और Grevillia के फलों का रसपान करना इन्हें धनेश (Hornbill) तथा हरे तोतों (Green pigeon) की भाँति विशेष रूप से प्रिय है। सम्भवतः इनके मधुर रसपान से ही इनकी बोली में मिठास आती है और इसीलिये इन्हें मधुरालापा (मीठी बात करने वाली) कहा जाता है।

संस्कृत में मैना का एक नाम मेधाविनी अर्थात् बुद्धिमती भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्य पक्षियों की अपेक्षा इसमें समझ तथा बुद्धि अधिक होती है। भारतीय पक्षियों का सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले सुप्रसिद्ध विहंगवित् एटकिन ने इस विषय में अपनी एक मनोरंजक घटना का उल्लेख किया है। "एक बार मेरी खिड़की पर केनेरी (Canary) द्वीप की चिड़िया तथा मैना दो पिंजरों में बन्द थे। एक दिन एक दुष्ट कौआ आया और केनेरी चिड़िया के पिंजरे के ऊपर बैठ गया। बेवकूफ चिड़िया पिंजरे में फड़फड़ाने लगी, पिंजरे की सीखों से चिमटी और उसने कौए को वह मौका दे दिया, जिसे वह चाहता था। कौए ने अपनी शक्तिशाली चोंच में इसकी टांग पकड़ ली और उसे सीखों से बाहर खींचने की कोशिश करने लगा। केनेरी का शरीर पिंजरे से बाहर नहीं निकल सकता था, अतः कौए ने इस बेचारे की टांग खींचकर नोच डाली और यह पक्षी कुछ मिनटों में मर गया। मैं कल्पना करता हूँ कि कौए ने इसकी टांग हड़प कर डाली और थोड़ी देर बाद यह फिर वापस लौटा। अब इसका विचार मैना की टांग खाने का था। मैं उस समय कमरे में था, पर कौए ने मुझे नहीं देखा। वह स्वामित्वपूर्ण दृष्टि से कमरे का अवलोकन करते हुए मैना के पिंजरे के ऊपर जा बैठा। किन्तु मैना उस समय पिंजरे के अन्दर डण्डी पर बैठी हुई थी, वह इस स्थान को सर्वथा सुरक्षित समझती थी और उसे कोई चिन्ता नहीं थी, यहां से वह कौए पर पूरा ध्यान दे सकती थी। इसी समय उसका ध्यान एकदम अपने सिर पर पिंजरे की सीखों में से लटकते हुए कौए के बदसूरत काले पैर की ओर गया और उसने इसे अपनी तेज चोंच में ले लिया। कौए को शीघ्र ही अपनी जान बचाकर और पंजा छुड़ाकर वहां से भागना पड़ा।"[१०] केनेरी पक्षी पिंजरे में बन्द एवं सुरक्षित होते हुए भी अपने प्राण गँवा बैठा

---

१०. EHA. The Common Birds of India (3rd edition 1947) P. 116... हमारी अम्माजी बरेली में अपने घर में पाली मैना की चोर पकड़ने की चतुराई का रोचक किस्सा सुनाती हैं। एक बार सर्दियों में घर पर कुछ घी की चोरी हुई, जब चोर की ढूंढ मची और कुछ पता न चला तो मैना ने चिल्लाना शुरू किया कि चुन्नी ने घी चुराया, चुन्नी ने घी चुराया। चुन्नी घर के नौकर का नाम था। जब उससे पूछा गया तो उसने ऐसे काम से इन्कार किया। इस पर मैना चिल्लायी कि इसे धूप में खड़ा करो, इसे धूप में खड़ा करो। जब उसे धूप में खड़ा किया तो जमे हुए घी का जो अंश चोरी करके उसने अपनी पगड़ी में छिपा लिया था वह धूप में गर्मी से पिघलकर नीचे आने लगा और उसकी चोरी पकड़ी गयी।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय तथ्य है कि प्राचीन भारत में मैनायें आपसी विवादों में कई बार साक्षी रूप में उपस्थित की जाती थीं। किन्तु वर्तमान काल में जैसे पैसे के प्रलोभन से गवाहों को झूठमूठ सिखाया-पढ़ाया जाता है, वैसे ही मैनाओं को भी सब कुछ सिखाना-पढ़ाना

और मैना ने पिंजरे में बन्द होते हुए भी कौए की ऐसी खबर ली कि उसे वहाँ से भागने को विवश होना पड़ा। यह मैना की बुद्धि का ही चमत्कार था। इस घटना से स्पष्ट है कि मैनायें न केवल पुरुषों की वाणी का अनुकरण करती हैं, किन्तु उनमें मनुष्यों जैसी चतुराई और कुछ बुद्धि भी होती है, अतः उन्हें मेधाविनी कहना असत्य नहीं है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कालिदास ने मेघदूत में अलकापुरी के यक्ष के गृह में उसकी विरहिणी पत्नी का स्मरण करने वाली जिस वाचाल सारिका का उल्लेख किया है, वह हिमालय में पायी जाने वाली, वर्तमान पक्षिशास्त्रियों को पार्वत्य जाति की मैना Gracula religiosa intermedia ही होगी।

सम्भव है। अतः छठी शताब्दी में पश्चिमी भारत के राजा विष्णुषेण (५९२ ई०) के शिलालेख में प्रचलित रिवाजों का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि गालीगलौज और फौजदारी के मामलों में मैना की गवाही अदालत में प्रामाणिक नहीं मानी जायगी। (वाक्पारुष्यदण्डपारुष्ययोः साक्षित्वे सारी न ग्राह्या।) देखिये श्री वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ३१, प्रथम पादटिप्पणी)।

बलाका | १०

पावस ऋतु में जब नील नभ घने काले बादलों से आवृत हो जाता है, उस समय इनकी श्यामल पृष्ठभूमि में उड़ते हुए शुभ्र बगुलों की धवल पक्तियाँ एक मनोरम दृश्य की सृष्टि करती हैं। कालिदास ने अपने वर्षा ऋतु के काव्य मेघदूत में इनका दो बार उल्लेख किया है।

आकाश में उड़ते बगुले
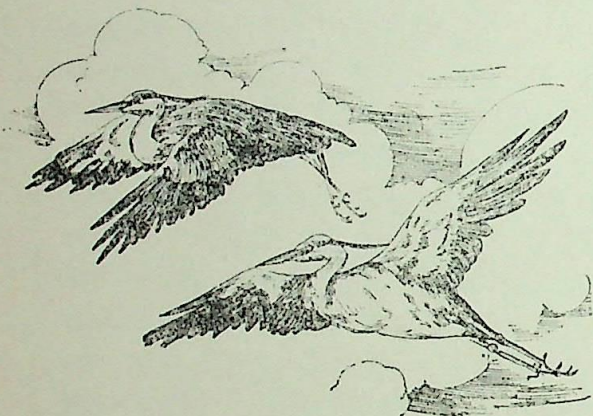
इस काव्य के आरम्भ में यक्ष मेघ को यात्रा के लिये शुभलक्षण और दृश्य बताते हुए कहता है कि अनुकूल पवन तुझे धीरे-धीरे ठीक ही ले जा रहा है, यह तेरा सम्बन्धी चातक बाईं ओर मीठा-मीठा बोल रहा है। आकाश में तुम्हारा दर्शन होते ही बलाकाओं (बगुलियों) को यह स्पष्ट हो जायेगा कि अब उनके गर्भाधान के आनन्दोत्सव का समय आ गया और वे कतार बाँधकर आँखों को सुन्दर लगने वाले तेरे पास अवश्य पहुंचेंगी :—

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः[1]
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ।।

मेघदूत ६

अन्यत्र का[लि]दास ने आकाश में उड़ने वाले सिद्धों द्वारा पंक्ति बांधकर उड़ती हुई बगुलियों की गिनती करने का संकेत किया है। "जल की बूंदों को ग्रहण करने में चतुर चातक पक्षियों को

१. इस पद के कई अर्थ और पाठान्तर हैं, मल्लिनाथ के अनुसार गर्भ का आधान हर्ष का एक उत्सव (क्षण) है, इसमें परिचय होने के कारण बगुलियां पंक्ति बांधकर उड़ रही हैं (गर्भस्याधानं तदेव क्षणः उत्सवः तस्मिन् परिचयात्)। सुमतिविजय ने क्षण का अर्थ उत्सव न मानकर थोड़ा समय किया है और इसकी व्याख्या दूसरे ढंग से करते हुए कहता है कि गर्भ ग्रहण के अवसर में क्षण-भर के लिए मेल होने के कारण (गर्भाधाने गर्भग्रहणावसरे क्षणं क्षणमात्रपरिचयः संगमस्तस्मात्) तिब्बती, सिंहली अनुवादों में तथा दक्षिणावर्तनाथ की प्रदीप टीका में इसका पाठान्तर है—

देखते हुए (तथा) पंक्तियाँ बाँधकर उड़ती हुई बगुलियों की एक-एक करके गिनती करते हुए सिद्ध लोग (तेरे) गर्जन के समय, अपनी प्रिय सहचारियों के भय से कम्पित आलिंगनों को प्राप्त करके तेरा धन्यवाद करेंगे।'' मल्लिनाथ ने इस श्लोक को प्रक्षिप्त मानते हुए भी श्लोक सं० २१-२२ में बीच में इसकी टीका की है। श्लोक इस प्रकार है—

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिंगितानि ॥

मेघदूत २१ प्र.

कुमारसंभव में भी कालिदास ने काले बादलों के साथ उजली बक पंक्ति का एक सुन्दर उपमा के रूप में प्रयोग शिव-पार्वती के विवाह के प्रसंग में किया है। शिवजी की बरात में सुनहले वर्ण वाली सप्तमातृकाओं के पीछे चलती हुई काली देवी का वर्णन करते हुए कहा गया है—सुनहले वर्णवाली उन सात माताओं के पीछे उजले खप्परों से देह को अलंकृत करके चलने वाली काली ऐसी चमक रही थी, जैसे आगे-आगे बिजली चमकाने वाली तथा बगुलियों से युक्त काले बादलों की घटा है—

तासां च पश्चात्कनकप्रभाणां
काली कपालाभरणा चकासे।
बलाकिनी नीलपयोदराजी
दूरं पुरः क्षिप्तशतह्रदेव ॥

कुमार संभव ७।३९

कालिदास के कथनानुसार बगुलों की यह उड़ान वर्षाकाल में ही देखी जाती है[२], इसकी समाप्ति पर यह सुन्दर दृश्य दीखना बन्द हो जाता है। अतः महाकवि ने शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए कहा है—''आजकल न तो बादलों में इन्द्र धनुष रह गये हैं और न ही बिजली चमकती है। न बगुलियाँ अपने पंखों की हवा से आकाश को प्रकम्पित करती हैं और न मोर मुँह उठाकर आकाश की ओर देखते हैं—

गर्भाधानक्षमपरिचयात्। इसका अर्थ होगा गर्भाधान में क्षम अर्थात् समर्थ परिचय के कारण। वल्लभदेव की पंजिका टीका में इसका पाठ है गर्भाधानस्थिरपरिचयात् अर्थात् गर्भाधान के कारण स्थिर परिचय वाली। सनातन गोस्वामी की तात्पर्यटीका, भरतमल्लिक की सुबोध टीका तथा विल्सन के संस्करण में इसका पाठ **गर्भाधानक्षमपरिचयं** है, इसका अर्थ गर्भाधान में समर्थ परिचय वाला मेघ होगा। कोई भी व्याख्या या पाठान्तर माना जाय, इसका तात्पर्य यह है कि वर्षाऋतु बगुलों का गर्भाधान काल है तथा इस समय बकदम्पती एक दूसरे को रिझाने के लिए आकाश में ऊंची उड़ान भरकर काले मेघों तक पहुँचते हैं।

२. मृच्छकटिक के पाँचवें अंक में वर्षाकाल में अनेक श्लोकों (५।८, ५।३, ५।१-९९, ५।२३, २५) में बलाका का वर्णन है। काले बादलों में श्वेत बलाका को कहीं शंख (५।२ तथा ३), तथा कहीं काले बादलों का सफेद मुकुट (५।१८) बताया गया है।

नष्टं धनुर्बलभिदो जलदोदरेषु
सौदामिनी स्फुरतिनाद्य वियत्पताका।
धुन्वन्ति पक्षपवनैर्न नभो बलाकाः
पश्यन्ति नोन्नतमुखा गगनं मयूराः ।।

ऋतुसंहार ३।१२

बलाका का अर्थ—कालिदास ने उपर्युक्त सभी श्लोकों में बलाका शब्द का प्रयोग किया है। यह शब्द स्त्रीलिंग का है। अमरकोश (२।५।२५) में इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है—बलाका बिसकण्ठिका अर्थात् बलाका एक विशेष प्रकार के बगुले की जाति है और इसका दूसरा नाम बिसकण्ठिका है। क्षीरस्वामी के मतानुसार इसे बलाका इसलिये कहते हैं कि यह बादलों को पुकारती है (बलाहकान् कायति) या बल के साथ चलती है (बलेनाकति याति वा)। बिसकण्ठिका बड़ा अर्थपूर्ण शब्द है। भानुजीदीक्षित ने इसकी व्युत्पत्ति करते हुए कहा है—'बिसवत् कण्ठोऽस्याः अर्थात् जिसका कण्ठ बिस या मृणाल की भाँति पतला और लम्बा होता है ? यह बगुले के शरीर की एक बहुत बड़ी विशेषता है।

बलाका एक विशेष प्रकार का बगुला है ; न कि सामान्य बगुला। क्योंकि अमरकोश ने सामान्य बगुले का पृथक् रूप से निर्देश करते हुए कहा है—अथ बकः कह्वः। बगले को कह्व इसलिये कहते हैं कि वह पानी में शब्द करता है (के जले ह्वयति)। संस्कृत कोशों से यह स्पष्ट नहीं होता कि बलाका किस प्रकार का बगुला है। मनुस्मृति (५।१४) में भी बक और बलाका का पृथक् परिगणन किया गया है (बकश्चैव बलाकाश्च)।

आधुनिक कोशकार और टीकाकार भी इस विषय में कोई स्पष्ट संकेत नहीं करते। मोनियर विलियम्ज के सुप्रसिद्ध संस्कृत-इंगलिश कोश में इसका अर्थ किया गया है—A kind of Crane। आप्टे कोश में भी इसका अर्थ Crane बताया गया है। किन्तु बलाका बक जाति का भेद है। इसका अर्थ मोनियर विलियम्ज ने किया है—A kind of Crane or Heron, Ardea Nivea. कोलब्रुक ने अपनी अमरकोश की व्याख्या में बलाका का अर्थ A small Crane किया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बलाका का अर्थ अधिकांश आधुनिक कोशकार Crane या Heron करते हैं।

किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से ये दोनों विभिन्न जातियों के पक्षी हैं। इनकी विभिन्नता इनके निम्नलिखित वैज्ञानिक वर्गीकरण से स्पष्ट होगी—

सारस—(Crane)	बगुला—(Heron)
Order—Gruiformes	Order—Ciconiformes
Suborder—Grues	Suborder—Ardae
Family—Gruidae	Family—Ardeidae
Subfamily—Gruinae.	Subfamily—Ardeinae.

इससे स्पष्ट है कि ये दोनों सर्वथा भिन्न जातियाँ हैं। बलाका वक जाति का भेद अर्थात् Heron ही होना चाहिए, यह Crane नहीं है।

कोशकारों के इस भ्रम का यह कारण है कि सारस (Crane) बगुला (Heron) तथा महाबक (stork) तीनों की गर्दनें बहुत लम्बी और आकार काफी बड़ा होता है तथा ये सभी अपना जीवन जलतट पर ही व्यतीत करते हैं। फिर भी इन तीनों में वैज्ञानिक जातिभेद के अतिरिक्त कुछ ऐसे सामान्य भेद हैं, जो आसानी से देखे जा सकते हैं।

बलाका
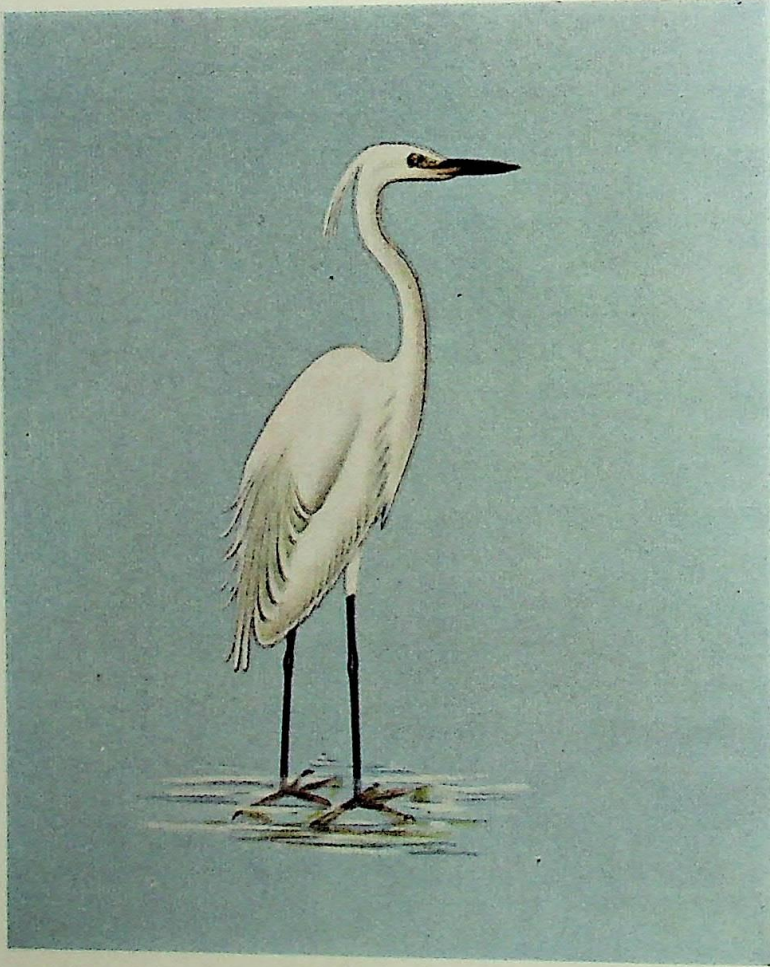
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ।

मेघदूत-९

सारस मुख्यरूप से अन्नभोजी हैं, वे अपने घोंसले भूमि पर बनाते हैं, उनके बच्चे अण्डे से निकलने के बाद ही मुर्गी के चूजों की तरह अपने पैरों पर चलने लगते हैं। किन्तु महाबक और बगले अपने घोंसले पेड़ों पर बनाते हैं, इनके बच्चे शुरू में बिलकुल असहाय होते हैं। इन्हें माता-पिता की देख रेख की अधिक आवश्यकता होती है। महाबक और बगुले में यह अन्तर होता है कि महाबक (Stork) आकार-प्रकार में बड़ा और भारी होता है, इसीलियें इसे महाबक कहते हैं, इसकी चोंच अधिक बड़ी होती है। इसकी विभिन्न जातियों का कद ३६ से ५२ इञ्च तक का होता है, जबकि बगुले को विभिन्न जातियाँ २० से ४० इञ्च तक की ही होती हैं। इन दोनों की उड़ान में भी अन्तर है। इसे स्पष्ट करते हुए एटकिन (पृ० १६४) ने लिखा है कि महाबक उड़ते समय अपनी गर्दन सीधी और कड़ी रखता है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक आदमी अपनी छड़ी पर हैट लेकर जा रहा हो, किन्तु बगुला अपनी लचकीली गर्दन को दोहरा करते हुए अपना सिर कन्धों के बीच में रखता है। हमारे देश में बगुलों (Heron or Egret) की कई जातियाँ पाई जाती हैं। कुछ बगुले बिलकुल श्वेत और शुभ्र होते हैं। आकार-भेद से इनके तीन वर्ग हैं—

(१) **गाय बगुला**—(Cattle Egret) यह आकार में सबसे छोटा २० इञ्च का होता है। बरसात के दिनों में घास चर रही गौओं तथा अन्य पशुओं के पीछे चलते हुए इसे देखा जा सकता है। यह इनके पीछे इस लिए चलता है कि इनके पाँव की ठोकर से ज्यों ही कीड़े मकोड़े घास से ऊपर उड़ते हैं तो यह इन्हें चटपट हड़प लेता है। यह मवेशियों की पीठ पर सवार हो जाता है और इन्हें परेशान करने वाले जूँ आदि कीटों को अपना आहार बनाकर उन्हें इनकी परेशानी से बचा लेता है। दिसम्बर १९०९ में पूसा में श्री सी० डब्ल्यू मेसन ने तीन गाय बगलों के पेट चीरकर उनसे १६६ कीड़े उपलब्ध किये थे, इनमें से १६० खेतों को हानि पहुँचाने वाले कीट थे[३]। खेती के शत्रु विभिन्न प्रकार के कीड़े-मकोड़ों को नष्ट करके यह न केवल कृषि को लाभ पहुँचाता है, किन्तु पशुओं को भी उन्हें सताने वाले जूं आदि कीटों से मुक्ति प्रदान करता है।
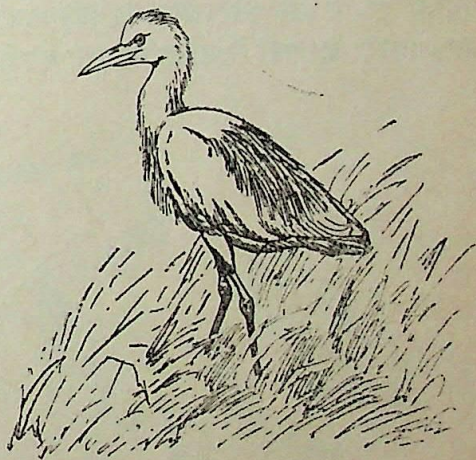
गाय बगुला

इसके पंख बिल्कुल सफेद, चोंच पीली तथा टांगें काली होती हैं, किन्तु गर्भाधान या सन्तानोत्पादन के समय वर्षा के आरम्भ में मादा के सिर, गर्दन और पीठ पर कुछ नये पर निकल आते हैं। सिर और गर्दन पर इन वैवाहिक परों (Nuptial Plumes) का रंग नारंगी तथा पीठ पर नारंगी-बादामी, हल्का गुलाबी या भूरा बादामी होता है। लाल रंग के परों के निकलने के कारण इसे सुरखिया भी कहते हैं।

---

३. T. Bainbrigge Fletcher and C. M. Inglis. Birds of an Indian Garden P. 197.

सुरखिया या गाय बगुला बड़ा सामाजिक और झुण्डों में रहने वाला पक्षी है। इसका गर्भाधानकाल उत्तरी भारत में वर्षाकाल में जुलाई से अगस्त तक तथा दक्षिण भारत में वहाँ के वर्षाकाल में दिसम्बर से मार्च तक तथा लंका में जनवरी से मई तक है।[4] वर्षाकाल का इसके गर्भाधान के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस विषय में यह कालिदास के 'गर्भाधानक्षण-परिचयात्' को अक्षरशः सिद्ध करता है। गर्भाधान के समय यह अपना घोंसला बड़े समूहों में अन्य प्रकार के बगुलों के साथ आम, इमली आदि के पेड़ों पर गाँव के तालाब के पास बनाता है और इसमें हल्के हरे या नीले रंग के तीन से पांच तक अण्डे देता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सुरखिया बगुले में कालिदास द्वारा वर्णित तीन विशेषतायें—श्वेत रंग, यूथचारिता और वर्षा ऋतु में गर्भाधान—पायी जाती हैं।

(२) करछिया (Little egret ; Egretta Garzetta Linnaeus) मँझले कद (२५ इंच) के इस बगुले के भी सब पर बिल्कुल सफेद होते हैं। सन्तानोत्पादन के समय इसके छाती के पर बड़े हो जाते हैं और सिर पर दो लम्बे पतले परों की चोटी निकल आती है और पीठ के पर भी बड़े लम्बे हो जाते हैं।

पिछली शताब्दी तक इन के खूबसूरत परों को पूर्वी देशों के राजा-महाराजा बहुमूल्य मणियों से जड़कर पगड़ियों के तुर्रों में धारण करना बड़े गौरव का चिह्न समझते थे, नील नदी के युद्ध में फ्रांस को परास्त करने के बाद ब्रिटिश सेनापति नेल्सन को मिश्र के शासक ने इस प्रकार के परों से जटित बहुमूल्य पगड़ी दी थी। योरोप में इन परों से हैट को सुसज्जित करने का फैशन था और योरोपियन ललनायें इन्हें धारण करने में गर्व अनुभव करती थीं। इसलिये इन परों की माँग बढ़ जाने से इन बगुलों को इतनी बड़ी संख्या में मारा जाने लगा कि इनके वंशनाश का भय उपस्थित हो गया। मिश्र में इस जाति के बगुले लगभग समाप्त हो गये। भारत में इनकी रक्षा के लिये विशेष कानून बनाया गया। सिन्ध में बड़े पैमाने पर इनको पालतू बनाकर इनके पर प्राप्त किये जाने लगे। अब फ़ैशन बदल जाने से इन परों की माँग घट गई है।

करछिया बगुला
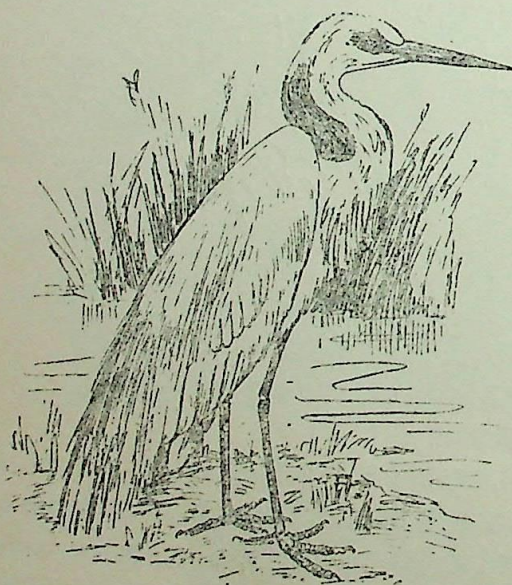
इस बगुले की आंखें पीली, चोंच और टाँगें काली होती हैं। ह्विसलर ने इसका गर्भाधानकाल उत्तर भारत में जुलाई तथा अगस्त तथा दक्षिण भारत में दिसम्बर माना है।[4]

---

4. Whisler :—Popular Handbook of Indian Birds. (4rth ed.) P. 511.

यही वर्षा के मुख्य महीने हैं। ये भी अपने घोंसले पेड़ों पर बड़े झुण्डों में बनाते हैं।

(३) **बड़ा बगुला** (Eastern Large Egret, Egretta alba modesta J.E. Grey) यह सफ़ेद बगुलों में सबसे बड़ा लगभग ४०'' इंच का होता है। इस की आंखें पीली, चेहरे की त्वचा हल्की नीली, चोंच हरी, और टाँगे काली होती हैं। गर्भाधान के समय इसकी पीठ के बाल बहुत लम्बे, पूंछ से भी बड़े हो जाते हैं। इस समय इसकी चोटी नहीं निकलती। यह प्रायः समुद्र तट पर, झीलों और तालाबों के किनारे पाया जाता है।

सफेद बगुले का एक अन्य भेद इससे कुछ छोटा होने के कारण Indian Smaller Egret या Egretta intermedia wagler कहलाता है। यह पिछले बगुले से सब बातों में मिलता है। दोनों का मुख्य भेद यह है कि गर्भाधान के समय इसकी छाती पर बाल आ जाते हैं। इसका भोजन अन्य बगुलों की भांति कीड़े, मकोड़े, मछलियाँ, मेढ़क, छिपकलियाँ और चूहे होते हैं। ये भी नदियों झीलों और तालाबों के किनारे एकाकी अथवा झुण्डों में पाये जाते हैं।

सालिम अली ने इन सभी बगुलों के गर्भाधान का समय मुख्य रूप से उत्तरभारत में जुलाई-अगस्त तथा दक्षिण में नवम्बर से फरवरी तक माना है; जो इन प्रदेशों में वर्षा के प्रमुख महीने हैं।[5]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि इन सभी बगुलों में कालिदास द्वारा वर्णित विशेषता—वर्षाऋतु में गर्भाधान; समूहों में रहना तथा उड़ना पाया जाता है। अतः प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित बलाका का महाकवि का वर्णन सर्वथा वैज्ञानिक और यथार्थ है।

---

5. Salim Ali :—The Book of Indian Birds. (6th ed. 1961) P. 103.

११ | गरुड़

साँपों को अपना आहार बनाने वाले तथा संस्कृत साहित्य में पक्षियों का राजा समझे जाने वाले गरुड़का उल्लेख कालिदास ने दो बार किया है। रघुवंश (११।२७) में कहा गया है कि विश्वामित्र के यज्ञ की इसे नष्ट करने वाले राक्षसों से रक्षा करते हुए श्री रामचन्द्रजी ने केवल इनके नेता और स्वामी मारीच तथा सुबाहु को अपने बाणों का लक्ष्य बनाया, अन्य (छोटे) राक्षसों को तीरों का शिकार नहीं बनाया। क्योंकि बड़े विषैले साँपों पर अपना पराक्रम दिखाने वाला गरुड़ छोटे निर्विष साँपों (राजिल) पर हमला नहीं किया करता—

> यत्र यावधिपती मखद्विषां,
> तौ शरव्यमकरोत्स नेतरान् ।
> किं महोरगविसर्पिविक्रमो,
> राजिलेषु गरुड़ः प्रवर्तते ।।[1]
>
> रघुवंश ११।२७

गरुड़
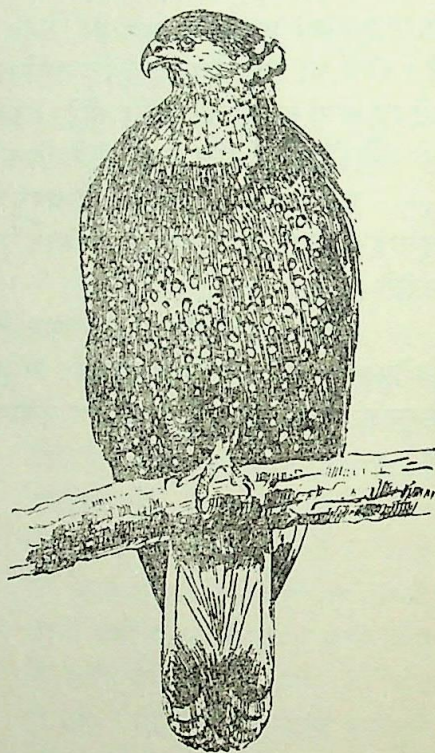
१. मल्लिनाथ ने राजिल का अर्थ अमरकोश (१।८।५) को प्रमाण देते हुए जलव्याल (पानी में रहने वाला हिंस्र प्राणी) किया है। यह ठीक नहीं प्रतीत होता। रघुवंश के अन्य टीकाकार हेमाद्रि, दिनकर मिश्र और चरित्रवर्धन ने इसका अर्थ दुंमुही निर्विष सांप माना है। हेमाद्रि ने अपने अर्थ को दो प्रमाणों से पुष्ट करते हुए कहा है—"द्विमुखो निर्विषः सर्पो राजिल इति क्षीर स्वामी। आदिपर्वणिरूरोख्याने च। अन्ये ते भुजगा विप्र ये दशन्तीह मानवान्। डुण्डुभानहिगन्धेन न त्वं हिंसितुमर्हसि" इति।१३८५ ई० में अपनी टीका लिखने वाले-धर्मांगद के पुत्र दिनकर मिश्र ने लिखा है—द्विमुखो निर्विषो सर्पो राजिलः। महोरगेषु तक्षकादिषु प्रसरणशीलो विक्रमो यस्य स गरुडो राजिलेषु डुण्डुभेषु किं प्रवर्तते ? चरित्रवर्धन का भी यही मत है। इससे श्लोक के अर्थ में चमत्कार आता है, अतः यहाँ यहीं अर्थ ठीक प्रतीत होता है। दुमुंही निर्विष सांप को राजिल कहने का कारण यह है कि इस पर रेखा या धारी होती है (राजी रेखाऽस्यास्तीति राजिलः) भानुजीदीक्षित अमर कोश १।८।५)। डुण्डुभ अनुकरण वाची शब्द है, ऐसा शब्द करने के कारण इसे डुण्डुभ कहते हैं। (डुण्डुभ इत्यनुकरण शब्दः स भणति, तेन भाति वा भानुजीदीक्षित अमरकोश१।८।५)।

संस्कृत में गरुड़ का एक नाम तार्क्ष्य भी है।[२] कालिदास ने रघुवंश में इसका उल्लेख बड़े रोचक प्रसंग में किया है। इन्दुमती के स्वयंवर में उसकी सेविका सुनन्दा मथुरा के राजा सुषेण का परिचय कराते हुए कहती है कि गरुड़ से डरकर कालिय नामक नाग ने यमुना के जल को अपना आवासस्थान बनाया और यहाँ निश्शंक भाव से रहने के लिये उसने राजा सुषेण को इतनी चमकीली मणि दी कि इसे धारण करके सुषेण कौस्तुभमणि धारण करने वाले श्रीकृष्ण को लजा रहे हैं—

त्रस्तेन[३] तार्क्ष्यात्किल कालियेन
मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः।
वक्षःस्थलव्यापिरुचं दधानः
सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णम्॥

रघुवंश ६।४६

कालिदास ने उपर्युक्त दोनों श्लोकों में गरुड़ के सर्प से संघर्ष और विरोध का वर्णन किया है। संस्कृत साहित्य में गरुड़ के २२ नामों[४] में से पांच नाम नागान्तक या भुजगान्तक (सर्पों का विनाश करने वाला) पन्नगाशन, उरगाशन तथा नागाशन अर्थात् सर्पों का भोजन करने वाला

---

२. महाभारत के आदिपर्व (२३।१२) में दी गई कथा के अनुसार गरुड़ कश्यप या तार्क्ष के पुत्र थे, इसी कारण ये तार्क्ष्य कहलाते हैं। ऋ० १।८।९३ में भी इस शब्द का उल्लेख है—स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः।

३. मल्लिनाथ के अतिरिक्त अन्य सभी टीकाकारों—हेमाद्रि, चारित्रवर्धन, वल्लभ देव, सुमतिविजय, दिनकर, मिश्र विजयगणि, धर्ममेरू आदि ने यहां त्रस्तेन (भयभीत) के स्थान पर त्रातेन (रक्षित) का पाठ माना है। यह पाठ अधिक अच्छा है, क्योंकि कालियनाग द्वारा गरुड़ से डरकर नहीं, किन्तु उससे रक्षित होने के कारण प्रसन्न होकर सुषेण को मणि देना अधिक अच्छा जान पड़ता है। सौभरि ऋषि के शाप के कारण गरुड़ कालिय के निवासस्थान यमुना में प्रवेश नहीं कर सकते थे, अतः यहां कालिय गरुड़ के प्रकोप से सुरक्षित था।

४. शब्दकल्पद्रुम में गरुड़ के २२ नामों में से उपर्युक्त पाँच नाम साँपों के भक्षण करने के सम्बन्ध में है। अन्य नामों का महत्त्व तथा व्युत्पत्ति इस प्रकार है। गरुड़—इसकी सामान्य व्युत्पत्ति है कि पंखों से उड़ने वाला (गरुद्भ्यां पक्षाभ्यां डयते उड्डयते)। महाभारत (आदिपर्व ३०।७) में कहा गया है—तपस्या में तत्पर बालखिल्य ऋषि एक विशाल वटवृक्ष की शाखा पर लटक रहे थे, इनकी रक्षा की दृष्टि से गरुड़ ने इस शाखा के भारी बोझ को अपनी चोंच में उठाकर उड़ना प्रारम्भ किया, अतः भारी (गुरु) भार लेकर उड़ने के कारण ये गरुड़ कहलाये। (३०।७ गुरुभारं समासाद्योड्डीन एष विहंगमः। गरुड़स्तु खगश्रेष्ठस्तस्मात् पन्नगभोजनः॥)। उत्तम पंखों के कारण ये गरुत्मान्, कश्यप का पुत्र होने से तार्क्ष्य, या तार्क्ष, विनता का बेटा होने से वैनतेय, पक्षियों का राजा होने से खगेश्वर, खगेन्द्र, पक्षिसिंह कहलाते हैं। विष्णु का वाहन होने से इनका नाम विष्णुरथ और हरिवाहन, अमृत लाने के कारण अमृताहरण तथा शक्तिशाली होने के कारण महावीर है।

गरुड़ की इसी विशेषता को सूचित करते हैं। कालिदास ने इसके अतिरिक्त गरुड़ की किसी विशेषता का उल्लेख नहीं किया।

गरुड़ के विषय में हमें कुछ जानकारी वैदिक साहित्य से और महाभारत से मिलती है। वैदिक साहित्य में इसके लिये महासुपर्ण (शतपथ ब्राह्मण १२।२।३।७), सुपर्ण और श्येन शब्दों का प्रयोग हुआ है। सुपर्ण का शब्दार्थ है—उत्तम पंख वाला। ऋग्वेद में इसका प्रयोग १।१६४।२०, २।४२।२, ४।२६।४१, ८।१००।८, ६।४८।३ आदि अनेक स्थलों में हुआ है। यह शिकार करने वाला बड़ा पक्षी है। इसका प्रयोग गरुड़ (Eagle) तथा गृध्र (Vulture)-दोनों पक्षियों के लिये हुआ है। मैत्रायणी संहिता (४।६।१६) तथा तैत्तिरीय आरण्यक (४।२६) में जहां इसके मुरदार मांस खाने का उल्लेख है, वहाँ यह निश्चित रूप से गीध ही है। अथर्ववेद में इसे पर्वतों में वास करने वाला बताया है (५।४।२) तथा इसकी ध्वनि का भी वर्णन किया गया है (२।३०।३)। जैमिनीय ब्राह्मण (२।४३८) में क्रुङ् पक्षी की भांति नीरक्षीर विवेक करने वाले सुपर्ण का उल्लेख है।

श्येन शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के विभिन्न स्थलों १।३२।१४ ; १।३३।२ ; १।११८।११ ; १।१६३।१ में सम्भवतः गरुड़ (Eagle) के अर्थ में हुआ है, किन्तु अथर्ववेद (३।३।४ ; ७।४१।२ ; ११।६।६) में परवर्ती साहित्य की भांति शिकरे (Hawk) बाज़ या लगर (Falcon) के लिये हुआ है। इसे पक्षियों में सबसे शीघ्रगामी (तै० सं० २।४।७।१; ५।४।११।१, षड्विंश ब्राह्मण ३.८) कहा गया है। यह पक्षियों के लिये बड़ा आतंकप्रद (ऋ० २।४२।२, अथर्व-५।२१।६, यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि) है। यह सबसे शक्तिशाली पक्षी है (एतद्वै वयसमोजिष्ठं, श० ब्रा० ३।३।४।१५) है। ऋग्वेद (४।३८।५) अनुसार यह पशुओं के रेवड़ पर आक्रमण करता है। यह सम्भवतः उकाब (Tawny Eagle) की ओर संकेत है जो चरागाह में चरती हुई भेड़ों के मेमनों पर झपट्टा मारता है और उन्हें अपने तीक्ष्ण पंजों से पकड़कर उड़ जाता है और अपने निवास-स्थान पर ले जाकर उसका भक्षण करता है (भारत के पक्षी पृ० १५०)। इसकी ऊंची उड़ान के कारण संभवतः यह कहा जाता है कि यह मनुष्यों की देखभाल करता रहता है। (अथर्व० ७।४.।२)। वैदिक साहित्य में इसे द्युलोक से सोम लाने वाला कहा गया है ६।७७।२ ।

महाभारत में इस विचार को अधिक पल्लवित और विकसित करते हुए बड़े विस्तार से यह बताया गया है कि गरुड़ अमृत के घट को किस प्रकार स्वर्ग से लाये, उनको गरुड़ और सुपर्ण क्यों कहा गया, वे पक्षियों के राजा कैसे बने और साँपों को क्यों खाने लगे (आदिपर्व अध्याय २०-३४)। कश्यप ऋषि के दो पत्नियाँ थीं—कद्रू तथा विनता। समुद्र-मन्थन के समय जब उच्चैःश्रवा घोड़े का समुद्र से प्रादुर्भाव हुआ तो इसके रंग के बारे में इन दोनों में होड़ लगी। विनता ने कहा—"इसका रंग सफेद है।" कद्रू ने कहा—"रंग सफेद होने पर भी इसकी पूंछ काली है, दासी होने की शर्त रखकर मेरे साथ बाजी लगाओ। यदि तुम्हारी बात ठीक हुई तो मैं तुम्हारी दासी बनकर रहूंगी, नहीं तो तुम्हें मेरी दासी बनकर रहना पड़ेगा (२०।४)।" यह निश्चय हुआ कि अगले दिन प्रातःकाल इसका रंग देखा जायगा। इस बीच में कद्रू ने धूर्तता और कुटिलता से जीतने के लिये अपने पुत्रों—हजार सांपों को यह आज्ञा दी कि वे काले बाल बनकर उच्चैःश्रवा की पूंछ के साथ

जा लगें ताकि अगले दिन यह पूंछ काली दिखाई दे और विनता बाजी हारकर उसकी दासी बने। नागों ने ऐसा ही किया (अध्याय २२) और विनता को हारकर दासी बनना पड़ा (२३।४)। विनता के दो पुत्र थे—गरुड़ और अरुण। गरुड़ की उत्पत्ति (अध्याय ३१) के संबन्ध में यह कहा गया है कि—एक बार कश्यप जी ने पुत्र की कामना से यज्ञ आरम्भ किया, उन्होंने इन्द्रादि देवताओं को तथा अंगूठे के मध्यभाग के समान छोटे बालखिल्य ऋषियों को समिधायें लाने का कार्य सौंपा। इन्द्र जब अपने बल के अनुरूप लकड़ी का पहाड़ जैसा बोझा उठाकर ला रहे थे तो उन्होंने मार्ग में सब बालखिल्यों को मिलकर ढाक की छोटी टहनी उठाकर लाते हुए देखा। इस पर वे उनकी खिल्ली उड़ाते हुए आगे बढ़ गये। इससे क्रुद्ध होकर बालखिल्य ऋषियों ने दूसरा इन्द्र बनाने के लिये उग्र तपस्या और यज्ञ किया। इन्द्र घबड़ाकर कश्यप की शरण में गया, कश्यप ने बालखिल्य ऋषियों को समझाया कि ब्रह्मा द्वारा की गयी इन्द्र की व्यवस्था को तोड़ना ठीक नहीं है और आपका संकल्प भी मिथ्या नहीं होना चाहिये, अतः आप इससे पक्षियों का राजा उत्पन्न करें। बालखिल्य इस अनुरोध को मान गये और उन्होंने कश्यप को कहा कि आपका ऐसा शक्तिशाली पुत्र हो। इसके अनुसार विनता का महातेजस्वी पुत्र गरुड़ उत्पन्न हुआ और उसे पक्षियों का राजा या इन्द्र बनाया गया (आदिपर्व ३१।५)।

गरुड़ अपनी माता के दासीपन और कद्रू तथा सर्पों की धूर्तता से बहुत खिन्न थे। उन्होंने साँपों से पूछा कि मेरी माता दास्यभाव से किस प्रकार मुक्त हो सकती है। नागों ने कहा कि तुम पराक्रम करके अमृत हमारे लिये ला दोगे तो तुम्हें दास्यभाव से मुक्ति मिल जायगी (आदिपर्व २७।१६)। गरुड़ को देवताओं द्वारा रक्षित अमृतघट को लाने में भीषण युद्ध करना पड़ा (अध्याय ३२)। वे देवताओं को पराजित करके जब अमृत ला रहे थे तो मार्ग में विष्णु ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान मांगने को कहा और गरुड़ ने यह वर मांगा कि मैं आपके ऊपर ध्वज में स्थापित होऊँ, अमर बनूं तथा आपका वाहन बनूं (३३।१३-१६)। इन्द्र ने अपने वज्र-प्रहार द्वारा गरुड़ से अमृत छीनना चाहा, किन्तु दोनों में मैत्री होने पर यह समझौता हुआ कि गरुड़ किसी को भी अमृत नहीं पीने देंगे और अपनी माता को दासता से मुक्त करने के लिए इसके घड़े को सांपों के पास ले जाकर अवश्य रखेंगे किन्तु उसी समय इन्द्र को यह घड़ा वहां से उठा ले जाना चाहिये। (३४।६-१०)। मां को दासी बनाने वाले सांपों की धूर्तता और कपट का स्मरण करके गरुड़ ने इन्द्र से यह वर माँगा कि महाबली सर्प मेरा भोजन बनें (आदि पर्व ३४।१३, भवेयुर्भुजगाः शक्र मम भक्ष्याः महाबलाः)। इसके बाद गरुड़ ने सांपों के पास जाकर कहा कि मैं तुम्हारे लिये अमृत ले आया हूँ, इसे कुशा (घास) पर रखता हूँ, तुम स्नान करके इसका पान करो और मेरी माता दासीपन से मुक्त हुई (३४।१७-१९)। सापों के स्नान के लिये जाने पर इन्द्र अमृत को हरकर पुनः स्वर्ग लोक ले गये (३४।२०)।

महाभारत और कालिदास दोनों के वर्णन में गरुड़ की प्रधान विशेषता सांपों का भक्षण करना है। इस प्रकार की विशेषता वाले निम्नलिखित पक्षी भारत में मिलते हैं—

साँपमार—(Short toed Eagle, Circaetus gallicus Gmelin)—यह आकार में चील (Pariah Kite) से कुछ बड़ा होता है। इसका रूप रंग-शिकरे से मिलता है। इसकी टांगें लम्बी तथा इसका निचला हिस्सा पंख रहित, सिर बड़ा, चोंच खूब मुड़ी हुई, पंजे छोटे होते हैं। इसी विशेषता के कारण अंग्रेजी में इसे छोटे पंजे वाले (Short toed) का विशेषण दिया जाता है।

इसकी आंखे बड़ी तथा रंग में अवस्था के अनुसार बदलती रहती हैं। ये बचपन में भूरी, जवानी में सुनहरी-पीली से हरी पीली तथा बुढ़ापे में नारंगी वर्ण की हो जाती हैं। कुछ पक्षियों का माथा और सिर सफेद होता है। उपरले हिस्से का रंग धूसर (Grey) भूरा होता है. निचला हिस्सा छाती पर सफेद होता है और इस पर भूरे-धूसर वर्ण की रेखायें (Streaks) होती हैं। ये दूर से धूसर (Grey) धब्बे की तरह दिखाई देती हैं। पूंछ पर चौड़ी धारियां होती हैं। नर-मादा एक जैसे होते हैं। मादा नर से बड़ी होती है।

उड़ते समय इसकी उड़ान बड़ी सुन्दर होती है, नीचे से इसके डैने सफेद और धारीदार दिखाई देते हैं। यह प्राय: पूंछ फैलाकर पंख फड़फड़ाते हुए शिकार के लिये बहुत ऊंचाई पर इसका निरीक्षण करते हुए एक ही स्थान पर मंडराता रहता है।

भारत में यह आसाम के अतिरिक्त अन्य सभी स्थानों में पर्वतीय और खुले मैदानी प्रदेशों में मिलता है। इसे ऐसे स्थान विशेष रूप से पसन्द हैं जहां कंटीली झाड़ियां, पेड़, सूखी पहाड़ियाँ तथा घास के खुले मैदान हों। यह भारत में बारह मास रहने वाला पक्षी है।

इसकी आवाज़ ऊंची और तीखी होती है। सन्तानोत्पादन के समय यह Pieeou-Pieeou की दीन ध्वनि करता है और प्रिया को प्रसन्न करने के उद्देश्य से अनुरंजन के लिये हवा में कई प्रकार की कलाबाजियाँ खाता है और झपट्टा मारने के विविध प्रदर्शन करता है। इसका सन्तानोत्पादन काल दिसंबर से मई तक है। यह प्राय: जंगलों में अकेले पेड़ों पर भद्दा घोंसला बनाता है, सफेद या थोड़ी नीलिमा लिये सफेद रंग का एक चौड़ा अण्डा देता है।

इसका भोजन मुख्यरूप से साँप और छिपकलियाँ हैं, छोटे पक्षी और कुतरने वाले चूहे (Rodents) आदि को अपना आहार बनाता है। इसकी आदत है कि यह दिन में अधिक गर्मी के समय तथा सायंकाल शिकार करता है. इसका अधिकाँश शिकार भूमि पर या कंटीली झाड़ियों में होता है। पंख रहित नंगी टाँगों के कारण इसे कंटीली झाड़ियों में से अपना शिकार पकड़ने में बड़ी सुविधा होती है। शिकार के समय यह आसमान में बहुत ऊंचाई पर मंडराता रहता है और ज्यों ही कोई छिपकली या सांप झाड़ी की टहनियों के ऊपर दिखाई देता है तो यह फौरन नीचे झपटकर उसे पकड़ लेता है। किन्तु यह प्राय: निर्विष साँपों को ही मारता है। यह बहुत भीरू होता है, बड़े पक्षियों और साँपों को हानि नहीं पहुंचाता। खेती का विनाश करने वाले जन्तुओं का भक्षण करने के कारण यह बड़ा उपयोगी पक्षी है।

डोगरा चील या चोटीदार साँपमार (Indian Serpent Eagle, Spilornis Cheela Latham)—यह चील से कुछ बड़ा लम्बाई में २८ इंच का होता है। नर-मादा दोनों एक जैसे होते हैं। इसकी बड़ी विशेषता सिर पर एक छोटी चोटी या कलगी होती है, इसीलिये इसे कलगी वाला या चोटीदार सर्प भक्षी गरुड़ (The Crested Serpent Eagle) भी कहते हैं। इसकी चोटी के परों का निचला आधा हिस्सा श्वेत होता है तथा उपरला आधा भाग गहरा भूरा तथा हल्की बैंगनी चमक लिये होता है, कुछ परों के सिरे सफेद होते हैं। यह चोटी सामान्यत: नीचे गर्दन पर पड़ी रहती है, जब यह खड़ी होती है तो पंखे के आकार जैसी प्रतीत होती है। इसके उपरले हिस्से के परों का रंग काला भूरा होता है, इसमें कलगी के परों का रंग-सफेद भाग खूब चमकता है। निचला हिस्सा ईंट जैसे लाल रंग का होता है और इस

पर सफेद रंग के पूरे या आधे वलय (Rings) या मेचक होते हैं। इसकी पूंछ का मध्य भाग सफेद धारी वाला तथा ऊपर और नीचे के भाग काले भूरे रंग के होते हैं।

इसकी आँखें सुनहरी पीली, चोंच मोटी, ऊपर से मुड़ी हुई तथा काली और टाँगें पीले रंग की तथा परों से रहित होती हैं। आँख के चारों ओर की त्वचा नंगी तथा पीले रंग की होती है। यह दूर से ही दिखाई देती है।

यह पक्षी उड़ते हुए अपनी कई विशेषताओं के कारण झट पहचाना जाता है। इसकी कलगी के सफेद और काले भूरे रंग, पूंछ का सफेद भाग तथा निचले हिस्से के सफेद वलय दूर से दिखाई देते हैं। उड़ते समय इसके निचले हिस्से पर हाकी के या L के आकार के बड़ी सफेद पट्टी स्पष्ट दिखाई देती है। उड़ते हुए यह ३-४ पदों की केक-केक-केक-की (kek-kek-kek keee) की तीखी और ऊंची ध्वनि करता है।[५] इससे इसका पहचानना और भी आसान हो जाता है। ये पक्षी जोड़ों में उड़ते हुए एक दूसरे को पुकारते रहते हैं।

यह भारत के सभी हिस्सों में और हिमालय में ७००० फी० की ऊंचाई तक पाया जाता है। यह भारत में बारह मास रहने वाला पक्षी है। इसका प्रिय स्थान नदियों के निकटवर्ती मैदानों और पहाड़ों के घने ज़ंगल हैं। यह घने पत्तों वाले हरे पेड़ों में रहना अधिक पसन्द करता है। इसीलिए यह पानी के पास वाले नीम के पेड़ों पर बैठता है। इन पक्षियों का गर्भाधान काल दिसम्बर से मार्च तक है। ये अपना घोंसला नदियों के निकट जंगलों में बड़े ऊंचे पेड़ों पर बनाते हैं और पीले सफेद रंग का एक अण्डा देते हैं।

इसका भोजन मेंढक, छिपकलियाँ, चूहे और साँप हैं। शिकार के लिये यह एक ऐसे बहुत ऊंचे पेड़ की शाखा पर बैठ जाता है, जहाँ से दूर तक का सारा प्रदेश स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो। शिकार दिखते ही यह उस पर झपट्टा मारता है।

श्री धर्मकुमारसिंहजी के शब्दों में इसकी एक बड़ी विशेषता सब प्रकार के साँपों का भोजन अधिक पसन्द करना है।[६] यह बड़ा साहसी पक्षी है। इसका वर्णन करते हुए श्री धर्मकुमारसिंहजी ने लिखा है कि—उन्होंने इसे एक बार गीर के जंगल में भेड़िये तक को डसने वाले काले साँप (Wolf-snake) को पकड़ते हुए देखा। पक्षी ने अपनी कलगी उठायी, डैनां और पूंछ के पंख फैलाये, सांप को पंजे से पकड़ा तथा गर्दन पर एक या दो फुर्तीले चंचु-प्रहारों से इसे अधमरा कर दिया तथा कुछ समय के बाद जमीन पर इसका भक्षण आरम्भ कर दिया।

चोटीदार साँपमार बड़ा निर्भीक होता है। श्री ह्विसलर ने लिखा है कि एक बार जब इसने अपने पंजों में साँप को पकड़ा हुआ था तो यह उनके पास एक दो गज़ की बहुत कम दूरी

---

५. Salim Ali:—The Book of Indian Birds 6th Ed p. 69. ह्विसलर (Popular Handbook of Indian Birds P. 365-6) के मतानुसार यह ध्वनि Kuk-Kuk Queeear-Queeear Queeear से मिलती है। इनमें से पहले दो पद छोटे तथा पास से सुने जाने वाले होते हैं, पिछले पद दूर से भी सुने जा सकते हैं।

६. Dharmakumarsinghji :—Birds of Saurashtra P. 25.

रह जाने पर भी डरकर नहीं उड़ा और साँप को खाता रहा।[७] इस पक्षी में कालिदास द्वारा वर्णित "महोरगविसर्पिविक्रमः" की विशेषता पायी जाती है। अतः इसे महाकवि का गरुड़ मानना चाहिये।

७. Whisleer:—Popular Handbook of Indian Birds. P. 366.

१२ | श्येन

वैदिक युग से श्येन को भारतीय पक्षियों में वड़ा गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है । वैदिक संहिताओं में इसका उल्लेख अनेक बार हुआ है।[१] ऋ० १।११८।१ में श्येन के प्रवल वेग (आ श्येनस्य जवसा नूतनेन) का वर्णन है। ऋ० २।४२।२ में श्येन अथवा सुपर्ण से हिंसित न होने की प्रार्थना है। अथर्व ५।२१।६ में कहा गया है कि श्येन से सब पक्षी भयभीत रहते हैं।[२] वह सब मनुष्यों पर दृष्टि रखता हैं।[३] ऋ० ४।३८।५ में पशुओं के रेवड़ पर श्येन के झपट्टा मारने का वर्णन है।[४] शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि यह पक्षियों में सबसे अधिक ओजस्वी तथा बलशाली है । ताण्ड्य ब्राह्मण (१६।१०।१४) के अनुसार वह पक्षियों में सबसे अधिक तेज गति वाला, (आशिष्ठः), षड्विंश के मतानुसार यह सबसे अधिक झपट्टा मारने वाला (क्षेपिष्ठः) तथा तैत्तिरीय संहिता (६।४।११।१) के अनुसार सबसे अधिक प्रतिष्ठा वाला पक्षी है।[५]

श्येन

कालिदास ने श्येन का वर्णन रघुवंश और कुमारसंभव के युद्धविषयक प्रसंगों में किया

---
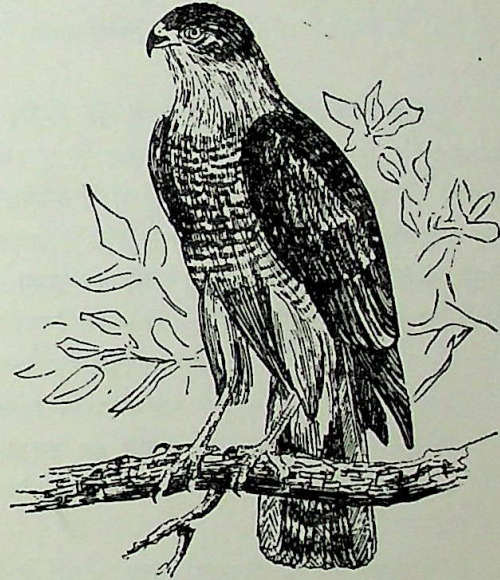
१. ऋ० १।३३।२, १।११८।१, १।१६३।१, १।१६५।२, २।४२२, अथर्ववेद ५।२१।६, ७।४१।२

२. अथर्व ५।२१।६ यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा ।

३. अथर्व ७।४१।२ श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपात् शतयोनिर्वयोधा : ।

४. ऋ० ४।३८।५ उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनुक्रोशन्ति क्षितयो भरेषु । नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ।। सायण भाष्य—श्येनं पक्षिणं दृष्ट्वा यथा पक्षिणः पलायन्ते तद्वत् । श्रवः अन्नं कीर्तिं वा पशुमत् यूथं च अच्छ अभिलक्ष्य गच्छन्तमेनमनुक्रोशन्ति ।

५. शत० ब्रा० ३।३।४।१५, एतद् वै वयसामोजिष्ठं बलिष्ठं यच्छ्येनः । ताण्ड्य ब्रा० १३।१०।१४, स हि वयसामाशिष्टः । षड्विंश ब्राह्मण ६।८ श्येनो वै वयसां क्षेपिष्ठः । तै० सं० ५।४।११।१ श्येनो वै वयसां प्रतिष्ठा ।।

है। रघुवंश में अज-इन्दुमती के विवाह के बाद अज के विरोधी राजाओं के साथ होने वाले भीषण युद्ध का सजीव चित्र खींचते हुए कालिदास ने कहा है कि जहाँ हाथियों का युद्ध हो रहा था, वहां पैने छुरेवाले चक्रों से हाथी पर सवार जिन योद्धाओं के सिर कट रहे थे, वे भूमि पर बहुत देर से गिरते थे, क्योंकि इनके बाल वहाँ (उड़ने वाले) श्येन पक्षियों के नखों से उलझने के कारण काफ़ी समय तक ऊपर ही टंगे रहते थे—

आधोरणानां गजसन्निपाते
शिरांसि चक्रैर्निशितैः क्षुराग्रैः।
हतान्यपि[६] श्येननखाग्रकोटि-
व्यासक्तकेशानि चिरेण पेतुः ॥

रघुवंश ७।४६

एक दूसरे स्थल (११।६०) में श्री रामचन्द्र जी द्वारा शिवधनुष का भंग करने तथा जनक-पुत्री के साथ विवाह के बाद परशुराम के आविर्भाव के समय प्रकृति में अनिष्ट और उत्पात की सूचना देने वाले अपशकुनों में प्रसंगवश श्येन के रंग का उल्लेख किया गया है। जैसे रूखे एवं मैले बालों वाली तथा रक्त से लाल कपड़ों वाली रजस्वला स्त्री देखने योग्य नहीं होती, इसी प्रकार श्येन पक्षी के पंखों के कारण मटमैली, सायंकालीन बादलों के लाल कपड़ों वाली, धूल से भरी हुई दिशायें उस समय देखने योग्य नहीं थीं—

श्येनपक्षपरिधूसरालकाः
सांध्यमेघरुधिरार्द्रवाससः।
अंगना इव रजस्वला दिशो,
नो बभूवुरवलोकनक्षमाः ॥

रघुवंश ११।६०

कुमारसंभव में देवताओं तथा दैत्यों के संग्राम का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय धनुर्धारी सैनिकों ने इतने बाण छोड़े कि आकाश की छाती छलनी हो गयी, वह पीड़ा से व्याकुल और विह्वल होकर श्येन पक्षी की आवाज के बहाने से कर्कश और कठोर ध्वनि में रोने लगा—

विभिन्नं धन्विनां बाणैर्व्यथार्त्तमिव विह्वलम्।
रराास विरसं व्योम श्येनप्रतिरवच्छलात् ॥

कुमारसंभव १६।१२

इसी देवासुर संग्राम का चित्र खींचते हुए आगे यह कहा गया है कि अर्धचन्द्राकार बाणों से काटे हुए बड़े योद्धाओं के सिरों को पांवों से पकड़ते हुए श्येन पक्षी आकाश में भर गये---

---

६. इसमें हतानि के स्थान पर हृतानि का भी पाठान्तर है। देखिये मल्लिनाथ हृतानि (च्छिन्नान्यपि)। चारित्रवर्धन इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए कहता है कि कटे सिर भूमि पर गिरने से पहले ही श्येनों द्वारा पकड़ लिये जाते हैं (कृन्तानि मस्तकानि यावद् भूमौ निपतन्ति तावत्प्रथमत एवं श्यैनैर्गृहीतानीत्यर्थः।)

शिरांसि वरयोधानामर्धचन्द्राहृतान्यलम् ।
आददाना भृशं पादैः श्येना व्यानशिरे नभः ।।

कुमारसंभव १६।२८

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि कालिदास ने श्येन पक्षी में निम्नलिखित विशेषतायें मानी हैं।

(१) ये युद्धभूमि में उड़ते हैं।

(२) इनके पंखों का रंग धूसर होता है।

(३) इनकी आवाज बड़ी कर्कश होती है।

(४) ये बाणों से काटे हुए सिरों को पंजों से पकड़कर आसमान में उड़ते हैं (कुमार संभव १६।२८)।

ये सब विशेषतायें श्येन में कहाँ तक मिलती हैं, इसके लिये श्येन की विभिन्न उपजातियों का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

श्येन की उपजातियाँ—आजकल श्येन को सामान्यतः बाज (Fa'con) या शिकरा (Hawk) समझा जाता है और इसकी कुछ प्रसिद्ध उपजातियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) **लगर**—भारत में श्येन या बाज की सबसे प्रसिद्ध उपजाति लगर (The Laggar falcon) है। इसमें नर १६ इंच का तथा मादा उससे बड़ी (१८ इंच) और शिकार करने में अधिक चतुर होती है। वस्तुतः मादा का ही नाम लगर है, नर को जुर्रा कहते हैं। इसके उपरले पंखों का रंग राख जैसा और भूरा, छाती का हिस्सा सफेद और पेट पर भूरी चित्तियां होती हैं। इसकी एक बड़ी विशेषता आँख से नीचे की ओर सफेद पृष्ठ-भूमि में चमकने वाली भूरे रंग की ऊपर से नीचे की ओर जाने वाली मूंछ जैसी धारियां होती हैं। इसकी आंख की-पुतली भूरी, चोंच नीली, इसका अगला भाग काला, टांगें पीली, पंजे के नाखून काले होते हैं। इसे खुला प्रदेश, खेत और बस्तियां पसन्द हैं। यह आर्द्र जलवायु तथा घने पेड़ों वाले जंगलों में नहीं मिलता।

यह प्रायः जोड़ों में पाया जाता है। पति-पत्नी आजीवन इकट्ठा रहते हैं और शिकार में एक दूसरे की सहायता करते हैं। शिकार के समय दोनों में से एक जमीन के साथ उड़ता है तथा दूसरा ऊँचाई से झपट्टा मारता है, अपनी प्रबल गति और वेग से ये शिकार को ऐसा घेरते हैं कि वह इनसे बचकर नहीं निकल सकता। इसका मुख्य आहार कबूतर है[७], इसके साथ ही वह

७. Salim Ali :—The Book of Indian Birds (6th ed.) P. 66.
महाभारत में (वनपर्व अध्याय १३१) उशीनर की कथा में श्येन का स्वाभाविक आहार कपोत माना गया है। इन्द्र और अग्नि श्येन और कपोत का रूप धारण करके राजा की परीक्षा के लिये आते हैं। बाज द्वारा शिकार के लिये पीछा किया जाने पर कबूतर उशीनर की शरण में आता है। इस पर श्येन राजा से कहता है कि वह इसे आहार के लिये उसे दे दे क्योंकि भगवान् ने उसका स्वाभाविक भक्ष्य इसी को बनाया है—

यस्तु मे देवविहितो भक्षः क्षत्रियपुंगव।
तमुत्सृज महीपाल कपोतमिममेव च ।।
श्येनः कपोतानत्तीति स्थितिरेषा सनातनी।

वनपर्व १३१। १९-२०

शहरी क्षेत्रों में चूहे, छिपकलो, टिड्डी—ग्रादि भी खाता है। यह फाख्ता, तोते, बगुले (Egrets), बटेर ग्रादि का भी शिकार करके ग्रपना ग्राहार बनाता है।[८] इसके शिकार का समय सूर्योदय के बाद है।

पुराने जमाने में शिकार के लिये इसे पालने का बहुत शौक था। प्राचीन भारत में इस विषय से श्यैनिकशास्त्र का विकास हुग्रा था। मध्ययुग में राजाग्रों ग्रौर रईसों में इस पालने का बड़ा चाव था। ग्रबुलफ़जल ने ग्राइने ग्रकबरी ने इसका विस्तार से वर्णन किया है। इसे पालने का मुख्य प्रयोजन यह था कि इसकी सहायता से स्वादिष्ट मांस वाली बत्तखों—तीतर (Partridge), खर (Florican) ग्रादि पक्षियों का शिकार ग्रासानी से किया जा सके। दूसरे के स्वार्थ के लिये यह कार्य करने वाले बाज़ पर व्यंग्य करते हुए बिहारी ने लिखा है—

स्वारथ, सुकृत न, श्रम वृथा देख विहंग विचार।
बाज ! पराये पानि पर, तू पच्छी हू न मार॥

(२) **सकेर**—(Saker Falcon or Cherrug) यह बाज़ लगर से बहुत मिलता है, इसका उपरला हिस्सा भूरा तथा निचला सफेद ग्रौर भूरी चित्तियों वाला होता है। इसे मरुस्थल प्रिय है, यह हमारे देश में सर्दियों में ही ग्राता है। इसकी उड़ान लगर के समान बहुत तेज होती है तथा इसे बड़े पक्षियों का शिकार करने के लिये बड़ी सफलता के साथ सधाया जाता है। भारतीय बाज़ पालने वाले तूक़दार (Bustard), चील, उल्लू, खरगोश[९] तथा चिन्कारा का शिकार करने के लिये इसे जोड़ों में कुत्तों के साथ प्रशिक्षित करते हैं। प्राय: यह ग्रपने शिकार के सिर या गर्दन पर प्रहार करके उसे उस समय तक रोके रखता है, जब तक कुत्ते उसे पकड़ने के लिये न ग्रा जाएँ।[१०]

(३) **बहरी** (Peregrine Falcon)—समुद्र के पास पाये जाने के कारण इस बाज़ को बहरी कहा जाता है। ग्रमेरिका में इसे (Duck-Hawk) कहते हैं क्योंकि यह बतखों का शिकार बहुत करता है। ग्रंग्रेजी में इसे (Peregrine) कहा जाता है, इसका ग्रर्थ है यात्री। यह इसका बड़ा सार्थक नाम है क्योंकि यह प्रवासी पक्षी बहुत लम्बी यात्रा करता है। यह ग्रपने प्रबल वेग तथा उड़ते हुए पक्षियों को हवा में मारने के लिये बहुत प्रसिद्ध है।

यह ग्राकार में कौए से बहुत बड़ा होता है। इसका सिर तथा उपरला भाग काला,

---

किन्तु राजा शरणागत कपोत को न देकर, उसके बदले में उसके बराबर ग्रपने शरीर में से माँस काटकर श्येन की सन्तुष्टि करते हैं।

८. Dharmakumarsinghji :—Birds of Saurashtra P. 60.
मालती माधव (८।८) नाटक में बाज द्वारा जंगली बटेर के शिकार का सुन्दर वर्णन करते हुए कहा गया है—
श्येनावपातचकिता वनवर्तिकेव।

९. संस्कृत में श्येन का एक नाम शशादन या खरगोश खाने वाला है (शशमत्तीति शशादनः)। ग्रमरकोश (२।५।१४-१५) में इसके तीन पर्याय गिनाते हुए कहा गया है—ग्रथ शशादनः पत्री श्येनः। पत्री का ग्रर्थ है, ग्रच्छे पंखों वाला (ग्रतिशयितं प्रशस्तं पत्रमस्य)। श्येन शब्द गतिवाची श्यैङ् धातु से बनता है ग्रौर इसका ग्रर्थ है उत्तम गति वाला।

१०. Dharmakumarsinghji :—Birds of Saurashtra P. 61.

स्लेटी तथा राख के रंग का, ठोड़ी से नीचे पेट तक का भाग सफ़ेद एवं गहरी बादामी-गुलाबी चित्तियों वाला, आँख काली तथा छोटी, चोंच मुड़ी हुई तथा आगे से काली, टांगें छोटी और पीली, पैर बड़ा, उँगलियां लम्बी और नाखून तेज मुड़े हुए तथा काले रंग के होते हैं। नर मादा से छोटा, आकार में उसका दो तिहाई होता है।

इस पक्षी का आगमन हमारे देश में दशहरे के आस-पास अक्टूबर में यूरोप, उत्तरी साइबेरिया और मध्य एशिया से होता है। यह समुद्र तट के पास, झीलों और नदियों के किनारे ऐसी स्थिति में मिलता है जहाँ इसे जलचर पक्षी, बटेर (Quails) और कबूतर खाने के लिए सुलभता से प्राप्त हों। इसकी उड़ान बहुत तेज तथा भूमि या समुद्र की सतह के साथ होती है। इसके शिकार का समय उषाकाल से पहले और बाद में, तथा दोपहर के ढाई बजे से सूर्यास्त तक होता है। यदि उसे प्रातःकाल शिकार मिल जाए तो वह अगले दिन सवेरे तक समुद्री चट्टानों तथा नदी-तटों पर विश्राम करता है। वह विभिन्न प्रकार के जलचर पक्षी खाता है। इसकी आवाज़ बड़ी कर्कश—केह्-केह्-केह्-केह् जैसी होती है।[११] लड़ते समय यह कीक-कीक-कीक-कीक की ध्वनि करते हैं। तीव्र गति और साहस के कारण बहरी को शिकार के लिये पालने पर बड़ा महत्त्व दिया जाता है। यह पूर्वी सारस (Eastern Common Crane) जैसे बड़े पक्षियों को भी पकड़ लेता है। इससे पीछा किया जाने पर बतखें पानी में कूद जाती हैं और उस समय तक पानी में डूबी रहती हैं, जब तक बहरी उन पर मंडराता रहे। अपनी तेज उड़ान के लिये प्रसिद्ध यह पक्षी तेज से तेज गतिवाले पक्षियों को भी दो प्रकार से पकड़ता है—या तो अपनी तीव्र गति से वह उन्हें पीछे से आकर पकड़ता है या उन पर ऊपर से झपट्टा मारता है।

(४) **शाहीन** (Shahin falcon)—यह बहरी का लघु रूप है, कौए के बराबर होता है। इसका सिर और गर्दन काली, उपरले पंख गहरे काले स्लेटी रंग के, छाती और पेट लाल भूरी चित्तीवाले, आंख काली, टांगें और पैर पीले होते हैं। इसे पहाड़ और जंगल अधिक पसन्द हैं।[१२] पहाड़ी चट्टानें और किले इसका प्रिय स्थान है। इन्हीं स्थानों पर यह अपना घोंसला बनाकर अंडे देता है। इसकी उड़ान बड़ी तेज और शक्तिशाली होती है। थोड़ी दूर की दौड़ में यह सबसे तेज़ बाज़ समझा जाता है। शिकारी इसे बहरी से अधिक अच्छा समझते हैं क्योंकि यह उसकी अपेक्षा अधिक वशवर्ती और स्वामीभक्त है, इसके अपने स्वामी को छोड़कर चले जाने की संभावना कम होती है। इसका मुख्य आहार बतख, बटेर (Partridge), कबूतर, तोते होते हैं। इन पर यह बड़े वेग से झपटकर शक्तिशाली पिछले नाखून (Claw) से हवा में हमला करता है और इन्हें पंजे से पकड़कर खाने के लिये किसी प्रिय चट्टान पर ले जाता है। शाहीन मादा का नाम है, नर को कुही कहते हैं। इसी के विषय में बिहारी ने लिखा है।

नीची पै नीची निपट, दीठी कुही लौं दौरि।
उठि ऊँचै नीचे दियो मन-कुलंग झकझोरि॥

---

११. Dharmakumarsinghji Ibid P. 56.
१२. Salim Ali-Ibid P. 124. मि० अथर्ववेद ५।४।२
सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि।

(५) **शिकरा**—यह कबूतर के आकार का होता है, नर १२ इंच लम्बा तथा मादा १४ इंच लम्बी। इसके उपरले पंख राख के रंग के, छाती और पेट सफेद तथा लाल एवं भूरी धारियों वाले होते हैं, टांगें लम्बी पतली, पीली तथा पूंछ राख के रंग की तथा काली पट्टियों से युक्त, सिर गोल और छोटा, चोंच छोटी, मोटी, काली तथा मुड़ी हुई, आंखें नारंगी लाल रंग की होती हैं।

यह सारे भारत में घने जंगलों तथा मरुस्थलों को छोड़कर अन्यत्र पाया जाता है। इसे बड़े पेड़ों वाले खेत बहुत पसन्द हैं, यहाँ पेड़ों की सघन डालियों में यह बैठता है। इसकी आवाज़ बड़ी तीखी टीट्रू-टीट्रू जैसी होती है।[१३] उड़ान में इसकी गति मध्यम दर्जे की है, यह अपने शिकार का पीछा नहीं करता, किन्तु उस पर अचानक हमला करता है।

शिकार के लिये इसे पालना अधिक अच्छा समझा जाता है। इसका कारण यह है कि इसे सधाना बहुत आसान है। दस दिन के भीतर इसे शिकार के लिये प्रशिक्षित किया जा सकता है। सामान्य रूप से इसका आहार छिपकलियाँ, मेंढक, चूहे, गिलहरियाँ, भुनगे और छोटे पक्षी होते हैं, किन्तु प्रशिक्षित होने पर यह बड़े पक्षियों, सफेद गीध (Neophron Vulture) तक को पकड़ सकता है। इसे प्रायः तीतर, बटेर पकड़ने के लिये पाला जाता है।

शिकरा वस्तुतः मादा का नाम है, नर को चिपका या चिपक कहते हैं। शिकार में तेज तथा कुशल होने के कारण मादा की अधिक माँग होती है और वह मंहगी बिकती है। अकबर द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार मादा आठ आने से डेढ़ अशर्फी तक बिकती थी और नर चार आने से एक अशर्फी तक।

शिकरा की ही एक अन्य उपजाति Gos-hawk है, इसकी मादा को बाज तथा नर को जुर्रा कहते हैं।

(६) **बाशा** (Sparrow Hawk)—यह शिकरा से बहुत साम्य रखने वाला पक्षी है, किन्तु यह उससे अधिक लम्बा, पतला और रंग-रूप में कुछ भिन्न होता है। इसके उपरले हिस्से का रंग गहरा भूरा, छाती और पेट सफेद तथा गहरी भूरी धारियों वाले होते हैं। बाज पालने वाले मादा को बाशा तथा नर को बाशी कहते हैं। कहा जाता है कि अकबर को यह बाज बहुत पसन्द था।[१४]

इसे नदियों के पास वाले घने जंगलों में रहना बहुत पसन्द है, यह बहुत ही लजीला पक्षी है, अपना शिकार प्रातःकाल सूर्योदय से पहले या कुछ समय बाद तक तथा सायंकाल करता है। यह छोटे पक्षियों विशेषतः गौरैया चिड़ियों को खाना अधिक पसन्द करता है, हमारे बगीचों के घने पेड़ों पर छिपकर बैठ जाता है तथा भूमि पर बैठने वाली चिड़ियों में किसी एक पर झपट्टा मारता है। एटकिन के शब्दों में "जब गौरैया चिड़ियां (भूमि पर विचरण करते हुए) अपने सामाजिक कलहों में व्यस्त होती हैं, शत्रु इनके बीच में पहुंचकर सब से पास वाली चिड़िया में अपने तेज नाखून घोंप देता है। एक ही क्षण बाद यह पेड़ों पर तेजी से शिकार के साथ उड़ता हुआ दिखाई देता है और कोई ध्यान नहीं देता। किन्तु छोटे पक्षियों का यह सौभाग्य

---

१३. Whistler—Popular Handbook of Indian Birds P. 362.
१४. Dharmakumarsinghji—Ibid. P. 210.

है कि उसका आगमन प्रायः देख लिया जाता है। कोई बुलबुल या जागरूक देसी मैना ज्यों ही इस पक्षी की घृणित छाया देखती है, त्योंहो एक तीखी आवाज़ में सब को चेतावनी देती है और प्रत्येक छोटा पक्षी इससे बचने के लिये झाड़ी में घुस जाता है[१५]।"

उड़ते समय यह पहले जल्दी-जल्दी डैनों को फड़फड़ाता है और फिर शान्त भाव से उड़ने लगता है। इस उड़ान से तथा छोटे गोल डैनों, कुछ लम्बी आकृति, लम्बी पूछ, स्लेटी भूरे रंग से इसकी पहिचान करना आसान होता है।

श्येन (बाज) जाति के इन पक्षियों का विवरण यदि कालिदास के वर्णन से मिलाया जाय तो यह प्रतीत होगा कि इनमें महाकवि द्वारा वर्णित निम्न विशेषतायें उपलब्ध होती हैं—

(१) इनके पंखों का रंग धूसर, मटमैला राख जैसे वर्ण का होता है।

(२) इनकी आवाज बड़ी कर्कश होती है।

किन्तु कालिदास की निम्न दो विशेषतायें इनमें नहीं मिलतीं :—

(१) ये युद्ध-भूमि में विचरण नहीं करते।

(२) ये योद्धाओं के कटे सिरों को पंजों में पकड़कर आकाश में नहीं उड़ते।

ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ कालिदास ने विभिन्न जातियों के शिकारी पक्षियों (Raptors) को मिला दिया है। युद्ध-भूमि में उड़ना तथा मृत मांस खाना गृध्र जाति (Valture) के पक्षियों का स्वभाव है, श्येन या बाज जाति के पक्षी जीवित पक्षी को पकड़कर और मारकर खाते हैं। गृध्र किसी विरले अपवाद को छोड़कर कभी अपने शिकार को मारकर नहीं खाता और श्येन कभी मरे हुए शिकार को नहीं खाता। अतः कालिदास का वर्णन यथार्थ नहीं है।

शिकारी पक्षियों में इस प्रकार की भ्रान्ति वैदिक युग से चली आ रही है। वैदिक साहित्य में श्येन, गृध्र और गरुड़ का प्रयोग सुनिश्चित पक्षियों के अर्थ में नहीं हुआ। मैकडानल तथा कीथ ने वैदिक इंडैक्स (२।४०१) में लिखा है—"श्येन ऋग्वेद में एक शक्तिशाली शिकारी पक्षी है। इस बात की अत्यधिक संभावना है कि यह गरुड़ (Eagle) है, बाद में (उत्तर वैदिक संस्कृत साहित्य में) इसका अर्थ बाज (Falcon) या शिकरा (Hawk) हो गया। यह पक्षियों में शीघ्रगामी तथा छोटे पक्षियों के लिये भीति का कारण है। यह सब से शक्तिशाली तथा पशुओं के रेवड़ पर आक्रमण करने वाला पक्षी है।" यह द्युलोक से सोम लाने वाला है।[१६] गरुड़ के प्रकरण में यह बताया जाएगा कि परवर्ती साहित्य में अमृत लाने का श्रेय इस पक्षी को दिया जाता है।'

वैदिक साहित्य में यह भ्रान्ति सुपर्ण शब्द के कारण भी हुई है। सुपर्ण का अर्थ है उत्तम पंख वाला। सायणाचार्य ने तैत्तिरीय आरण्यक (४।२९) में इसकी व्याख्या करते हुए कहा है—शोभनौ पर्णौ यस्य, शीघ्रपतनक्षमौ यस्यासौ सुपर्णः। अर्थात जिसके पंख सुन्दर या जल्द नीचे उतरने में समर्थ हैं, वह सुपर्ण है। इस शब्द का प्रयोग वेद में कई प्रकार के पक्षियों के लिये किया गया है।

ऋ० १०।१४४।४ में श्येन को सुपर्ण का पुत्र बताया गया है (यं सुपर्णः परावतः श्येनस्य

---

१५. EHA :—Commom Birds of Indian P.20.

१६. ऋ० ९।७७।२ स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः।

पुत्र आभरत्)। किन्तु इसी वेद में अन्यत्र (२।४२।२) इन दोनों को पृथक् पक्षी मानते हुए कहा गया है कि श्येन अथवा सपर्ण तेरी हिंसा न करे (मा त्वां श्येनो उद्वधीद् मा सुपर्णो)। ऋग्वेद के कई स्थलों में सुपर्ण के द्युलोक से अमृत लाने का वर्णन है।[१७] महाभारत के आधार पर यह पक्षी गरुड़ (Eagle) होना चाहिये। तैत्तिरीय आरण्यक (४।२९) में सुपर्ण को गृध्र का पर्याय बताते हुए इसके शव-मांस के सेवन का उल्लेख है (गृध्रः सुपर्णः कुणपं निषवत।) अतः यहाँ सुपर्ण का प्रयोग गीध (Vulture) के लिये हुआ है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य में श्येन की भाँति सुपर्ण शब्द का प्रयोग भी इन तीन विभिन्न प्रकार के पक्षियों के लिये हुआ है—(१) श्येन (Falcon or Hawk), (२) गरुड़ (Eagle), (३) गृध्र (Vulture)

इस प्रसंग में इन तीनों का वैज्ञानिक भेद स्पष्ट रीति से समझ लेना चाहिये। ये तीनों एक ही गण (Order Falconiformes) तथा एक ही उपगण Falcones के हैं। किन्तु इनके परिवार (Family) और उपपरिवार (Subfamily) में निम्नलिखित भेद हैं—

परिवार	उपपरिवार
Accipitridae	उप-परिवार, Accipitrinae बाज़, शिकरा Goshawk उप-परिवार Aegypiinae राजगीध या काला गीध (King Vulture), सामान्य गीध, सफेद गीध (Neophron) उप-परिवार Circaetinae गरुड़ (Indian Serpent Eagle)
Falconidae	Falconinae लगर, बहरी, सकेर, शाहीन।

यह वर्गीकरण इनकी शारीरिक विशेषताओं और भेदों के आधार पर किया गया है। प्रथम परिवार (Accipitridae) की विशेषतायें ये हैं—मज़बूत मुड़ी चोंच, शक्तिशाली पैर, पंजे के तेज़ नाखून, बड़े डैने तथा तीव्र दृष्टि। इनका रंग धूसर, भूरा, काला और सफ़ेद होता है। इस परिवार में गीध मृत मांस-भोजी हैं, वे अपना शिकार स्वयं नहीं मारते। किन्तु अन्य पक्षी अपने शिकार को स्वयं मारकर खाते हैं। इसका ढंग यह है कि ये अपने पंजे के तेज नाखून शिकार में गड़ाकर अपने पैर की मज़बूत पकड़ से इसे मार डालते हैं।

दूसरे परिवार (Falconidae) की प्रधान विशेषताएं इस प्रकार हैं—लम्बे, नुकीले, कम चौड़े डैने। ये इन्हें तेज उड़ान में और देर तक उड़ते रहने में सहायता देते हैं। इनकी चोंच छोटी, मोटी तथा मुड़ी हुई, जांघ (Tarjus) नंगी और छोटी, मज़बूत पंजों के नाखून तेज और मुड़े हुए होते हैं। इनका आकार छोटा तथा बीच का होता है, भारी बदन न होने के कारण ये बड़े फुर्तीले होते हैं। ये प्रायः अपने शिकार का उड़ते हुए हवा में पीछा करके पकड़ते हैं, इस पर झपट्टा मारकर

---

१७. ऋ० ८।१००।८ दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत्।
ऋ० ६।८६।२४, त्वां सुपर्ण आभरद् दिवस्परीन्द्रो।
ऋ० ६।४८।३ अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः। सुपर्णो अव्यथिर्भरत्।
ऋ० ४।२६ में सोम के साथ श्येन का वर्णन है।

अपना पंजा गड़ा देते हैं। इससे इनके पंजे की सबसे बड़ी तथा पिछली ओर की उँगली सहायक होती है। ये तोता, बटेर, मुर्गियों के बच्चे तथा छोटे जानवरों को खा जाते हैं।

उपर्युक्त वैज्ञानिक विवरण से यह स्पष्ट है कि गरुड़ (Eagle) गृध्र, (Vulture) और श्येन (Falcon or Shikra) तीन पृथक् पक्षी हैं। पहले दो पक्षियों का वर्णन अन्यत्र किया गया है। श्येन के बाज होने में कोई संदेह नहीं है, इस अध्याय के प्रारम्भ में दिये गये अधिकांश वैदिक उद्धरणों के अनुसार वह पक्षियों में बहुत तेज उड़ने वाला, झपट्टा मारने वाला तथा छोटे पक्षियों को त्रास देने वाला है। ये सब विशेषतायें बाज में ही पायी जाती हैं। महाभारत (वनपर्व अ० १३१) की उशीनर की कथा में श्येन द्वारा कपोत का भक्षण भी यह बताता है कि यह बाज होना चाहिये, क्योंकि इसका प्रिय आहार कबूतर है।

कालिदास ने सभवतः श्येन की वैदिक काल से चली आने वाली अस्पष्टता के कारण उसे गीधों के समान युद्धभूमि में विचरण करने वाला तथा कटे सिरों को पंजों में पकड़कर उड़ने वाला बताया है। ये दोनों विशेषतायें श्येन या बाज में नहीं पायी जातीं।

गृध्र | १३

यह प्रकृति का अत्यन्त उपयोगी पक्षी है। इसे भगवान् का भंगी समझना चाहिये। इसे इस बात का श्रेय प्राप्त है कि यह सर्वत्र सफ़ाई बनाये रखता है। जहाँ कहीं किसो मुरदार ढोर की लाश या मनुष्य का शव प्रकृति के वातावरण को दूषित करने लगता है, यह वहाँ बड़ी तेजी से अपने साथियों सहित पहुँच जाता है और थोड़े ही समय में उसकी पूरी सफ़ाई कर देता है। दूसरे की मृत्यु इनके लिये जीवन है, शवयात्रा महोत्सव है।

मृत-मांस-भोजी होने के कारण कालिदास ने गृध्र का वर्णन अपने काव्यों में प्रायः रण-क्षेत्रों के प्रसंग में किया है। खर-दूषण राक्षसों की सेना लेकर जब राम से लड़ने आये तो महाकवि ने इस युद्ध का वर्णन करते हुए कहा है कि—राम ने अपने बाणों से राक्षसों की पूरी सेना को इस प्रकार काट डाला कि युद्धभूमि में राक्षसों के धड़ों को छोड़कर और कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था। बाण बरसाने वाले राम से लड़कर राक्षसों की वह सेना गीधों के पंखों की छाया में सदा के लिये सो गयी—

सा बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा सुरद्विषाम्।
अप्रबोधाय सुष्वाप गृध्रच्छाये वरूथिनी॥

गीधों की छाया में खर-दूषण की सेना के सदा के लिये सोने का वर्णन कोरी कल्पना नहीं, किन्तु वैज्ञानिक सत्य है। युद्ध-भूमि में हताहतों की संख्या प्रचुर होने से इनका वहाँ आना, मंडराना और मुर्दों को खाना सर्वथा स्वाभाविक है। यह इनके लिये बड़ा महोत्सव है, इसमें ये बड़ी दूर-दूर से सम्मिलित होते हैं।

ह्विसलर ने लिखा है कि पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में हमारे युद्धों के कारण यह उन स्थानों में भी पहुँच गया, जहाँ यह सामान्य रूप से नहीं पाया जाता था। द्वितीय अफ़गान युद्ध (१८७८-८० ई०) के विषय में एक लेखक ने लिखा है कि ये सेना के साथ आगे बढ़ते थे और कुछ गीध २००-२५० मील दूर से अपने आवास-स्थान छोड़कर इस महाभोज का आनन्द उठाने आये थे।[१] ग्लैडस्टन ने इसी दृष्टि से गीधों को युद्ध के भीषण अनुयायी (Grim followers of war) कहा है।[२] गीध युद्धस्थल जैसे स्थानों पर दूर-दूर से कैसे इकट्ठे होते हैं और हताहतों का मांस किस प्रकार खाते हैं, इस विषय में प्रसिद्ध भारतीय पक्षीशास्त्री डेवार ने लिखा है[३] कि गीध आकाश में भूमि से ३०००-४००० फी. की ऊँचाई पर अपने पंख फैलाकर उड़ते हैं और यहाँ से

१. Ticehurst, C.B. The Birds of Mesopotamia—Journal of Bombay Natural History Society Vol. XXVIII (1922) P. 314.

२. Gladstone, H. S. :—Birds and the war (1919) P. 101-2.

३. Dewar Douglas :—Glimpses of Indian Birds (1913) P. 56-57.

(मांस के लिये) उत्कण्ठित अपनी दृष्टि से भूतल का निरीक्षण करते हैं। पृथ्वी पर किसी प्राणी के मरते ही, उड़ता हुआ गीध उसे देखकर फौरन वहाँ पहुँच जाता है। पहले गीध को नीचे उतरता देख इससे एक मील दूर उड़ने वाला गीध पहले का अनुसरण करता है। कुछ सैकण्डों के भीतर तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा तथा अन्य गीध भी वहाँ आ जाते हैं। कई बार प्राण त्यागने से पहले ही प्राणी भूखे गीधों से घिर जाता है। ये अपना भीषण भोजन आरम्भ करने के लिए प्राणी के मरने की भी प्रतीक्षा नहीं करते। उनके लिये यही पर्याप्त है कि उनका शिकार उन्हें कोई हानि न पहुँचा सके। ऐसा होते ही ये उसे नोचना शुरू कर देते हैं और उसके करुणक्रन्दन की परवाह नहीं करते।''

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि गीध विनाश और आसन्नमृत्यु का सूचक है। मल्लिनाथ द्वारा (रघुवंश ११।२६) उद्धृत शकुनार्णव के एक श्लोक में कहा गया है कि जिसकी मृत्यु निकट होती है, उसके सिर पर तथा उसके घर के ऊपर गीध आदि पक्षी मँडराने लगते हैं—आसन्न मृत्योर्निकटे चरन्ति गृध्रादयो मूर्ध्नि गृहोर्ध्वभागे। इसलिये गीधों का मंडराना अमंगल सूचक अपशकुन समझा जाता है। जब किसी के पास गीध मंडराने लगे तो उसका अन्त निकट समझना चाहिये। कालिदास ने रघुवंश और कुमारसंभव के दो प्रसंगों में इसके अपशकुन होने का वर्णन किया है।[४]

विश्वामित्र मुनि के आश्रम में जब राम और लक्ष्मण यज्ञ के विघ्न दूर करने लगे तो यज्ञ की वेदी पर रक्त की बड़ी-बड़ी बूंदें देखकर ऋषियों को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने यज्ञ करना बन्द करके खैर की लकड़ी से बने अपने स्रुवा रख दिये। उसी समय राम ने अपने तूणीर से बाण निकाले और मुँह ऊपर करके आकाश में राक्षसों की ऐसी सेना देखी, जिनके झुण्ड गीधों के पंखों की फड़फड़ाहट से हिल रहे थे—

> **उन्मुखः सपदि लक्ष्मणाग्रजो**
> **बाणमाश्रयमुखात्समुद्धरन् ।**
> **रक्षसां बलमपश्यदम्बरे**
> **गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम् ॥**
>
> **रघुवंश ११।२६**

राक्षसों की सेना के साथ गीधों का उड़ना उनके विनाश का सूचक था।

इसी प्रकार कुमारसंभव में देवताओं और दैत्यों के संघर्ष में दैत्यराज तारकासुर के विनाश की सूचना देते हुए कहा गया है कि तारक के सिर पर मंडराने वाले गीधों को उसके सेवक बार-बार भगा रहे थे, फिर भी गीध मांस खाने के लिये व्याकुल थे। वे बार-बार चारों ओर से उसका पीछा कर रहे थे, उसे पकड़ना चाहते थे, उसके सिर पर झपट्टा मारकर उसके मरण की सूचना दे रहे थे—

> **निवार्यमाणैरभितोऽनुयायिभि-**
> **र्ग्रहीतुकामैरिव तं मुहुर्मुहुः ।**

---

४. महाभारत (भीष्म पर्व ३।३१) में भी भावी युद्ध में विनाश के सूचक उत्पातों की चर्चा करते हुए कहा गया है—
गृध्रः सम्पतते शीर्षं जनयन्भयमुत्तमम् ॥

अपाति गृध्रै रभिमौलिमाकुलै-
र्भविष्यदेतन्मरणोपदेशिभिः ॥

कुमारसम्भव १५।२६

कालिदास के नाटकों में भी गृध्र के कुछ संकेत हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल के छठे अंक के प्रारम्भ में पुलिस के सिपाहियों ने राजा दुष्यन्त के नाम से अंकित अंगूठी एक मछियारे से बरामद की है। वे उसे पीटते हुए पूछते हैं कि तूने यह अंगूठी कहाँ से पायी। मछियारे का कहना है कि शक्रावतार नामक गांव के पास पकड़ी हुई रोहू मछली का पेट चीरते हुए उसे यह प्राप्त हुई थी। इस विषय में जब नगर का प्रबन्धकर्त्ता अधिकारी (नागरक) राजा के पास आवश्यक आदेश लेने के लिये जाता है तो एक सिपाही यह कल्पना करता है कि इस चोरी के अपराध में इसे प्राणदण्ड मिलेगा और यह या तो गोधों का भोजन बनेगा या कुत्तों से नोचा जाएगा—

गृध्रबलिर्भविष्यसि शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि ।

मालविकाग्निमित्र के दूसरे अंक के अन्त में राजा अग्निमित्र मालविका के लिये अपनी प्रणय की विह्वलता का विदूषक से वर्णन करते हुए उसे कहता है कि वह मालविका को प्राप्त करने में उसकी सहायता करे। इस पर विदूषक उत्तर देता है कि रानी धारिणी इसमें बाधक है, "बादलों में छिपी हुई चांदनी के समान मालविका का दर्शन दूसरों के हाथ में है। इधर आप बूचड़खाने के ऊपर मंडराने वाले, मांस के लोभी तथा डरने वाले गीध के समान हैं। (आप मालविका को चाहते हैं, किन्तु रानी से डरते है।)

मेघावलीरुद्धज्योत्स्नेव पराधीनदर्शना भवती मालविका ।
भवानपि सूनोपरिचरोगृध्र इव आमिषलोलुपोभीरूकश्च ॥[५]

विक्रमोर्वशीय नाटक के पंचम अंक में पार्वती के चरणों की ललाई से बनी पुरूरवा का उर्वशी के साथ समागम कराने वाली संगमनीय नामक लाल रंग की मणि को मांस का टुकड़ा समझकर गिद्ध द्वारा अपहरण करने का वर्णन है। यह मणि सोने के डोरे के साथ बंधी हुई थी, इसे लेकर आकाश में वेग से चक्कर काटता हुआ गृध्र इस प्रकार के मणि के रंग के कुण्डल बना रहा था, जैसे कोई आग की लूक को चक्कर देकर घुमा रहा हो—

असौ मुखालम्बितहेमसूत्रम्
बिभ्रन्मणिं मण्डलचारशीघ्रः ।
अलातचक्रप्रतिमं विहंग-
स्तद्रागलेखावलयं तनोति ॥

विक्रमोर्वशीय ५।२

राजा ने इस चोरी के लिये गृध्र को चोट्टा (विहगतस्कर), विहगाधम (सबसे नीच पक्षी) तथा वधयोग्य कहा और उसे मारने का प्रयत्न किया। किन्तु वह गीध अपनी तेज गति के

---

५. संस्कृत में शब्द कल्पद्रुम कोश के अनुसार गृध्र को यह नाम देने का इसका मांसलोलुप होना है। (गृध्यति अभिकांक्षति मांसानीति गृध्रः)। इसके अन्य पर्याय दूरदर्शन (दूर से देख लेने वाला) वज्रतुण्ड (वज्र जैसी कठोर चोंच वाला) तथा दाक्षाप्य (अपना कार्य करने में दक्ष, दक्षते कार्येषु समर्थो भवति) हैं।

कारण राजा के बाण की पहुँच से बाहर निकल गया और मणि को इतनी दूर उड़ाकर ले गया कि ऐसा प्रतीत हुआ कि घने बादलों की टुकड़ी के साथ रात को मंगल तारा चमक रहा हो—

आभाति मणिविशेषो दूरमिदानीं पतत्रिणा नीतः।
नक्तमिवलोहितांगः परुषघनच्छेदसंयुक्तः ॥

विक्रमोर्वशीय ५।४

राजा इसे पकड़वाने के लिये यह घोषणा कराता है कि जब यह डाकू पक्षी (विहग दस्यु) रात को अपने घोंसले में पहुँचे तो इसे खोजा जाए।

इसी बीच में च्यवन ऋषि के आश्रम के पास एक पेड़ पर वह गिद्ध बैठता है और उस आश्रम में पाला जाने वाला उर्वशी और पुरूरवा का बेटा आयु इसे अपने बाण का लक्ष्य बनाता है, पक्षी मणि के साथ भूमि पर धराशायी होता है और राजा को यह शुभ समाचार तथा मणि पहुँचायी जाती है, उसका आयु और उर्वशी के साथ संगम होता है।

कालिदास के उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि उसके गृध्र पक्षी में निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

(१) वह युद्धस्थलों तथा बूचड़खानों के ऊपर मंडराने वाला (सूनोपरिचर पक्षी) है।

(२) वह मांसलोलुप तथा मृतमांसभोजी (कुणपभोजनः) है।

(३) राजा ने गृध्र के घोंसलों की खोज करने के लिये कहा है, इससे ज्ञात होता है कि उसकी आदत पेड़ों पर घोंसला बनाने तथा इसमें कुछ वस्तुओं का संग्रह करने की है।

(४) उसकी गति मण्डलाकार तथा बहुत तीव्र (मण्डलचारशीघ्रः) है।

इस समय भारत में मुख्य रूप से गीध की निम्नलिखित जातियाँ पाई जाती हैं—

(१) गीध (Common or White-backed or Bengal Vulture, Gyps Bengalensis Gmelin)—यह पूंछ रहित मोर से आकार में कुछ बड़ा, ३५ इंच लम्बा, भारी, काले भूरे रंग का भारत में सर्वत्र पाया जाने वाला पक्षी है। इसका सिर और गर्दन नंगी और कुछ सफेद पंखों से ढकी होती है। इसके उपरले पंख काले भूरे रंग के और पूंछ भी छोटी तथा काली होती है, किन्तु बीच में पीठ और कटि भाग श्वेत होता है, अतएव इसे श्वेत पृष्ठ (White-backed) भी कहते हैं। इसकी आंख भूरी, चोंच और टांगें काली होती हैं। बैठे हुए या आकाश में निश्चल उड़ते समय यह सफेद पीठ से, नुकीले डैनों की सफेद प्रान्त रेखा से तथा सामान्य काले रंग के साथ चमकने

सामान्य गीध

वाले सफेद पार्श्वों से आसानी से पहचाना जा सकता है।

यह प्रायः ऐसे स्थानों पर पिंजरापोलों के निकट बड़ी संख्या में रहते हैं, जहाँ मुरदार ढोर बड़ी मात्रा में मिलते हों। इनका निवास-स्थान इनका बोझ सहन करने वाले बड़े पेड़, घरों की छतें तथा नंगी पहाड़ी चोटियाँ होती हैं। रात को ये यहाँ बसेरा करते हैं। दोपहर को ये आकाश में खूब ऊँचा चढ़कर मृत जानवरों की खोज में मण्डलाकार मंडराते रहते हैं।

ह्विसलर ने लिखा है कि जब श्वेतपृष्ठ गीध सुस्ती में अपने घोंसले या विश्रामस्थल पर नहीं बैठा होता तो यह अपना समय उड़ते हुए व्यतीत करता है। इस समय यह भूमि से बहुत अधिक ऊँचाई पर होता है, बड़े चौड़े मण्डल में (Wide circles) बिल्कुल गतिहीन डैनों के साथ उड़ता है।[६] आकाश में इस प्रकार चक्कर लगाने से न केवल इन्हें आहार की सूचना मिलती है, अपितु मुर्दा जानवरों को खाते हुए जो हानिकर कीटाणु इनके शरीर पर प्रविष्ट होते हैं, वे भी धूप से नष्ट हो जाते हैं।

तीव्र दृष्टि का रहस्य—यह गीध अपनी दूर दृष्टि के लिये प्रसिद्ध है और यह कहा जाता है कि मीलों से यह मुरदार ढोर या लाश को देख लेता है। पक्षिशास्त्रियों में पहले इस विषय में तीव्र विवाद था कि गीध इतनी दूर से शव को किस प्रकार जान लेता है। कुछ का यह मत था कि वह अपनी तीव्र दृष्टि से इसे देखता है, अन्य पक्षिशास्त्री यह मानते थे कि अपनी तीव्र घ्राणशक्ति से उसे यह ज्ञान होता है। किन्तु अब इस विवाद का अन्त हो चुका है और ह्विसलर के मतानुसार इसे निम्न रीति से शव का ज्ञान होता है।

ज्यों ही कहीं कोई प्राणी मरता है, तो सबसे पहले कौए और कुत्ते इसका पता लगाते हैं। जब कोई कौआ या कुत्ता लाश को नोचना शुरू करता है, तो दूसरे कौए और कुत्ते वहाँ जमा होने लगते हैं और इसकी नोच-खसोट के लिये संघर्ष आरम्भ कर देते हैं। इस जमघट को देखकर यहाँ चीलें (Kites) आने लगती हैं और वे यहां मँड़राते हुए नीचे झपट्टा मारकर मांस नोचने लगती हैं। चीलों को झपट्टा मारते हुए देखकर मांसभोजी गरुड़ (Eagle) इस संघर्ष में सम्मिलित होते हैं तथा अन्य सब प्राणियों को यहाँ से भगा देते हैं। इस समय तक इस जमघट पर आकाश में चक्कर काट रहे किसी गीध की दृष्टि पड़ जाती है, वह टांगों को फैलाकर तथा पंख आधे बन्द करके ऊँचाई से नीचे उतरना शुरू करता है, पहले अपने लक्ष्य पर मंडराता है और फिर उसके पास की जमीन पर सीधा उतर जाता है। जब आकाश में उसके पास उड़ने वाले दूसरे गीध अपने एक साथी को नीचे उतरता देखते हैं तो वे भी उसका अनुसरण करते हुए नीचे उतरना शुरू कर देते हैं। जिस प्रकार सरोवर के पानी में फेंका हुआ एक पत्थर पहले एक छोटी गोल लहर और फिर उससे बड़ी गोल लहरें पैदा करता है, उसी प्रकार आसमान में चक्कर काटता हुआ जब एक गीध नीचे उतरता है तो वह अपने पास वाले दूसरे गीध को तथा वह तीसरे गीध को वहाँ उतरने के लिये प्रेरित करता है। थोड़ी देर में इस स्थान का आसमान गीधों से भर जाता है। इसी को कालिदास ने अपनी काव्यमयी भाषा में गीधों की छाया (गृध्रच्छाये वरूथिनी) कहा है। ये सब गीध भीषण वेग और पंखों की फड़फड़ाहट के साथ,

६. Whistler :—Handbook of Popular Indian Birds. P. 355.
७. Whistler :—Ibid P. 355.

पंख आधे बन्द करके भारी आवाज़ के साथ नीचे उतरना शुरू करते हैं। "एक-एक करके सैकड़ों गीध थोड़ी देर में ही यहाँ एकत्र हो जाते हैं।[८]

गीध नीचे उतरते ही अपनी तेज़ तथा मजबूत चोंचों से मुरदार ढोर के पूँछ के पास के मुलायम भागों से उसे नोचकर अपना महाभोज आरम्भ कर देते हैं। बड़े से बड़ा मुरदार जानवर ये बड़ी तेजी से समाप्त कर देते हैं। बड़ी भैंस के विशाल मृत शरीर का सफ़ाया ये पन्द्रह मिनट में ही कर डालते हैं। इस समय इन में शव के पास अगला स्थान पाने के लिये बड़ी होड़ लगती है और तीव्र संघर्ष होता है। सब एक दूसरे को पीछे धकेलकर आगे बढ़ना चाहते हैं। दूसरों को हटाने के लिये पैरों से धक्का देते हैं, पंख फड़फड़ाते हैं, डराने के लिये भीषण शब्द करते हैं और एक दूसरे पर खूब गुर्राते हैं और उस स्थान पर एक जगह से दूसरी जगह बड़े भद्दे ढंग से फुदकते हैं।

तैत्तिरीय आरण्यक (४।२९) में इनका बड़ा सुन्दर चित्र खींचते हुए गृध्र को कहा गया है, "तुम मुँह में खून लगाये हुए हो इसके कारण तुम्हारी जाति पहचानना संभव नहीं है।[९] तुम यम के दूत हो, कुत्ते की तरह शव के पास जाते हो, इसको ढूँढ़ने के लिये सर्वत्र संचरण करते हो, मांस की इच्छा रखने के कारण तुम गृध्र हो। तुम्हारे पंख ऐसे हैं कि तुम जल्दी नीचे उतर सकते हो। तुम शव का सेवन करते हो। तुम यम तथा भगवान् दोनों के दूत हो।[१०]

इस महाभोज के समय गीध अपने से पहले आने वाले छोटे पक्षियों को भगा देते हैं, कुत्तों तथा सियारों को भी पीछे हटना पड़ता है। वे गीधों को हटाने के लिये भौंकते हैं, उन पर झपटते हैं, किन्तु कायर गीध ही इससे प्रभावित होते हैं, अधिकांश गृध्र इसकी कोई परवाह बिना किये अपने भोज में तत्पर रहते हैं। इन्हें केवल शेर और चीता ही मृत जानवर के भक्षण से सफलता पूर्वक रोक सकता है। किन्तु वे अपने मारे हुए शिकार की इनसे रक्षा करने में तभी समर्थ होते हैं, जब वे इस पर निरन्तर पहरा देते रहें और इसके पास आने वाले गीधों पर झपटते रहें। गीध प्रायः शेर के शिकार के समय पास वाले पेड़ों पर बैठे रहते हैं और इस प्रतीक्षा में मंडराते रहते हैं कि शेर के चले जाने पर उसके शिकार को खायें। इस प्रकार मंडराने वाले गीधों से शिकारी शेर का पता लगा लेते हैं।

---

८. Dharmakumarsinghji :—Birds of Saurashtra P. 44

९. आगे बताया जायगा कि राज गीध (King Vulture) का मुँह तथा गर्दन लाल होती है, यह उसकी सामान्य गीध से भेदक विशेषता है। किन्तु जब सामान्य गीध शव के रक्त से अपना मुँह और गर्दन रंजित कर लेता है तो दोनों में भेद करना कठिन हो जाता है।

१०. तैत्तिरीय आरण्यक ४।२९, असृङ्मुखो रुधिरेणाव्यक्तः। यमस्य दूत. श्वपाद्विधावसि। गृध्रः सुपर्णः कुणपं निषेवसे। यमस्य दूतः प्रहितो भवस्य चोभयोः
सायणाचार्य ने इसका भाष्य करते हुए लिखा है—हे गृध्र त्वं विधावसि, विविधं धावनं करोषि, शवमन्विच्छन् सर्वत्र संचरसि। असृङ्मुखोऽसृग्रक्तं मुखे यस्यासौ तादृशः। पातुं स्वीकृतेन रुधिरेण मुखस्य सर्वस्य लेपितत्वादव्यक्तः ईदृग्जातिरिति निश्चेतुमशक्यः। यमस्य दूतो यमो हि मारयितुं गृध्रं प्रेषयति। श्ववत्पद्यते शवं गच्छतीति श्वपात्। त्वं रक्तमांसयोर्गन्धेन तृषया युक्तत्वाद् गृध्रः। शोभनौ पर्णौ शीघ्रपतनक्षमौ यस्यासौ सुपर्णः। तादृशस्त्वं कुणपं निषेवसे।

गीध महाभोज के समय डटकर खाते हैं।[११] मृत जानवर की खाल से हड्डी तक सब साफ़ कर जाते हैं।[१२] ये इतना अधिक पेट भर लेते हैं कि इसके बाद बड़ी कठिनाई से उड़ पाते हैं। प्रायः ऐसे भोज के बाद ये लेट जाते हैं और कुछ समय तक विश्राम करते हैं। इनका महाभोज दिन के समय में होता है, किन्तु यदि इन्हें शेर का मारा हुआ शिकार मिल जाए तथा यह विश्वास हो कि शेर अब इसे खाने के लिये वापिस नहीं लौटेगा और वे उसके आक्रमण से सुरक्षित हैं तो ये दिन छिपने के बाद रात को प्रीतिपूर्वक इसका भक्षण करते हैं।[१३]

इनके महाभोज के अनेक काव्यमय वर्णन किये गये हैं।[१४] किन्तु यह बड़ा घिनौना और भीषण दृश्य होता है। जब गीध इस भोज में लगे हुए होते हैं, उस समय यदि कोई उनके पास तक चला जाए तो भी वे डरकर नहीं उड़ते। परन्तु उस समय वहाँ दुर्गन्धियुक्त मांस की इतनी सड़ांद होती है कि इनके पास जाना संभव ही नहीं होता। गीध के मृतमांसभोजी होने के कारण अन्य सब प्राणी उससे इतनी घृणा करते हैं कि उसके मर जाने पर उसके मांस को नहीं खाते। यह विधि की विडम्बना है कि जो सब प्राणियों के शव खाता है, स्वयं उसका शव खाने को कोई तय्यार नहीं होता। रुधिर से लिप्त दुर्गन्धयुक्त शवमांस खाते हुए गीध जितना घिनौना और जुगुप्सित प्रतीत होता है, आसमान में स्तिमित पक्षों से मंडलाकार भ्रमण करता हुआ वह उतना ही सुन्दर और भव्य प्रतीत होता है।

गीध का शवभोज घिनौना होने पर भी हमारे लिये अत्यन्त उपयोगी है, दुर्गन्धयुक्त गली-सड़ी लाशों को खाकर यह प्रकृति में सफ़ाई बनाये रखता है और बीमारी नहीं फैलने देता। एटकिन ने बम्बई नगर में इसके कार्य के बारे में लिखा है[१५]—यदि बम्बई नगर का कोई संरक्षक देवता होता तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह कौन सा पक्षी होना चाहिये। मैं नहीं जानता कि ईजिप्टवासियों ने आइबिस (Ibis) को देवता क्यों बनाया, किन्तु यदि बम्बई नगर अपनी ढाल पर गीध का चित्र बनाता तो सब को यह पता होता कि ऐसा क्यों किया गया है। इस शहर के साथ संबद्ध, इसके कल्याण के लिये अपनी शक्ति लगाने वालों तथा बिना वेतन के सार्वजनिक सेवा करने वालों में गीध की तुलना कोई दूसरा प्राणी नहीं कर सकता।"

राजगीध (या काला गीध Black or king Vulture)—यह आकार में पूंछहीन मोर से कुछ बड़ा ३२ इंच लम्बा होता है। इसका सिर, गर्दन, टांगें और पैर गहरे लाल, कन्धों, पीठ और पूंछ के पंख चमकीले काले तथा गर्दन के निचले और जांघों के उपरले हिस्से के पंख बिल्कुल सफेद होते हैं। बैठे हुए या उड़ते समय अपने लाल, काले और सफेद रंग के कारण यह दूर से झट पहिचान लिया जाता है। यह समूचे भारत में तथा हिमालय में ८००० फी० की ऊँचाई तक पाया जाता है।

यह सामान्य गीध की अपेक्षा शर्मीला और अकेला रहने वाला है। सन्तानोत्पादन के समय

---

११. Dharmakumarsinghji—Birds of Saurashtra P. 45
१२. Ibid.
१३. Ibid.
१४. Macdonald :—Birds of My Indian Garden. P. 224
१५. E. H. A. :—The Common Birds of India. P. 8.

राजगीध

यह हवा में कई प्रकार की कलाबाजियों का और चिवित्र उड़ानों का प्रदर्शन करके मादा को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है, और आकाश में ही प्रिया के साथ रति कार्य करता है।[१६] अन्य गीधों के समान शरीर और पंख भारी होने के कारण, उड़ने से पहले हवाई जहाज़ की भाँति इसे पहले जमीन पर काफी दूर तक दौड़ लगानी पड़ती है। नीचे उतरते समय इसे भूमि के साथ टक्कर बचाने की दृष्टि से अपनी गति कम करने के लिये पंख फड़फड़ाने (Flap) तथा पैर फैलाने पड़ते हैं। अन्य गीधों के समान यह भी आकाश में बहुत ऊंचाई पर दोपहर के समय हवा के अनुकूल मंडलाकार गति से उड़ता है। यह भी मृतमांस-भोजी है, अपवाद रूप में सन्तानोत्पादन के समय अत्यन्त भूखा होने पर ही जीवित चिड़िया का शिकार करता है।[१७]

इसे गृध्रराज कहने के कई कारण बताये जाते हैं। एटकिन के शब्दों में "यह गीध की अन्य जातियों से अधिक अच्छा और अभिमानपूर्ण चरित्र वाला होता है"।[१८] इसका रंग अधिक सुन्दर होता है, यह दूसरे गीधों की अपेक्षा कम गन्दा और घिनौना होता है। यह अकेला रहता है, दूसरों के साथ कम मिलता है, शवभक्षण के समय शोर भी कम मचाता है। एटकिन (पृ०१२) ने लिखा है कि जब यह किसी शव के पास आता है तो दूसरी जाति के गीध उस समय तक अलग खड़े रहते हैं जब तक यह अपना खाना समाप्त न कर ले। श्री धर्मकुमार सिंह जी ने लिखा है कि राजगीध महाभोज के समय प्रथम स्थान चाहता है और यदि वह न दिया जाए तो रोष प्रकट करता है (पृ० ४०)। ह्विसलर ने लिखा है[१९] कि एक शव के पास दूसरी जाति के बीसियों पक्षियों के साथ इस जाति के केवल एक या दो पक्षी होंगे। दूसरी जाति के गीध इसे प्रतिष्ठित समझते हैं और इसकी उत्कृष्ट भावना और व्यवहार के आगे नतमस्तक होते हैं। इसीलिये इसे राजगीध का नाम दिया जाता है, यद्यपि इसका दूसरा नाम काला या पाण्डिचरी गीध भी है (पृ० ३५१)। किन्तु सालिम अली ने इस तथ्य को वैज्ञानिक दृष्टि से भ्रान्त बताते हुए यह लिखा है[२०] कि शवभोजों में यह सबसे डरपोक होता है तथा गीध की दूसरी जातियाँ इसके प्रति कोई सम्मान नहीं प्रदर्शित करतीं।

---

१६. Dharmakumarsinghji :—Ibid P. 39.
१७. Dharmakumarsinghji :—Ibid P. 40.
१८. EHA :—The Common Birds of India. P. 12.
१९. Whistler :—Ibid P. 351
२०. E.H.A :—Ibid—P. 181

सफ़ेद गीध (Neophron or White Scavenger Vulture, Neophron, Percnopterus innLaeus)—यह आकार में अन्य गीधों से छोटा, चील जैसा २४ इंच लम्बा होता है। इसके उड़ने वाले काले भूरे परों के अतिरिक्त सारे पंख बिल्कुल सफ़ेद होते हैं, अत: यह सफेद गीध कहलाता है। इसका सिर तथा गर्दन का उपरला भाग नंगा तथा पीला होता है, चोंच पतली, लम्बी तथा आगे से मुड़ी हुई होती है। टांगें नंगी और पीले रंग की, डैने लम्बे तथा नुकीले और पूंछ पच्चराकृति होती है। अपने पंखों के सफ़ेद और सिर के पीले रंग के कारण इसकी पहिचान बड़ी सुगम है।
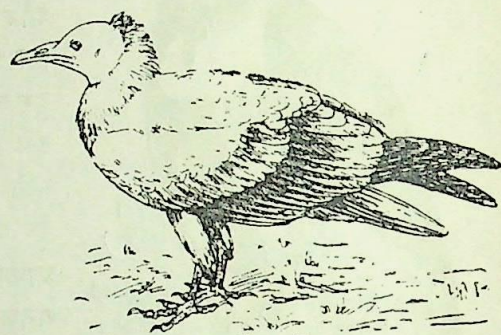
सफेद गीध

यह आसाम को छोड़कर सारे भारत में मिलता है। शहरों, बस्तियों और गाँवों के पास यह बहुत पाया जाता है और कूड़ा, करकट, मुरदार मांस और मानवीय मल खाने को सदा तय्यार रहता है। यह वस्तुत: कुशल भंगी है और सब प्रकार का मल-टट्टी और कूड़ा-करकट खा जाता है। अत: इसे गीधों में सबसे घृणित समझा जाता है। इसे मनुष्य का कोई डर नहीं होता, यह गुंजान बस्ती वाले बाज़ारों में, कूड़े, करकट तथा मलमूत्र और विष्ठा के ढेरों पर मुर्गी की तरह अपना खाद्य ढूंढ़ता रहता है। इसकी आकृति मुर्गी से बड़ी होती है अत: इसे Pharaoh's Chicken भी कहते हैं।

इसका सन्तानोत्पादन काल फरवरी से मई तक होता है। यह अपना घोंसला पेड़ पर, ऊँची चट्टानों के खोलों या बड़ी इमारतों पर बनाता है। इस घोंसले के नीचे तो लकड़ियाँ होती हैं और इसे मुलायम बनाने के लिये यह ऊन, पुराने चिथड़े या कोई भी कोमल वस्तु रखता है (ह्विसलर पृ० ३५७)।

यह पक्षी घोंसला बनाने के लिये विविध प्रकार की वस्तुओं का संग्रह करता है और इससे विक्रमोर्वशीय के पंचम अंक की घटना पर कुछ प्रकाश पड़ता है। फिन ने इसके नीड़-निर्माण के सम्बन्ध में लिखा है[२१] यह अपने घोंसले में प्राय: चिथड़े बिछाता है, यह इनका संग्रह कूड़े की ढेरियों से करता है। कई बार भारत में तीर्थयात्रा करने वालों के एक धार्मिक रिवाज का लाभ उठाता है। इसके अनुसार यात्री रास्ता बताने वाले पेड़ों पर अपने फटे कपड़ों की झण्डियाँ टाँग देते हैं। इस प्रकार ये पेड़ अनेक रंगों वाले कपड़ों की झण्डियों से सुसज्जित हो जाते हैं और सफेद गीध अपने घोंसले को अन्दर से सजाने की सामग्री प्राप्त करने के लिये इन पेड़ों के पास आता है। प्रसिद्ध भारतीय पक्षिशास्त्री श्री ए० ह्यूम के मतानुसार विभिन्न रंगों के कपड़ों के टुकड़ों को घोंसले में बड़ी सफाई के साथ इस प्रकार रखा जाता है, जिससे आँखों को सुखदायी प्रतीत होने वाली रचना का निर्माण सोच-विचार कर किया गया प्रतीत होता है। यदि यह सच हो तो भारत के घृणित सफेद गीध को आस्ट्रेलिया के निकुंज पक्षियों (Bower Birds) के समकक्ष-सौन्दर्य बुद्धि रखने वाला मानना

२१. Finn Robinson, E. Kay :--Birds of our Country Vol. II. P. 504.

पड़ेगा। यह इस नीच और हीन (Base and degrading) पक्षी के लिये बहुत बड़ी बात है।

इसी प्रकार श्री लेग ने लिखा है कि विभिन्न लेखकों ने इनके घोंसलों को गन्दा, छोटी लकड़ियों तथा बड़ी टहनियों को मिलाकर बनाई गयी भद्दी रचना बताई है, इसके केन्द्र में थोड़ा गहरा गढ़ा होता है। इसमें बहुत से चिथड़े, कपड़े के टुकड़े तथा ऊन बिछी होती है। ह्यूम ने ऐसे भी घोंसले पाये थे, जिनमें मनुष्यों के बाल ही बिछे हुए थे"।[२२]

कई बार यह अपने घोंसलों में बड़ी विचित्र वस्तुओं का संग्रह करता है। श्री धर्मकुमारसिंहजी के शब्दों में "इनका घोंसला चिथड़ों, ऊन, लकड़ियों तथा अन्य बड़ी विचित्र सामग्री से बना होता है। मैंने एक बार एक घोंसले में घोड़े की पुरानी नाल भी देखी थी।[२३]

विक्रमोर्वशीय के पंचम अंक में कालिदास के जिस गृध्र द्वारा संगमनीय मणि के अपहरण का वर्णन है, वह संभवतः सफ़ेद गीध है। रेशम के टुकड़े पर रखी हुई (दुकूलोत्तरच्छदे) इस मणि की ललाई से आकृष्ट होकर—सम्भवतः उसने इसे मांस का टुकड़ा समझकर (आमिषशंकिना) उठाया, किन्तु इसके साथ सोने का तार (हेमसूत्र) भी लटक रहा था। अपने घोंसले को सजाने के लिये स्वर्णसूत्र से बढ़कर क्या वस्तु हो सकती है? पक्षी का उद्देश्य इसे अपने घोंसले में ले जाना था। राजा संभवतः पक्षी की इस चोरी की आदत से तथा इनके पेड़ों पर निवास करने के स्वभाव से परिचित था। अतएव उसने नगर का शासन करने वाले कोतवाल को यह आज्ञा दी थी कि सायंकाल जब यह पक्षी अपने निवास वाले पेड़ पर पहुंचे तो इसकी खोज कराई जाये (सायं निवासवृक्षाश्रयी विचीयतां स विहगदस्युरिति)। इसके सफ़ेद गीध होने की पुष्टि इसे दिये गये विहगाधम, शकुनिहताश, विहगदस्यु आदि विशेषणों से भी होती है। यद्यपि ये विशेषण यहाँ गृध्र द्वारा ऐसा जघन्य कार्य करने के लिए रोष में दिये गये हैं किन्तु फिर भी इनका स्वतन्त्र महत्त्व है। पहले यह बताया जा चुका है कि सफ़ेद गीध न केवल शवमांस, किन्तु मानवीय टट्टी आदि मल खाने के कारण सबसे घृणित पक्षी समझा जाता है। फिन ने इसे Base and degrading object लिखा है।[२४]

डेवार ने लिखा है कि इस विषय में कोई दो सम्मतियाँ नहीं हो सकतीं कि दुनियां में सबसे भद्दा पक्षी कौन-सा है। मेरा मत है कि यह गौरव निश्चित रूप से सफेद गीध को ही प्राप्त है। प्रकृति-विशारद इसे गाली देने में होड़ करते हैं।[२५] एटकिन (E. H. A.) ने इसे That foul bird कहकर इसकी निन्दा की है। कालिदास ने भी इसे सबसे नीच और चोट्टा पक्षी कहकर इसकी भर्त्सना की है।

कालिदास ने रघुवंश और कुमारसंभव के उपर्युक्त श्लोकों में रणभूमि में जिन गृध्रों का वर्णन किया है वे संभवतः सामान्य गीध (Common Vulture) और राजगीध (King Vulture) हैं और विक्रमोर्वशीय नाटक का गृध्र सफेद गीध है। इस प्रकार उसके काव्यों तथा नाटकों में उपर्युक्त तीनों प्रकार के गीधों का उल्लेख मिलता है!

---

२२. A History of Birds of Ceylon (1880) P. 3-4.
२३. Dharmakumarsinghji Op. Cit. P. 46.
२४. Finn Op. Cit. P. 504
२५. Dewar Bombay Ducks (1906) P. 277.
मनुस्मृति में (११।२६) में इसे जघन्य मानते हुए देवता या ब्राह्मण की सम्पत्ति को लोभवश अपहरण करने वाले को अगले जन्म में गृध्रोच्छिष्ट से गुजारा करने वाला बताया है।

कुररी | १४

कालिदास के काव्यों और नाटकों में कुररी का उल्लेख दो बार हुआ है। रघुवंश में जब लक्ष्मण बड़े भाई के आदेश से सीता जी को वाल्मीकि के आश्रम के पास निर्जन वन में अकेला छोड़कर अयोध्या वापिस लौटते हुए उनकी दृष्टि से ओझल होते हैं तो सीता जी कुररी पक्षी की तरह विलाप करने लगती हैं। सीता जी के वचनों को सुनकर लक्ष्मण बोले—अच्छा, मैं सब कह दूँगा। यह कहकर ज्यों ही वे वहाँ से चलकर आंखों से ओझल हुए कि अत्यधिक दुःख के कारण सीता जी डरी हुई कुररी के समान डाढ़े मार-मारकर रोने लगीं—

तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं
रामानुजे दृष्टिपथे व्यतीते।
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभारा-
च्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः॥

रघुवंश १४.६८

विक्रमोर्वशीय नाटक के आरम्भ में महाकवि ने राक्षसों द्वारा उर्वशी के अपहरण पर अप्सराओं द्वारा सहायता की याचना के लिये किये जाने वाले क्रन्दन की तुलना कुररी के शब्द से की है। सूत्रधार कहता है कि "यह क्या? मेरा निवेदन समाप्त होते ही आकाश में कुररियों के शब्द जैसी ध्वनि सुनाई दे रही है।" कुछ सोचकर वह कहता है—ठीक है। मैं समझ गया। नर के मित्र नारायण की जंघा से उर्वशी नाम की जो अप्सरा उत्पन्न हुई थी, वह जब कुबेर की सेवा करके लौट रही थी तो राक्षसों ने उसे आधे रास्ते में ही पकड़कर बन्दी बना लिया है, इसीलिये अप्सराओं का यह समूह सहायता के लिये चिल्ला रहा है—

सूत्रधारः—

(कर्णं दत्त्वा) अये किं न खलु मद्विज्ञापनानन्तर-
मार्त्तानां कुररीणामिवाकाशे शब्दःश्रूयते।
(विचिन्त्य) भवतु। ज्ञातम्।
उरूद्भवा नरसखस्य मुनेः सुरस्त्री
कैलासनाथमुपसृत्य निवर्त्तमाना।
बन्दीकृता विबुधशत्रुभिरर्धमार्गे
क्रन्दत्यतः शरणमप्सरसां गणोऽयम्॥

विक्रमोर्वशीय १।३

कालिदास के इस वर्णन से स्पष्ट है कि कुररी की सबसे बड़ी विशेषता करुण क्रन्दन तथा विलाप से सादृश्य रखनेवाली ध्वनि है। इसके अतिरिक्त उसने इस पक्षी के रूपरंग का कोई ऐसा उल्लेख नहीं किया जिससे इसका स्वरूप निर्धारण करने में सहायता मिल सके। अतः इस विषय में अन्य संस्कृत ग्रन्थों में पाये जाने वाले निर्देशों का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है।

वैदिक साहित्य में कुररी का कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु रामायण, महाभारत, काव्यों, कोशों तथा आयुर्वेद के ग्रन्थों में इसका कहीं-कहीं उल्लेख है। महाभारत के आदिपर्व (अध्याय ५-६) में च्यवन ऋषि की उत्पत्ति की कथा सुनाते हुए सौति ने कहा है कि महर्षि भृगु की पत्नी का नाम पुलोमा था, इस पर इसी नाम वाले दानव की दृष्टि पड़ी, वह उसे हर कर ले जाने लगा, इस समय पुलोमा गर्भवती थी, उसके गर्भ से च्यवन ऋषि का पतन हुआ तथा उसके तेज से राक्षस भस्म हो गया। बाद में भृगु ऋषि को जब इस घटना का पता लगा तो उन्होंने क्रुद्ध होकर अपनी भार्या से सारी बात पूछी। इस पर पुलोमा ने उन्हें उत्तर दिया कि भगवन्, अग्नि देव ने उस राक्षस को मेरा परिचय दिया। इसके बाद कुररी की भाँति विलाप करती हुई मुझ अबला को वह राक्षस उठा ले गया—

अग्निना भगवन् तस्मै रक्षसेऽहं निवेदिता।
ततो मामनयद् रक्षः क्रोशन्तीं कुररीमिव॥

आदिपर्व ६४।१२

इससे स्पष्ट है कि कुररी करुण क्रन्दन करने वाला पक्षी है।

महाभारत के नलोपाख्यान पर्व (३।६४।११३) से यह प्रतीत होता है कि यह जलचर पक्षी है। नल वन में सो रही दमयन्ती का परित्याग करके चले जाते हैं, नींद खुलने पर वह पति के लिये विलाप करते हुए उनका अन्वेषण करती है। इसमें वह एक ऐसी नदी के किनारे आती है, जहाँ क्रौञ्च, कुरर तथा चक्रवाक कूजन कर रहे थे—

प्रोद्घुष्टां क्रौञ्चकुररैश्चक्रवाकोपकूजिताम्।

(वनपर्व ६४।११३)

इससे स्पष्ट है कि कुरर नदी तट पर रहने वाला जलचर पक्षी है।

गौतम के महाभिनिष्क्रमण के बाद उसकी माता के दुःख का वर्णन करते हुए अश्वघोष ने उसकी तुलना कुररी से की है---

विषादपारिप्लवलोचना ततः
प्रनष्टपोता कुररीव दुःखिता।
विहाय धैर्यं विरुराव गौतमी
तताम चैवाश्रुमुखी जगाद च॥

बुद्धचरित ८।५१

कालिदास और अश्वघोष ने कुररी को करुण विलाप ध्वनि करने वाला पक्षी माना है, किन्तु महाकवि बाण इसे बड़ा मधुर शब्द करने वाला पक्षी मानता है। उसने विन्ध्याटवी में पम्पा सरोवर के निकट शबर सैन्य द्वारा मृगया किया जाने के समय सुनी जाने वाली विभिन्न ध्वनियों का उल्लेख करते हुए कहा है—"इधर कुरर पक्षियों का मधुर शब्द सुनाई दे रहा है।" इस शिकार के समय होने वाले भीषण कोलाहल में उसने मदोन्मत्त कुररियों के कण्ठ से निकलने वाली मंजुल ध्वनि का उल्लेख किया है।[1]

---

१. कादम्बरी (हरिदास सिद्धान्तवागीश भट्टाचार्य का सटीक संस्करण कलकत्ता) पृ० १०४ इतः कुररकुलक्कणितम्; पृ० १०८ मदकलकुररकामिनीकण्ठकूजितकलेन।

महाकवि भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण (४।२६) में इसका उल्लेख करते हुए कहा है—

को नु खल्वेष सहसा
प्रासादाग्रात् विनिसृतः ।
श्येनपक्षाभिमृष्टानां
कुररीणामिव ध्वनिः ॥

इससे यह ज्ञात होता है कि कुररी कोई ऐसा पक्षी है जो निर्बल एवं दीन है और जिस पर (बाजश्येन) आदि शक्तिशाली पक्षी झपट्टा मारते हैं।

दशकुमार चरित में दण्डी ने बाज और उत्क्रोश या कुररी के झपट्टे मारने (अवपात) का उल्लेख किया है।

भागवत पुराण में इस पक्षी का वर्णन दो स्थलों में आता है। दशमस्कन्ध में कृष्ण-लीला के प्रसंग में गोपियाँ रात को विलाप करने वाली कुररी से पूछती हैं कि रात्रि के समय श्रीकृष्ण जी के तथा सारे जगत् के सो जाने पर तुम क्यों विलाप करती हो? तुम्हारी आँखों से नींद क्यों चली गई है? तुम क्यों नहीं सोती? क्या तुम्हारा हृदय भी हमारी तरह कमलनेत्र श्रीकृष्ण की मुस्कानभरी चितवन से बिंध चुका है?

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति राञ्यामीश्वरो गुप्तबोधः ॥
वयमिव सखि कच्चिद् गाढ़निर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥

दशमस्कन्ध ९०।१५

अन्यत्र इस पक्षी के मांसभक्षी होने का वर्णन किया गया है (११।९।१-२)। अवधूतोपाख्यान में अवधूत ने राजा यदु को यह बताया है कि उसने २४ गुरुओं से ज्ञान पाया है। इनमें एक कुरर पक्षी है। इससे उन्होंने यह सीखा कि मनुष्यों को जो वस्तुयें अत्यधिक प्रिय हैं, उनका संचय करना ही उनके दुःख का कारण है। ऐसा जानकर अकिंचन भाव से रहने वाला (इनका संग्रह न करने वाला) असीम सुख का भागी होता है। मांस का टुकड़ा लिये हुए कुरर पक्षी को कुछ ऐसे बलवान् पक्षियों ने देखा, जिनके पास मांस नहीं था। उन्होंने कुरर को बहुत मारा, तब उसने मांसखण्ड छोड़ दिया और शान्ति प्राप्त की—

परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम्
अनन्तसुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥
सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः
तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥

एकादश स्कन्ध ९।१-२

आयुर्वेद के ग्रन्थों में कुरर का उल्लेख विभिन्न पक्षियों के मांसों के गुणों के प्रकरण में तथा चिकित्सा के प्रसंग में किया गया है। चरक संहिता में प्रसह (अपना भक्ष्य जबर्दस्ती पकड़ कर खाने वाले) प्राणियों का वर्णन करते हुए अन्त में कहा गया है—

धूमिका कुररश्चेति प्रसहाः मृगपक्षिणः

सूत्रस्थान २७।३६

इसी प्रकार चिकित्सित स्थान (१७।११५-६) में श्वास की चिकित्सा के एक योग में कुरर के रोंये डालने का वर्णन है—

श्वाविज्जाण्डकचाषाणां रोमाणि कुररस्य वा ।
चूर्णं लीढ्वा जयेत्कासं हिक्कां श्वासं च दारुणम् ।।

चिकित्सितस्थान १७।११८-२०

चरकोपस्कार टीका के लेखक श्री योगीन्द्रनाथ सेन ने सूत्रस्थान के उपर्युक्त स्थल की टीका में कुरर पक्षी का परिचय देते हुए लिखा है कि यह चील के आकार का, नदियों से मछलियाँ उठाने वाला, और हाथ की मछलियों को भी छीनकर ले जाने वाला पक्षी है—

कुररः चिल्लाकारः नदोत्थापितमत्स्यः हस्तस्थमत्स्यग्राही ।[२]

गंगाधर ने जल्पकल्पतरुसमाख्या (पृष्ठ १०१०) नामक टीका में कहा है—

कुररः कुरापक्षी यस्तु नखेन विद्ध्वा मत्स्यान् जलादुद्धरति ।[३]

यह कुरा नामक पक्षी है, जो पैर के नखों से बींधकर मछलियों को जल से उठाता है।

सुश्रुत संहिता में कुरर का तीन बार उल्लेख है। शल्यकर्म में प्रयुक्त होने वाले स्वस्तिक यन्त्रों या संडासियो (Forceps) का जिन पक्षियों की मुखाकृति से सादृश्य बताया गया है, उसमें कुरर भी है।

"काककंककुररचाषभास······नन्दीमुखमुखानि"

सूत्रस्थान ७।६

इसी प्रकार मांसवर्ग के प्रकरण में कुरर का दो बार उल्लेख है। पहले तो प्रसह वर्ग में पक्षियों की गणना करते हुए कहा गया है—

काककंककुररचाषभाषशशघातयुलूकचिल्लिश्येनगृध्रप्रभृतयः प्रसहाः ।।

सूत्रस्थान ४६।७४

दूसरी बार कुरर की गणना प्लवों या जलचर पक्षियों में करते हुए कहा गया है—

हंससारसक्रौञ्चचक्रवाककुररकादम्बकारण्डव······
······मेघरावश्वेतवारलप्रभृतयः प्लवाः संघातचारिणः ।

सूत्रस्थान ४६।१०५

सुश्रुत के टीकाकारों में हाराणचन्द्र चक्रवर्ति ने सुश्रुत-संदीपन भाष्य में लिखा है कि कुरर कुरया नाम का पक्षी होता है। किन्तु इससे पक्षी के स्वरूप पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता। इसका कुछ परिचय देते हुए डल्हणाचार्य (पृष्ठ ३९७) ने लिखा है—

कुररः चिरबिल्वाकारः नदोत्थापितमत्स्यः ग्राही कुवल इति लोके प्रसिद्धः अर्थात् कुरर चिरबिल्व या करंज (Pongamia Glabra) के आकार का, नदियों से मछलियों को पकड़ने वाला

---

२. चरक संहिता योगीन्द्रनाथ सेन कृत चरकोपस्कार व्याख्या सहित (कलकत्ता १९२०)

३. चरकसंहिता चक्रपाणिदत्त की आयुर्वेददीपिका तथा गंगाधर की जल्पकल्पतरु व्याख्या सहित श्री नरेन्द्रनाथ सेन गुप्त बलाइचन्द्रसेन गुप्त द्वारा संशोधित संस्करण (कलकत्ता, शकाब्द १८४६)

होता है, इसका लौकिक नाम ग्राही या कुवल है।

वाग्भट्ट के अष्टांग संग्रह के मांस वर्ग प्रकरण (सूत्रस्थान, अध्याय ७) में कुरर का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

शशघ्नी भासकुररगृध्रवेश्यकुलिंगकाः
धूमिका मधुहा चेति प्रसहा मृगपक्षिणः ।।७६।।

इसकी इन्दु विरचित शशिलेखा नामक व्याख्या में कुरर का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—

कुररः अरुणः श्वेतमस्तको हस्तमत्स्यग्राही ।[४]

कुरर लाल रंग का और सफेद मस्तक वाला पक्षी है, यह हाथ में ली हुई मछली को भी पकड़ लेता है।

संस्कृत के कुछ कोश ग्रन्थ भी कुरर की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं। अमर कोश (२।५।२४) में इसके दो पर्यायों का निर्देश है—उत्क्रोश और कुरर (उत्क्रोशकुररौ समौ)। ये दोनों नाम उसकी ध्वनि सूचक विशेषता के आधार पर है। अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी के मतानुसार ऊँचा चिल्लाने के कारण इसका नाम उत्क्रोश है। कुरर शब्द करने का अर्थ देने वाली कुर धातु से बनता है. अथवा यह पक्षी कुर जैसी ध्वनि करता है।[५]

परवर्ती कोशों ने कुरर के नामों में मछली का विनाश करने या खाने वाले के एक पर्याय की वृद्धि की है। त्रिकाण्डशेष (२।५।२४) ने अमरकोश की पूर्ति करते हुए लिखा है—

कुररः मत्स्यनाशनः :

हेमचन्द्र के अभिधानचिन्तामणि (४।४०१) में कहा गया—

अथोत्क्रोशो मत्स्यनाशनः। कुररः।

वैजयन्ती कोश के अन्तरिक्षकाण्ड के खगा-ध्याय (श्लोक ३४) में इसी को पुनरावृत्ति है—

उत्क्रोशः कुररो मत्स्यनाशनः

कोशकल्प तरु (पूना संस्करण पृ० १६६) ने लिखा है—

अथ कुररो भवेत्
उत्क्रोशो मत्स्यभुक्..............।।७६।।

इससे यह स्पष्ट है कि कुररी की एक बड़ी विशेषता मछली खाना है।

संस्कृत साहित्य की उपर्युक्त साक्षी के आधार पर कुररी की प्रधान विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) कुररी ऊँचा शब्द, करुण क्रन्दन तथा विलाप करने वाला पक्षी है।
(२) यह जलचर पक्षी है।

---

४. अष्टांगसंग्रह रामचन्द्र शास्त्री किंजवेडर द्वारा सम्पादित संस्करण (चित्रशाला प्रेस पूना १९४०) पृ० ५०।

५. क्षीरस्वामी २।५।२४ उच्चैः क्रोशतीत्युत्क्रोशः। कुरति कुररः, कुरशब्दे कुरेति शब्दं राति वा। शब्दकल्पद्रुम में कहा गया है—उत्क्रोशति प्रहरे प्रहरे शब्दं करोतीति। शब्दार्थ चिन्तामणि में शब्द करने का अर्थ देने वाली कुङ् धातु से कुरर की व्युत्पत्ति की गयी है।

(३) यह आमिषभक्षी है, विशेष रूप से मछलियाँ खाने वाला है।

(४) शशिलेखा टीका के अनुसार इसका रंग लाल तथा माथा सफेद है।

(५) डल्हणाचार्य के मतानुसार इसका आकार करंज (चिरबिल्व) के फल जैसा लम्बोतरा तथा गहरा भूरा-लाल होता है।

(६) योगीन्द्रनाथ सेन के मतानुसार यह चील के आकार का पक्षी है।

आधुनिक मत—कुरर कौन-सा पक्षी है, इस विषय में आधुनिक विद्वानों में पर्याप्त मत भेद है। मोनियर विलियम्ज़ ने अपने सुप्रसिद्ध संस्कृत कोश में इसका अर्थ Osprey (मछलीमार) किया है। आप्टे कोश में यही अर्थ दिया गया है। गुस्टाव आपर्ट ने भी वैजयन्ती कोश की टीका में यह अर्थ माना है। श्री सत्यचरण लाहा ने इस मत का समर्थन किया है[६]। श्री पारसनाथसिंह ने अपने पक्षी परिचय (पृ० १०८) में इसे टिटहरी या टिट्टिभ माना है। श्री सुरेश जी इसे टिहरी (Tern) का भेद मानते हैं।

इनमें से किसे कुररी मानना चाहिये ? क्या इनमें उपर्युक्त विशेषतायें हैं, अथवा किसी अन्य पक्षी को कुररी मानना उचित है ? इसके लिये पहले उपर्युक्त पक्षियों का संक्षिप्त वैज्ञानिक का परिचय आवश्यक है।

(१) **मछलीमार** (Osprey, Pandion haliaertus Linnaeus)—यह पक्षी चील (Pariah Kite) से कुछ बड़े आकार का होता है। इसका उपरला हिस्सा गहरे भूरे-काले रंग का, निचला हिस्सा सफेद, छाती पर भूरे रंग की एक चौड़ी पट्टी या माला सी होती है, जो इसे उड़ते हुए या बैठे हुए पहचानने में बड़ी सहायक सिद्ध होती है। इसका छोटा गोल सिर लगभग सफ़ेद होता है। आँखें पीली, टाँगें राख के रंग की होती हैं, पाँवों के तलों में काँटेदार रचना (Spiky Serration) होती है, ताकि वह मछलियों को मजबूती से पकड़ सके। इसके पंख लम्बे तथा सुन्दर आकार के होते हैं। इनके कारण इसकी उड़ान बड़ी भव्य होती है और यह भयंकर तूफानों में भी उड़ता रहता है। यह बड़ा लजीला पक्षी है। पानी के निकट झीलों तथा नदियों के किनारे और समुद्र तट पर भारत में सर्वत्र पाया जाता है।

इसका मुख्य भोजन मछली है। शिकार का ढंग आकाश में मन्द गति से मंडराते रहना है। इस समय जल के ऊपर इसके भूरे तथा रुपहले पंखों का रूप बड़ा मनोरम प्रतीत होता है। इसका मछली का शिकार करना बड़ा आकर्षक होता है। यह आकाश में मंडराते हुए ज्योंही किसी मछली को पानी की सतह पर ऊपर आते हुए देखता है, फौरन उस पर झपटता है और एक या दो सैकण्ड के लिये पानी में गोता लगाता है। यदि शिकार पकड़ में आ जाता है तो उसे पैर से पकड़े हुए यह अपने प्रिय निवास स्थान —किसी चट्टान आदि के पास ले जाकर इसे खाता है। यदि शिकार नहीं मिलता तो यह पानी से निकलकर अपने पंखों को फड़फड़ाता है।

एटकिन ने इसके शिकार का वर्णन करते हुए लिखा है[७]—यह एक दम अपने पंख बन्द कर लेता है और ४०-५० फीट की ऊँचाई से सीधा सिर के बल पानी में गिरता है। यह एक

६. कालिदासेर पाखी पृ० १६७-८ तथा पृ० २६५-६६

७. E. H. A. The Common Birds of India (3rd ed. 1947) P. 24-5.

सुन्दरतम दृश्य बन जाता है। समुद्र एक प्रबल छप-छपाहट के साथ इसे ग्रहण करता है, यह उसमें चला जाता है, वहाँ लहरों के चक्र बनने शुरू हो जाते हैं। एक क्षण बाद यह पुनः प्रकट होता है, इसने पानी में से एक बड़ी मछली उठाई होती है, यह अपने कंधों को हिलाकर शरीर पर पड़ी पानी की बूँदों को हटाता है और अपनी उस प्रिय चट्टान की ओर चला जाता है, जिस पर पहले के मछली भोजनों के अवशेष बिखरे होते हैं।" यह कई वार इतनी भारी मछलियाँ पकड़ता है कि इन्हें अपनी चट्टान तक ले जाना सम्भव नहीं होता, उस समय मछरंग (Fish Eagle) आदि पक्षी इस पर झपट्टा मारकर तथा इससे शिकार छीनकर इसका भार हलका करते हैं। श्री धर्मकुमारसिंहजी ने लिखा है कि उन्होंने इसे कई बार २।। सेर (पांच पौण्ड) के भार वाली मछलियाँ पकड़ते देखा है, किन्तु सामान्य रूप से यह १।। सेर से एक पाव तक का भार रखने वाली मछलियाँ पकड़ता है और ये ८ से १२ इंच लम्बी होती है।[८] यह शिकार को पैर से ही पकड़ता है, अपनी शक्तिशाली चोंच का प्रयोग वह मछली को खाने के लिये फाड़ने में ही करता है, उसे पकड़ने में नहीं।
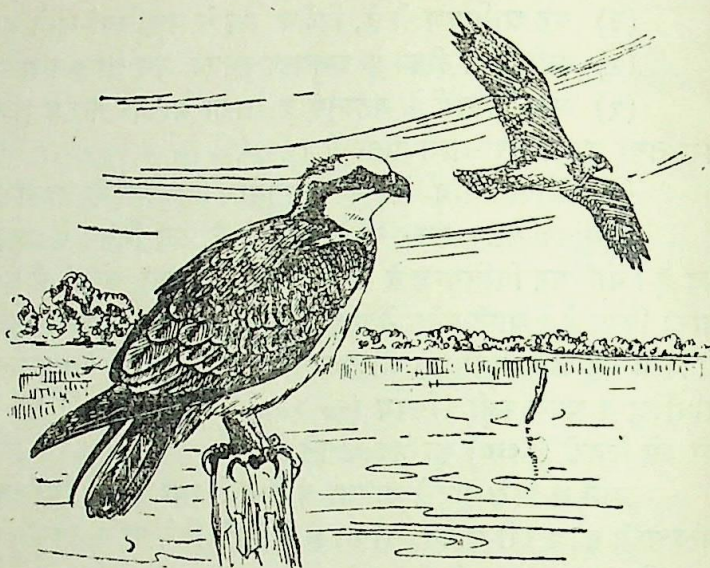
मछलीमार

यह हमारे देश में योरोप से अगस्त-सितम्बर में आता है, शीत ऋतु में यहाँ रहने के बाद यह मई में हमारे देश से लौट जाता है। सन्तानोत्पादन का कार्य यह भारत से बाहर ही करता है।

इसकी ध्वनि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध पक्षी विशारद श्री सालिमअली ने[९] लिखा है कि यह

---

८. Dharmakumarsinghji :—Birds of Saurashtra P. 67-8.

९. Salim Ali, The Book Indian Birds (6th ed. 1961) P. 64.
श्री सत्य चरण लाहा (कालिदासेर पाखी पृ० १६८) ने लिखा है कि जिस समय बाज आदि पक्षी मछलीमार से इसका शिकार छीनने के लिये इस पर झपटते हैं तो यह डरकर भय से चीखता है और यही इसकी करुण क्रन्दन ध्वनि है। किन्तु यह ध्वनि बहुत थोड़े समय के लिये होती है। सामान्य रूप से यह पक्षी शान्त रहता है। इसके चुप रहने की जो बात सालिम अली ने लिखा है, वही श्री हेनरी ने लंका में इस पक्षी के बारे में लिखी है (A Guide to the Birds of Ceylon P. 205) अतः सामान्य रूप से मौन रहने के कारण इसमें कालिदास के करुण क्रन्दन की विशेषता नहीं दृष्टिगोचर होती।

इसके सर्दियों के आवास स्थान में बहुत कम सुनी जाती है। यह क कै कै (Kai) जैसी स्पष्ट ध्वनि होती है (Call : seldom heard in its winter quarters, described as clear kai kai kai)।

कुररी की सबसे बड़ी विशेषता उसका क्रन्दन और करुण ध्वनि है। सालिम अली के मतानुसार भारत में मछलीमार की ध्वनि बहुत कम सुनाई देती है। अतः इसमें ध्वनि की विशेषता न होने के कारण मछलीमार कुररी नहीं प्रतीत होता। इस विषय में मोनियर विलियम्ज तथा आप्टे कोश का यह मत यथार्थ नहीं है कि कुररी या मछलीमार (Osprey) है।

(२) **टिटिहरी या टिटीरी** (The Redwattled Lapwing—Vanellus indicus Boddeart) —यह तीतर के आकार का, परन्तु उससे बड़ी टाँगों वाला १३ इंच लम्बा पक्षी है। इसका रंग ऊपर से काँसे जैसा भूरा काला, नीचे से सफेद होता है। सिर, गला तथा छाती काली होती है, प्रत्येक आँख के पास लाल रंग का नंगा माँस या गुलथी (Wattle) होता है। इसीलिये यह लाल गुलथी वाला (Red Wattled) कहलाता है। इसकी एक प्रमुख विशेषता आँखों के पीछे से नीचे गर्दन की ओर जाने वाली सफ़ेद रंग की चौड़ी सफ़ेद पट्टी है। यही पट्टी निचले हिस्से की सफेदी में मिल जाती है और यह इसकी एक बड़ी पहिचान है। इसकी आँख की पुतली लाल-भूरी, चोंच लाल, इसका सिरा काला तथा टांगें चमकीले पीले रंग की होती हैं। इसीलिये इसे संस्कृत में पीतपादा का नाम दिया जाता है।

यह पक्षी सारे भारत में तथा हिमालय में ६००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह पानी के पास या खुले प्रदेश में, जुते हुए खेतों में, चरागाहों में और सूखे तालाबों के निचले हिस्सों में मिलता है। इसका मुख्य भोजन कीड़े, कीटडिम्भ (Grabs) तथा घोंघे (Molluscs) हैं। यह जमीन पर दौड़कर कीड़ों का शिकार करता है तथा बड़ा सावधान और जागरूक पक्षी है। मार्च से अगस्त तक सन्तानोत्पादन के समय यह सतर्कता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यह कहीं घोंसला नहीं बनाता, मादा सादी जमीन पर ही चार तक अण्डे देती है और उन पर बैठी रहती है। बच्चों के पास आते ही नर मादा तीखी आवाज़ से चिल्लाने लगते हैं। "अगर आप इन्हें (बच्चों को) छेड़ेंगे तो उनके माँ बाप अपनी रुलाई से आपको रुलाये बिना न रहेंगे। दिन में न हो सके, रात को आपके मकान के ऊपर मंडरायेंगे और अपने करुण क्रन्दन से आपकी और आपके पड़ोसियों की नींद उचटा देंगे"।[१०]

टिटिहरी की एक बड़ी विशेषता इसकी बोली है। यह टिट्टि-टिट्टि की बड़ी तेज, कर्कश और कटु ध्वनि करती है और इसीलिये संस्कृत में टिट्टिभ कहलाती है। अंग्रेज़ी में इस पक्षी की ध्वनि को Did he do it ? या Pity to do it कहा जाता है। इसी ध्वनि के आधार पर इसे कुररी मानते हुए श्री पारसनाथसिंहजी ने लिखा है कि टिटिहरी और कुररी एक ही पक्षी के नाम हैं (पृ० १७८)

किन्तु निम्नलिखित कारणों से यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता :—

(१) संस्कृत साहित्य में टिटिहरी (टिट्टिभ) और कुररी दो सर्वथा भिन्न पक्षी माने गये हैं। अमर कोश आदि सभी कोषों में इन दोनों का उल्लेख पृथक् रूप से हुआ है, अतः ये एक

---

१०. पारसनाथसिंह—पक्षी परिचय पृ० १७८।

नहीं हो सकते।

(२) कुररी की संस्कृत ग्रन्थों में बतायी गई उपर्युक्त विशेषताओं में से बोली के अतिरिक्त इसमें कोई विशेषता नहीं पायी जाती। सभी कोषकार कुररी को प्रधान रूप से मछली खाने वाला मानते हैं, परन्तु टिटिहरी मछली नहीं खाती। गंगाधर तथा योगीन्द्रनाथ सेन कुररी को चील आकार का मानते हैं, टिटिहरी का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। अष्टांगहृदय की शशिलेखा टीका के अनुसार यह लाल रंग का और श्वेत मस्तक वाला होना चाहिये, किन्तु टिटिहरी के उपरले पंखों का तथा सिर का रंग काला होता है।

इससे स्पष्ट है कि कुररी की अधिकांश विशेषतायें टिटिहरी में नहीं हैं, अतः इसे कुररी नहीं माना जा सकता। यह इससे भिन्न पक्षी है।

कुछ विद्वानों ने इसे टिहरी या कुर्री माना है। इसका स्वरूप निम्नलिखित है—

(३) **टिहरी** (The River Tern-Sterna aurantia J. E. Gray)—यह आकार में कबूतर से बड़ी, किन्तु उससे बहुत पतली १६ इंच लम्बी होती है। गर्मी और सर्दी में इसके पंखों का रंग बदलता रहता है। गर्मी में सिर का ऊपरी हिस्सा तथा दोनों पार्श्व चमकीले काले होते हैं। शीत ऋतु में सिर की काली टोपी हल्के राखी रंग की हो जाती है। इसकी चोंच गहरी पीली, टांगें छोटी तथा लाल, पूंछ खूब लम्बी तथा दो हिस्सों में विभक्त (Forked) होती है। यह बड़ा सुन्दर पक्षी है तथा अपनी सफेद ठोड़ी और छाती, राख जैसे रंग के पंखों, काली टोपी और लाल टांगों से पानी के निकट झट पहचान लिया जाता है।
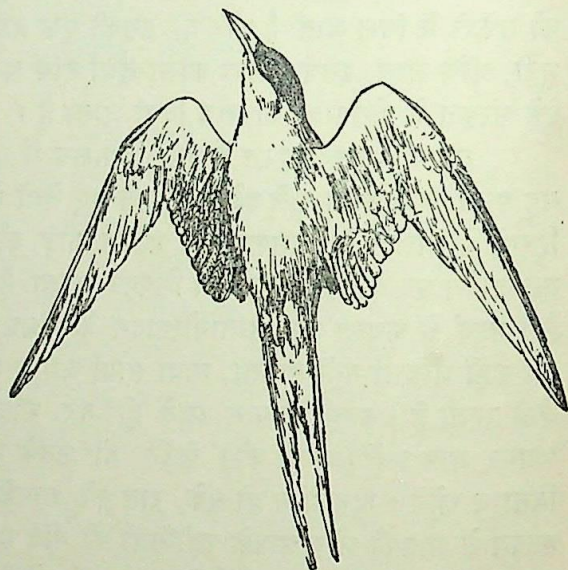
टिहरी

यह भारत में बारह मास रहने वाला पक्षी है। देश के सभी हिस्सों में पाया जाता है। अपनी आवश्यकता के अनुसार देश के एक भाग से दूसरे भाग में चला जाता है। सन्तानोत्पादन का समय मार्च से मई तक है।

यह मुख्य रूप से नदियों में, जोड़ों में अथवा छोटे समूहों में रहता है और अपना अधिकांश समय मछलियों के शिकार में बिताता है। ये पक्षी पानी की सतह से ३० फी. की ऊँचाई तक उड़ते रहते हैं और अपनी तीव्र दृष्टि से पानी में मछलियों को ढूंढ़ते रहते हैं। अपना शिकार देखते ही, ये पंख समेटकर एकदम सीधा पानी में कूद पड़ते हैं, कुछ क्षण पानी में रहकर शिकार के साथ ऊपर आ जाते हैं और उड़ते हुए ही शिकार खा लेते हैं। ये कई बार लगातार झपट्टा मारकर एक ही समय में दो-तीन मछलियाँ पकड़ लेते हैं। चाँदनी रात में भी पानी के बहुत पास उड़ते हुए ये अपना शिकार करते हैं और बच्चों के खाने के लिये मछलियाँ लाते हैं। ये बच्चों को मछली

खिलाने से पहले उसे पानी में डुबोकर धोते हैं और यह मछली उन बच्चों के आकार की होती है। क्षुधा शान्त कर लेने पर वे पानी के किनारे रेतीले किनारों पर अपनी जाति के अन्य पक्षियों के साथ बैठकर विश्राम करते हैं। ये न तो पेड़ों पर बैठते हैं और न ही पानी में तैरते हैं।

प्रजनन के समय ये मार्च से मई तक नदियों के रेतीले किनारों तथा वृक्षहीन छोटे टापुओं को अधिक पसन्द करते हैं। इन स्थानों में ये रेत में गढ़ा करके हल्के हरे बादामी रंग के तीन अण्डे देते हैं। प्रायः कई पक्षी एक ही स्थान पर पास-पास घोंसले बनाकर अण्डे देते हैं और इनकी रक्षा बड़ी सतर्कता से करते हैं। इस समय दिन में रेत सूर्य की गर्मी से इतनी अधिक तप जाती है कि कोई नंगे हाथ से इनके अण्डों को छू नहीं सकता। अतः इस समय ये निश्चिन्त होकर पास की नदी में मछलियों का शिकार करते हैं। किन्तु ज्योंही ये किसी व्यक्ति को अपने अण्डों वाले रेतीले किनारे के पास आते हुए देखते हैं तो इनमें बड़ी हलचल और शोर होने लगता है। घोंसलों में अण्डे सेने वाले पक्षी इन्हें छोड़कर उठ खड़े होते हैं, पास की नदी में शिकार करने वाले पक्षी भी शोर सुनकर फ़ौरन यहाँ आ जाते हैं और ह्विसलर के शब्दों में इस समय आगे पीछे उड़ने वाली तथा वहीं मंडराकर चक्कर काटने वाली टिहरियों से तथा इनके करुण क्रन्दनों से (Shrill plaintive cries) से वायुमण्डल भर जाता है।[११] यह क्रन्दन इस बात का सूचक है कि वहाँ उनके अण्डे बच्चे हैं तथा वे इनकी रक्षा करना चाहते हैं।

इसकी ध्वनि के विषय में श्री धर्मकुमारसिंहजी ने लिखा है कि यह टी (Tee) या की (Kee) की एकरस तथा उकता देने वाली (Montonous) ध्वनि होती है। ये पक्षी कण्ठ से कुछ अन्य चीत्कार (Gutteural squawk) भी निकालते हैं। किसी आगन्तुक के आने पर वहाँ समूहों में घोंसले बनाकर रहने वाले टिहरी पक्षी उसके सिर पर निरन्तर टिआओ-टिआओ (Tiao) तथा टी-टी की ध्वनि करते हैं।[१२]

इस पक्षी की कई उपजातियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं। पहली उपजाति काले पेट वाली (Blackbelled—Sterna acuticauda) टिहरी है। दूसरी ढोमरे (Gull) जैसी चोंच वाली (Gullbiled—Gelochelidon nilotica) समुद्र तट पर पायी जाती है, इसकी चोंच और टांगें दोनों काली होती हैं। तीसरी दलदल वाले प्रदेशों में पायी जाने वाली टिहरी (Indian Whiskered—Chlidonias hybrida Pallas) कहलाती है। इसकी चोंच लाल तथा पूंछ छोटी और दो हिस्सों में विभक्त होती है।

टिहरी के कुररी होने में निम्नलिखित कारण दिये जा सकते हैं—

(१) इसमें कुररी के करुण क्रन्दन की विशेषता पायी जाती है। पहले यह बताया जा चुका है कि ये नदी या झील के बालुकामय प्रदेशों में बड़े समूहों और झुण्डों में अण्डे देती तथा इन्हें सेती हैं। यहाँ किसी आगन्तुक की उपस्थिति से तहलका मच जाता है और सारा झुण्ड इकट्ठा होकर उसके सिर पर मंडराते हुए बच्चों की रक्षा के लिये करुण-क्रन्दन करने लगता है। अश्वघोष ने सम्भवतः इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए लिखा है—

प्रनष्टपोता कुररीव दुःखिता।

---

११. Whistler :—Popular Hand Book of Indian Birds (4th ed) P. 485.
१२. Dharmakumarsinghji—Birds of Saurashtra P. 218.

(२) भाषा विज्ञान की दृष्टि से Tern का हिन्दी नाम कुर्री संभवतः कुररी का अपभ्रंश है। अतः कुररी यही पक्षी होना चाहिये।

(३) यह पक्षी मछलियों का शिकार करने तथा खाने के कारण मत्स्याशी तथा मत्स्यनाशन है।

किन्तु इस पक्षी में संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित कई महत्त्वपूर्ण विशेषतायें नहीं हैं। यह पक्षी योगीन्द्रनाथ सेन के चरकोपस्कार के अनुसार चील के आकार का होना चाहिये। अष्टांग संग्रह की शशिलेखा टीका के अनुसार यह लाल रंग का तथा सफेद माथे वाला होना चाहिये। ये दोनों विशेषतायें इसमें नहीं पायी जातीं। अतः इसके कुररी होने में कुछ संदेह है। ये विशेषतायें मछमंगा, ढेंक या मछरंग (Palla's Fishing Eagle) में मिलती हैं। इसका वर्णन निम्नलिखित है—

मछमंगा, ढेंक या मछरंग (Palla's or Ringtailed, Fishing Eagle—Haliaeetus ? leucoryphus Pallas, गुजराती नाम—पल्लास नो मच्छीमार गरुड़) :—यह गरुड़ (Eagle) जाति का पक्षी है, चील (Pariah Kite) से काफी बड़ा और भारी पक्षी है। इसकी लम्बाई ३३ इंच होती है। नर-मादा के रूप में कोई अन्तर नहीं होता, किन्तु आकार में मादा अधिक बड़ी होती है। झीलों तथा नदियों के किनारे ये पक्षी जोड़ों में मिलते हैं। इसके पंखों का रंग गहरा भूरा और पूंछ सफेद होती है। इसकी चोंच बड़ी मजबूत और मुड़ी हुई, आंख की पुतली राख वाले रंग की तथा पीली होती है। टांगें सफेद तथा पंजे काले होते हैं।

ह्विसलर ने इसकी पहिचान के सम्बन्ध में लिखा है[१३] कि "यह गहरे भूरे परों, ईषत् श्वेत दिखाई देने वाले सिर तथा पूंछ के पास की सफेद पट्टी से झट पहचान लिया जाता है। यह अपनी ऊँची आवाज के कारण भी ध्यान आकर्षित करता है।"

हमारे देश में यह केवल उत्तरी भारत में गंगा और सिंध के मैदान में पाया जाता है। इसकी दक्षिणी सीमा ठीक निश्चित नहीं है, फिर भी ह्विसलर के मतानुसार यह इन्द्रावती नदी तक मिलता है (पृ० ३६८)।

इसका मुख्य भोजन मछली है। यह मछलीमार (Osprey) की तरह पैर से मछली पकड़ने के लिये बड़े वेग के साथ पानी में घुसता है किन्तु उसकी तरह पानी में पूरी तरह नहीं डूबता। यह शिकार के लिये आकाश में बहुत ऊँचा उड़ता है तथा नीचे अधिक झपट्टा मारने से पहले हवा में एक ओर से दूसरी ओर तक जाता है। पीछा करते हुए इसके डैने धनुषाकार तथा बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं। शक्तिशाली होने पर भी यह बड़ा साहसी पक्षी नहीं है और प्रायः सूखने वाले जोहड़ों तथा उथले पानी में अपना शिकार ढूंढता है। शक्तिशाली होने के कारण यह बहुत बड़ी मछलियाँ पकड़ता है। ह्विसलर ने लिखा है कि इस पक्षी द्वारा एक बार ६½ सेर (१३ पौण्ड) की मछली पकड़ने का वर्णन मिलता है।[१४] जब मछियारे मछलियों से भरा अपना जाल खींचते हैं तो यह प्रायः उनके साथ रहता है और उनसे बची हुई मछलियों को पकड़कर खाता है। मछली के अतिरिक्त यह मेंढक, घायल बतख

१३. Whistler—Op. Cit. P. 368.

१४. Whistler—Ibid P. 369.

तथा चोट खाये हंस को भी खाता है, नर मांस को भी नहीं छोड़ता। ह्विसलर ने गंगा के किनारे इसके प्राय: नरमांस खाने का उल्लेख किया है।

मछरंग डकैती करने से भी नहीं चूकता। जब मच्छीमार (Osprey) तथा टिहरी (Tern) मछली पकड़ते हैं तो यह उनपर झपट्टा मारकर उनसे उनका शिकार छीन लेता है।[१५]

इसकी ध्वनि विशेष प्रकार की है। सालिम अली के मतानुसार यह ऊँची तथा कर्कश होती है तथा गाँव के कुयें पर पानी खींचने वाली लकड़ी की उस घिरनी की तरह से चीं चीं करने वाली होती है, जिसमें तेल न दिया गया हो।[१६] श्री धर्मकुमारसिंहजी ने लिखा है कि इन्हें देखने का सर्वोत्तम समय मार्च और अप्रैल के महीने हैं। इस समय ये एक दूसरे को तार स्वर से (Vociferously) पुकार रहे होते हैं, इनका जोड़ा किसी निर्जन टापू में बैठा हुआ देखा जा सकता है। इसकी ध्वनि ऊँची, स्पष्ट, कुत्ते की कराह या आर्त्तनाद (Yelp) जैसी चीख होती है, जो बड़ी दूर से सुनी जा सकती है।[१७]

ह्विसलर ने इस विषय में लिखा है कि मछरंग उन सबका सुपरिचित पक्षी है जिन्हें कर्त्तव्यवश अथवा आनन्द के लिये उत्तरी भारत की बड़ी नदियों या बड़ी झीलों वाले प्रदेश में जाना पड़ता है। जल्दी ही उनका ध्यान एक ऐसी ऊँची, कर्कश ध्वनि की ओर आकृष्ट होता है, जिसकी तुलना बैलगाड़ी के तेल न दिये गये पहिये की चीं चीं या कड़ कड़ (Shrieking of an Ungreased Cartwheel) से की जा सकती है और जो चौड़े खुले मैदानों में बहुत दूर से सुनी जा सकती है।[१८]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मच्छीमार गरुड़ या मछरंग में कुररी की संस्कृत-साहित्य में वर्णित निम्नलिखित विशेषतायें मिलती हैं—

(१) इसकी ध्वनि आर्त्तनाद के तुल्य होने से विलाप जैसी प्रतीत होती है। यह बहुत दूर से सुनाई देती है तथा जंगल की बड़ी आकर्षक और सुपरिचित ध्वनि है। अतः कालिदास ने सीता के क्रन्दन को कुररी का विलाप बताया है और तुलसीदास जी ने भी इसका अनुसरण करते हुए लिखा है—

बिलपत ज्यों कुररी की नाईं।

(२) यह नदियों तथा झीलों के किनारे पाया जाने वाला जलचर पक्षी है।

(३) योगीन्द्रनाथ सेन के चरकोपस्कार के अनुसार यह चील के आकार का तथा चील के परिवार (Accipitridae) का पक्षी है।

(४) डल्हणाचार्य ने लिखा है कि यह चिरबिल्व के आकार का तथा नदियों से मछलियाँ पकड़ने वाला (चिरबिल्वाकारः नदोत्थापितमत्स्यः) है। चिरबिल्व करंज (Pongamia glabra) को कहते हैं। इसके पके फलों का रंग गहरा भूरा तथा आकार पतला लम्बा होता है। ये दोनों विशेषतायें मछरंग में पायी जाती हैं।

---

१५. Salim Ali :—op. Cit. P. 70

१६. Ibid.

१७. Dharmakumarsinghji :—op. Cit P. 37. The call is a loud and distainct yelp which can be heard at a great distance.

१८. Whistler ;—Ibid. P. 369.

(५) अष्टांग संग्रह की शशिलेखा टीका के अनुसार कुरर अरुण वर्ण का तथा श्वेत मस्तक तथा हाथ से मछली छीनने वाला है। ये तीनों विशेषतायें इसमें मिलती हैं। मोनियर विलियम्ज तथा आप्टे कोषों के अनुसार अरुण का अर्थ है—(Reddish brown, tawny, red, ruddy)। मछरंग के उपरले भाग का रंग लालिमायुक्त भूरा होता है। ह्विसलर (पृ० ३६७) तथा सालिमअली (पृ० ७०) ने मछरंग का यही रंग लिखा है।

शशिलेखा द्वारा वर्णित दूसरी विशेषता मस्तक का श्वेत होना है। ह्विसलर ने इस विषय में लिखा है कि इसका माथा कुछ सफेद (Forehead whitish) होता है तथा इसी प्रकार सिर, गर्दन, ठोड़ी और गला भी कुछ सफेद होता है। वस्तुतः इसमें पीलेपन की कुछ झलक मिली होती है।

तीसरी विशेषता हाथ से मछली पकड़ने की है। यह पहल बताया जा चुका है कि यह डकैती और तस्कर वृत्ति से निर्वाह करता है तथा मच्छीमार आदि पक्षियों द्वारा पकड़ी हुई मछलियों को उनसे छीन लेता है।

इस प्रकार मछरंग या मच्छीमार गरुड़ (Fishing Eagle) में संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित कुररी की सब विशेषतायें पायी जाती हैं, अतः इसी को कुररी मानना उचित प्रतीत होता है।

१५ कंक

कालिदास ने कंक का उल्लेख एक बार (रघुवंश २।३१) किया है। राजा दिलीप सन्तान प्राप्ति के लिए इक्कीस दिन तक नन्दिनी गौ को सेवा में लगे रहे, बाइसवें दिन नन्दिनी उनकी भक्ति की परीक्षा लेने के लिए हिमालय पर्वत की एक गुहा में घुसी, यहाँ एक सिंह ने गौ पर आक्रमण किया और उसे दबोच लिया। उस समय गौ की रक्षा के लिए जब राजा अपने तूणीर से बाण निकालकर सिंह का संहार करना चाहते हैं तो अज्ञात दैवी शक्ति से उनका हाथ निश्चल हो जाता है, उंगलियां बाण को निकालना चाहती हैं, पर उनके साथ चिपक जाती हैं, वे तीर नहीं चला सकते। इसका वर्णन करते हुए कालिदास ने कहा है कि—सिंह पर प्रहार करने वाले उस राजा के दाँये हाथ की उंगलियां, नाखूनों की कान्ति से चमकने वाले कंक पक्षी के परों वाले बाणों के निचले हिस्से में जम गईं और राजा ऐसा खड़ा हो गया, जैसे बाण निकालने का यत्न करने वाले राजा का किसी ने चित्र खींच दिया हो। जैसे चित्र में कोई गति नहीं होती, वैसे ही राजा निश्चल हो गया।

कंक

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तु —
र्नखप्रभाभूषित कंकपत्रे।
सक्तांगुलिः सायकपुङ्ख एव
चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे ॥
रघुवंश २।३१

कालिदास ने कंक की केवल एक विशेषता बतायी है कि उसके पर बाण में लगाये जाते हैं, किन्तु यह नहीं बताया कि कंक कौन सा पक्षी है तथा उसका क्या स्वरूप है। इसे जानने के लिए संस्कृत साहित्य में कंक के अन्य उल्लेखों का निर्देश आवश्यक प्रतीत होता है।

वैदिक साहित्य में कंक की चर्चा कई स्थानों पर आयी है। तैत्तिरीय संहिता (४।५।११।१) में कंक के आकार की यज्ञवेदी बनाने का वर्णन है[1]। शुक्ल यजुर्वेद (२४।३१)

१. तै० सं० ५।४।११ कंकचितं चिन्वीत।

में अश्वमेध के प्रकरण में तथा मैत्रायणी संहिता (३।१४।१२) में कंक का संबन्ध दिशाओं के साथ बताया गया है[२]। सामवेद संहिता (२।६।६।१) में उत्तम पंखवाले (सुपर्ण) कंकों का गृध्रों के साथ वर्णन करते हुये इनके अनुगमन का वर्णन है।[३]

महाभारत के स्त्रीपर्व में कंक का कई स्थानों पर उल्लेख हुआ है। महाभारत का भीषण युद्ध समाप्त होने पर वेदव्यास के वरदान से प्राप्त दिव्य दृष्टि द्वारा गान्धारी रणस्थल में मारे गये वीर योद्धाओं की दुर्दशा का तथा इनके लिए विलाप करती हुई स्त्रियों का बड़ा करुण एवं मार्मिक चित्र उपस्थित करती है। यहाँ बार-बार मृत योद्धाओं के शवों का भक्षण करने वाले पक्षियों में गीधों के साथ कंक की गणना की गयी है। वह रणक्षेत्र हड्डियों, केशों और चर्बियों से भरा था, रक्त के प्रवाह से आप्लावित हो रहा था कई हजार लाशें वहाँ चारों ओर बिखरी हुई थीं। (११।६।५)……हाथियों, घोडों और स्त्रियों के आर्त्त नाद से सारा युद्धस्थल गूँज रहा था। सियार, बगुले, काले कौए, कंक और काक उस भूमि का सेवन करते थे।[४] जयद्रथ, द्रोणाचार्य, कर्ण जैसे जो योद्धा अवध्य समझे जाते थे, वे भी मारे गये और अचेत एवं प्राणशून्य होकर वहाँ पड़े हैं। गीध, कंक, बटेर, बाज, कुत्ते और सियार उन्हें अपना भोजन बना रहे हैं।[५] इसी प्रकार अवन्तिनरेश के शव के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसे सियार, कंक और नाना प्रकार के मांसभक्षी जीव जन्तु इधर-उधर खींच रहे हैं।[६] महाभारत के इन वर्णनों से यह स्पष्ट है कि कंक गीध जैसा मृतमांसभोजी पक्षी है।

भागवत पुराण (३।१०।२४) में मैत्रेय द्वारा सृष्टि के विकास की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए २८ प्रकार के पक्षियों का परिगणन किया गया है, इनमें कंक का उल्लेख है।[७] किन्तु इसमें इसके स्वरूप का कोई ऐसा विशेष वर्णन नहीं है, जिससे इसकी सही पहिचान में सुविधा हो सके।

इस कमी को कुछ कोशों तथा आयुर्वेद के ग्रन्थों ने पूरा करने का प्रयत्न किया है।

---

२. शुक्ल यजुर्वेद २४।३१ मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे दिशां कङ्कः। मि. मैत्रायणी संहिता ३।१४।१२

३. सामवेद २।६।६।१, कंकाः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नसावस्तु सेना।

४. महाभारत ११।१६।७, गजाश्वनरनारीणां निस्वनैरभिसंवृतम्।
शृगालबककाकोलकंक काकनिषेवितम्।

५. वही ११।१६।२६,
अवध्यकल्पान् निहतान् गतसत्वानचेतसः।
गृध्रकंकवटश्येनश्वशृगालादनीकृतान्॥

६. वही ११।२२।३
तं शृगालाश्च कंकाश्च क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः।
तेन तेन विकर्षन्ति पश्य कालस्य पर्ययम्॥

७. भागवत पुराण ३।१०।२४,
कंकगृध्रवटश्येनभासभल्लकबर्हिणः।
हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयखगाः॥

अमर कोश में (२।२।१६) में कहा गया है कि यह लाल पीठ वाला (लोहपृष्ठ) होता है।[८] त्रिकाण्ड शेष (२।५।१६) के मतानुसार लोहपृष्ठ के अतिरिक्त इसकी दूसरी विशेषता लम्बे पाँव (दीर्घपाद) होने की है। यादव के वैजयन्ती कोश (अन्तरिक्षा काण्ड, खगाध्याय, श्लोक ३१) में इसके सम्बन्ध में निम्न श्लोक है—

कंकस्तु कर्कटस्कन्धः पर्कटः कमलच्छदः।
दीर्घपादः प्रियापत्यो लोहपृष्ठश्च मल्लकः।।

सुश्रुत के टीकाकार डल्हणाचार्य (सूत्रस्थान अध्याय ४६) ने इसके स्वरूप पर अधिक प्रकाश डालने वाला यह श्लोक लिखा है—

कंकःस्यात् कंकमालाख्यो बाणपत्रार्हपक्षकः।
लोहपृष्ठो दीर्घपादः पश्चाधःपाण्डुवर्णभाक्।।

कंक के अन्य नाम ये हैं—कंकमाल, बाणपत्रार्हपक्षक अर्थात् जिसके पंख बाण में लगाये जाने योग्य हैं,[९] लोहपृष्ठ या पीठ पर लाल रंग के पंखों वाला, लम्बे पाँव वाला (दीर्घपाद), इसका पिछले आधे हिस्से का रंग पाण्डु (सफेद-पीला) होता है।

राजनिघण्टु (१९।१७) ने कंक की विशेषताओं पर प्रकाश डालने वाले पर्यायों का उल्लेख करते हुए कहा है—

कंकस्तु लोहपृष्ठः स्यात्संदंशवदनः खरः।
रणालंकरणः क्रूरः स च स्यादामिषप्रियः।

अर्थात् कंक के ये नाम हैं—लोहपृष्ठ, संदंशवदन[१०] (संडासी या पकड़ने वाली चिमटी जैसे मुँह वाला), खर (तेज), रणस्थल में मृत व्यक्तियों का मांस खाने के कारण उसकी शोभा वाला (रणालंकरण), क्रूर तथा मांस का प्रेमी (आमिषप्रिय)।

---

८ अमरकोश २।५।१६, लोहपृष्ठस्तु कंकः स्यात्। क्षीरस्वामी की टीका-लोहवर्णं पृष्ठमस्य।

९. प्राचीनकाल में बाणों को वेग प्रदान करने के लिये उनमें विभिन्न पक्षियों के पंख लगाने की परिपाटी थी। इस विषय में शार्ङ्गधरपद्धति (पीटर्सन द्वारा सम्पादित संस्करण खण्ड १, १८८८ ई०) का यह श्लोक उल्लेखनीय है—

काकहंसशशादीनां मत्स्यादक्रौञ्चकेकिनाम्
गृध्राणां कुरराणाञ्च पक्षा एते सुशोभनाः
एकैकस्य शरस्यैव चतुःपक्षानि योजयेत्।।

कौए, हंस, शश (?) मच्छीमार, क्रौञ्च, मोर, गृध्र और कुरर पक्षियों के पंख इस कार्य के लिए उत्तम होते हैं। एक बाण में इनके चार पंख लगाने चाहियें। भवभूति ने बाण में लगाये जाने वाले कंक के पंख (कंक पत्र) का उल्लेख उत्तररामचरित (४।२०) तथा महावीर चरित (१।१८) में किया है। इसके पंख से प्रायः सुभूषित होने के कारण संस्कृत में बाण को कंकवासस् (रामायण (५।२१।२६) भी कहते हैं। रामायण (६।२८।४) में भी कंकपत्र का उल्लेख है (विव्युधुर्घोररूपास्ते कंकपत्रैरजिह्मगैः)।

१०. इस विषय में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि शल्यतन्त्र के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत संहिता (सूत्रस्थान अध्याय ७) ने चीरफाड़ में प्रयोग किये जाने वाले यंत्रों में स्वस्तिक यन्त्रों या शल्य को निकालने

इस विषय में कुछ मध्यकालीन कोष बड़ा सुन्दर प्रकाश डालते हैं । श्री हेमचन्द्र के अभिधान चिन्तामणि (भूमि काण्ड, श्लोक ३९९) में कंक के पर्यायों की गणना करते हुए कहा गया है—

कंकस्तु कमलच्छदः ।
लोहपृष्ठो दीर्घपादः कर्कटः स्कन्धमल्लकः ।।

इसके टीकाकार ने स्कन्धमल्लक शब्द को व्याख्या करते हुए यह कहा है कि इसे यह नाम देने का यह कारण है कि इसके कंधे बड़े मजबूत होते हैं (स्कन्धेन मल्लः समर्थः) ।

१६४९ ई० में कोषकल्पतरु का प्रणयन करने वाले श्री विश्वनाथ ने इसके निम्नलिखित पर्यायों की गणना की है[11]—लोहपृष्ठ, कंक, कमनच्छद (सुन्दर पंखों वाला) स्कन्धमल्ल, दीर्घ-पाद, कालपुच्छ ।

शब्द कल्पद्रुम में कंक की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है कि उड़ने के कारण इसे यह नाम दिया गया है। (कंकते उद्गच्छति कंकिगतौ) लोक भाषा में इसका नाम कांक है । विभिन्न कोषों के आधार पर इसके निम्नलिखित बारह पर्याय हैं—लोहपृष्ठ, संदंशवदन, खर, रणालं-करण, क्रूर, आमिषप्रिय, अरिष्ट, कालपुष्ट, किंशारु, लोहपृष्ठक, दीर्घपाद, दीर्घपात् ।

उपर्युक्त कोषों के आधार पर कंक की सामान्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) अमरसिंह, डल्हण, यादव, राजनिघण्टुकार, हेमचन्द्र और विश्वनाथ आदि सभी कोषकारों ने एक स्वर से इसे लाल पष्ठभाग वाला पक्षी कहा है, अतः इसके उपरले पंखों का रंग लाल होना चाहिये ।

(२) संभवतः लाल रंग के पंखों के कारण विश्वनाथ ने इसे सुन्दर या कमनीय पंखों वाला (कमनच्छदः) कहा है । हेमचन्द्र और वैजयन्ती के कमलच्छद का भी अर्थ यही प्रतीत होता

के लिये प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न प्रकार की चिमटियों (Forceps) को सिंह, व्याघ्र, भेड़िया आदि पशुओं, कौआ, कंक आदि पक्षियों के मुँह के समान बनाने को कहा है । इन सब में कंक के समान मुँह वाली चिमटी सबसे अधिक महत्त्व रखती थी क्योंकि वह ठीक तरह से व्रण में प्रवेश कर सकती है । शल्य को पकड़ने के लिये उसे अन्दर इधर-उधर सुगमता से घुमाया जा सकता है, उससे शल्य जल्दी निकाला जा सकता है और उसे शरीर के सभी अंगों में प्रयुक्त किया जा सकता है—

निवर्तते साध्ववगाहते च शल्यं निगृह्योद्धरते च यस्मात् ।
यंत्रेष्वतः कंकमुखं प्रधानं स्थानेषु सर्वेष्वधिकारि चैष ।।

सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ७।२३।

वेणी संहार नाटक (५।१) में कंकमुख चिमटी से शल्यों के निकालने का उल्लेख है (शल्यानि व्यपनीय कंकवदनैसन्मोचिते कंकटे) । मि० वाल्मीकिरामायण ६।७९, व्याघ्रसिंहमुखान् काककंकमुखानपि ।

११. विश्वनाथकृत कोषकल्पतरु, मधुकरमंगेश पटकर तथा कृष्णमूर्ति शर्मा द्वारा संपादित संस्करण (पूना १९५७) पृ० १९६

कंकस्तु लोहपृष्ठः स्यात्कंकरः कमनच्छदः ।
स्कन्धमल्लो दीर्घपादः कालपुच्छश्च संमतः ।।

है कि जिसके पंख लाल कमल की पंखड़ियों के समान हैं।

(३) प्रायः सभी कोषकार इसे लम्बे पाँवों वाला (दीर्घपाद) मानते हैं।

(४) महाभारत से स्पष्ट है कि इस पक्षी का प्रिय आहार मांस है। राजनिघण्टु ने इसीलिए इसे आमिषप्रिय और रणालंकरण के नाम दिये हैं।

(५) इसके कन्धे मजबूत होते हैं। अतः इसे अभिधानचिन्तामणि ने स्कन्धमल्लक का नाम दिया है। इनकी कुछ समानता केंकड़े (कर्कट) से होती है, अतः वैजयन्ती ने इसे कर्कटस्कन्ध का नाम दिया है।

(६) डल्हण ने इस पक्षी की एक महत्त्वपूर्ण पहिचान पिछले निचले हिस्से का सफेद पीला रंग बताया हैं (पश्चाधः पाण्डुवर्णभाक्)।

(७) यह बक (बगुले) जाति का पक्षी है। उव्वट ने शुक्ल यजुर्वेद (२४।३१) के उपर्युक्त मंत्र पर टीका करते हुए लिखा है—एकः कंकः वकः दिशां दिग्भ्यः। इससे यह स्पष्ट है कि यह बगुले की जाति का कोई पक्षी होना चाहिये।

कंक का स्वरूप—इस विषय में आधुनिक विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। मैकडानल और कीथ ने जर्मन विद्वान् जिम्मर का अनुसरण करते हुए लिखा है कि इसका अर्थ प्रायः बगुला (Heron) किया जाता है, किन्तु कुछ स्थलों में यह शिकार करने वाला कोई पक्षी है।[१२] गुस्टाव आपर्ट ने वैजयन्ती कोष का सम्पादन करते हुए इसे एक प्रकार का गीध (A Kind of Vulture) लिखा है।[१३]

वैदिक साहित्य और महाभारत के कुछ स्थलों में इसका अभिप्राय गीध के किसी भेद या उपजाति से हो सकता है, किन्तु काव्य साहित्य का कंक गृध्र का कोई भेद नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें कंक की जो विशेषतायें बतायी गई हैं, वे गीधों में नहीं मिलतीं। कंक को लाल रंग के पंखों वाला, सुन्दर पंखों वाला तथा लम्बी टांगों वाला कहा गया है। ये तीनों बातें गीधों में नहीं होतीं। उनके पंखों का रंग राख जैसा मटमैला, काला और सफेद होता है, लाल नहीं। उनके पंख शक्तिशाली होने पर भी, आकर्षक एवं सुन्दर नहीं होते, उनकी टाँगें भी लम्बी नहीं होतीं। अतः कंक गृध्र नहीं हो सकता।

उव्वट के कथनानुसार कंक बगुले की जाति का कोई पक्षी है। किन्तु उसने इसकी जाति का निर्देश नहीं किया। श्री सत्यचरण लाहा ने अपनी बंगला पुस्तक कालिदासेर पाखी में यह सिद्ध किया है कि कंक बैंगनी रंग का बगुला (Purple Heron, Ardea purpurea manillensis Meyen) है।[१४]

किन्तु यह मत ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि कंक की मुख्य विशेषता लाल रंग की है, यह इसके पंखों का मुख्य रंग है। लेकिन बैंगनी बगुले के नाम से ही स्पष्ट है कि उसका प्रधान रंग बैंगनी है, इसके शरीर पर गहरे राख जैसे रंग के तथा बैंगनी वर्ण की आभा लिये पंखों

---

१२. वैदिक इंडैक्स १।१३२, इसके शिकारी पक्षी होने का प्रमाण शांखायन आरण्यक (१२।१३) का एक उद्धरण है।

१३. वैजयन्ती कोष का गुस्टाव आपर्ट का संस्करण पृ० ३६३।

१४. कालिदासेर पाखी पृ० १७४,

की प्रधानता है। यद्यपि इसकी छाती लाल भूरे रंग की होती है, सिर और गर्दन पर भी इसी रंग की एक धारी पायी जाती है, किन्तु इसकी पीठ के परों का मुख्य रंग एक छोटी लालधारी होते हुए भी मुख्य रूप से स्लेटी और राख के रंग का है।[१५] इसे किसी भी दशा में लोहपृष्ठ नहीं कहा जा सकता। इसके रंग सुन्दर भी नहीं हैं, जिस कारण इसे 'कमनच्छद' कहा जा सके। डल्हण के मतानुसार इसका पिछला भाग पीला-सफेद होना चाहिये। यह विशेषता भी इसमें नहीं पायी जाती। अतः यह बैंगनी बगुला (Purple Heron) नहीं हो सकता।

कंक की उपर्युक्त छहों विशेषतायें लाल बगुले (Chestnut Bittern, Iscobrychus cinnmomeus Gmelin) में पायी जाती हैं, अतः इसी को कंक मानना उचित प्रतीत होता है।

इसमें कंक की लोहपृष्ठ की विशेषता मिलती है। इसकी पीठ के परों का रंग लाल (Chestnut) होता है। यह लम्बे पाँव वाला (दीर्घपाद) है। इस पक्षी का प्रिय आहार अन्य बगुलों की भाँति मछलियाँ, केंकड़े आदि जलीय जन्तु हैं। इसके कन्धे आकार में केंकड़े के कन्धों से सादृश्य रखते हैं। डल्हण द्वारा वर्णित पीला और सफेद रंग इनके निचले और पिछले भाग में पाया जाता है। इस विषय में ह्विसलर ने लिखा है कि इसके समूचे निचले पंख गहरे पीले गेरुए रंग (Rich tawny ochraceous) के, परों के मूल भाग (पक्षति) सफेद रंग के होते हैं और गले के दोनों ओर सफेद धारी होती है।[१६] मादा के पंखों का रंग हल्का और नर जैसा आकर्षक नहीं होता।

लाल बगुले की आँख पीली और लाल, चोंच पीली तथा अगले भाग में काली, टाँगें पीली हरी, सिर छोटा, गर्दन लम्बी, डैने गोल और पूँछ छोटी होती है।

यह पक्षी भारत के सभी भागों में नदियों, झीलों, नहरों के किनारे, धान के खेतों, दलदली प्रदेशों में, सरकण्डों की झाड़ियों में पाया जाता है। दिन के समय यह घनी झाड़ियों में छिपा रहने के कारण बहुत कम दिखाई देता है। रात के समय यह अपने आहार की खोज में खुले स्थानों—झीलों, तालाबों के किनारे आता है, मछली, मेंढ़क, कीड़े तथा जलीय जन्तु खाता है। अन्य बगुलों के समान यह निश्चल खड़ा होकर असीम धैर्य के साथ अपने शिकार की प्रतीक्षा करता है और इसे देखते ही फौरन इस पर झपट पड़ता है। इस पक्षी की एक विशेषता यह भी है कि संकट आने पर यह अपना सिर और गर्दन आकाश की ओर ऊँचा करके और पंख सिकोड़कर बिल्कुल निश्चल खड़ा हो जाता है, इस समय यह अपने पंखों के रंग के कारण आस-पास की झाड़ियों के रंग वाला तथा उनसे सर्वथा अभिन्न दिखाई देता है और इसका शिकार करने वाले पक्षी इसे आसानी से देख नहीं पाते और यह उनके चंगुल में फंसने से बच जाता है। वर्षा काल में जून से सितम्बर तक इनका सन्तानोत्पादन काल है।

इसकी चोंच ह्विसलर के शब्दों में सुदृढ़, सीधी और नुकीली (Stout Straight, and pointed) होती है (पृ० ५१६)। यह हमें सुश्रुत के उपर्युक्त कंकमुखयन्त्र का स्मरण कराती है, जिसे उसने शल्यों के निकालने में सर्वश्रेष्ठ बताया है।

---

१५. Dharmakumarsinghji :—Birds of Saurashtra. P. 70.

१६, Whistler :—Popular Handbook of Indian Birds, P. 515,

लाल बगुले में लाल पीले, हरे श्वेत रंगों का बड़ा कमनीय संयोग हुआ है, अतएव प्राचीन साहित्य में इसे सुन्दर पंख वाला (कमनच्छदः) या कमल जैसे पंखों वाला (कमलच्छदः) कहा गया है। संभवतः पंखों के आकर्षक और भड़कीले रंगों के कारण इसे प्राचीन काल में बाणों में लगाना बहुत पसन्द किया जाता था। कंकपत्र की ख्याति का रहस्य यही रहा होगा। कंक की सब विशेषतायें लाल बगले में पायो जाने के कारण इसी को कंक मानना उचित प्रतीत होता है।

सारस | १६

कालिदास ने सारस का उल्लेख अपने काव्यों तथा नाटकों में आठ स्थलों पर किया है। इनमें उसके जलचर पक्षी के रूप में नदियों तथा सरोवरों में निवास, क्रीड़ा, कूजन तथा आकाश में पंक्ति बाँधकर उड़ने का वर्णन है। इस विषय में उसके श्लोक तथा उल्लेख निम्न-लिखित हैं।

सारसों का निवास-स्थान—इनका निवास कालिदास के ग्रन्थों में सरोवर तथा नदियाँ माने गये हैं। संस्कृत में सारस को यह नाम देने का कारण भी यही है कि यह सरोवर में रहता है तथा सरोवर से सम्बद्ध है[1]। कालिदास ने सरोवरों के वर्णन के साथ प्रायः इसका उल्लेख किया है। लंका-विजय के बाद पुष्पक विमान पर सवार होकर अयोध्या वापिस लौटते हुए श्री रामचन्द्र जी सीता को पम्पा सरोवर दिखाते हुए कहते हैं कि बहुत दूरी होने के कारण और बेंत के जंगलों से ढका होने के कारण पम्पा सरोवर का जल ठीक-ठीक नहीं दिखाई पड़ रहा है; फिर भी जल पर तैरते हुए चंचल सारस कुछ-कुछ दिखाई पड़ जाते हैं—
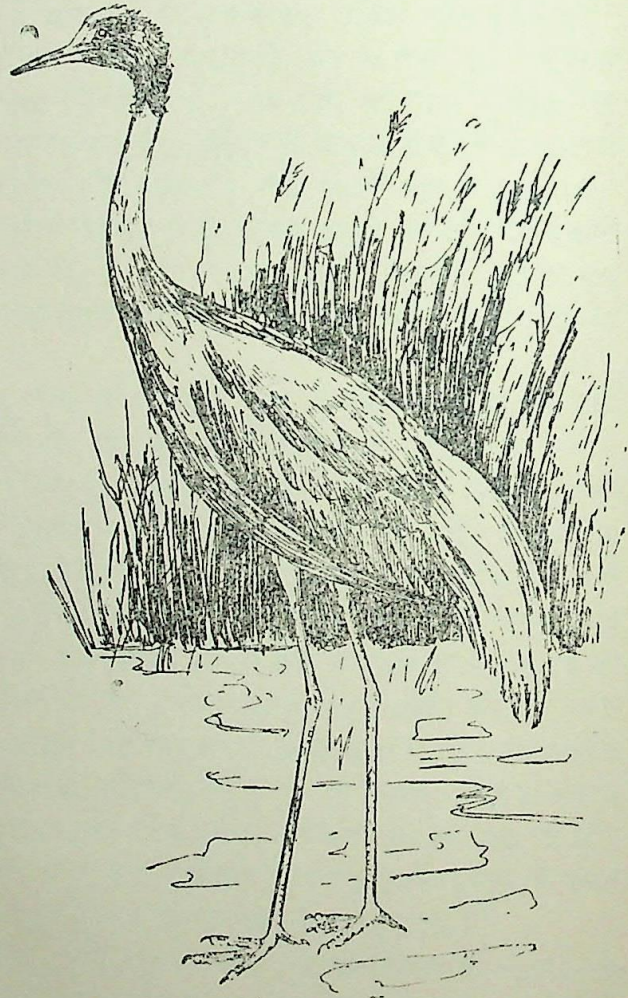
१. शब्दकल्पद्रुम में तथा हलायुध कोष की टीका में इसकी व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है कि "सरसि भवः सारसः"। आप्टे कोष में इसकी व्युत्पत्ति है "सरस इदम्" अर्थात् सरोवर से सम्बन्ध

उपान्तवानीरवनोपगूढा-
न्यालक्ष्य पारिप्लवसारसानि ।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदा-
दमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ।।

रघुवंश १३।३०

पुष्पक विमान के उत्तर की ओर अधिक आगे बढ़ने पर गोदावरी नदी दृष्टिगोचर होती है। इसमें भी सारसों की पंक्तियाँ उड़ रही हैं। कालिदास ने इस पर यह कल्पना की है कि विमान के साथ बंधी सोने की घण्टियों का मधुर शब्द सुनकर सारसों की पंक्तियाँ इनके मधुर स्वर से आकृष्ट होकर विमान की ओर उड़ रही हैं। श्री रामचन्द्र जी सीता से यह कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि ये सारस तुम्हारा स्वागत करने के लिये आ रहे हों—

अमू विमानान्तरलम्बिनीनां ।
श्रुत्वा स्वनं कांचन किंकणीनाम् ।।

रखने वाला। इन कोषों में इसके जो विभिन्न पर्याय दिये हैं, उनसे भी इसकी यह विशेषता सूचित होती है। इसे पुष्कर, पुष्कराह्व, पुष्कराख्य, गोनर्द, सरसौक और सरोत्सव कहते हैं। पुष्कर तालाब को कहते हैं, उसमें रहने के कारण इसे भी पुष्कर कहा जाता है और ऐसा नाम होने से इसे पुष्कराह्व (पुष्करस्याह्वा नाम यस्य सः) तथा पुष्कराख्य (पुष्करस्याख्या यस्य सः), सरसौक (सरोवर है घर जिसका), सरोत्सव (सरोवर की शोभा) तथा गोनर्द (अर्थात् जल में कूजन करने वाला, गवि जले नर्दति कूजति—शब्दकल्पद्रुम) कहा जाता है। आप्टे कोष के अनुसार (ख. ३ पृ० ६५४) तालाब में जन्म लेने के कारण इसका नाम सरसिज (सरसि जातः) भी है। सरसिज कमल को भी कहते हैं। अतः कमलवाची पुष्कर आदि शब्दों को भी सारस का पर्याय माना जाता है।

उपर्युक्त व्युत्पत्ति के कारण सरोवर से सम्बन्ध रखने वाले सभी जलचर पक्षियों को सारस कहा जा सकता है। अतः संस्कृत में सारस के तीन अर्थ आप्टे कोषकार ने दिये हैं—The (Indian) Crane or swan, (according to some) a bird in general. मल्लिनाथ द्वारा किरातार्जुनीय (८।३१) में शब्दार्णव का यह वाक्य उद्धृत किया गया है कि चक्रांगः सारसो हंसः। इसमें चक्रवाक, सारस और हंस को एक कर दिया गया है। किरातार्जुनीय के निम्न श्लोक (८।३१) में मल्लिनाथ ने सारस को हँस का पर्याय माना है—

विगाढ़मात्रे रमणीभिरम्भसि प्रयत्नसंवाहितपीवरोरूभिः।
विभिद्यमाना विससार सारसानुदस्य तीरेषु तरंगसंहतिः।।

इसका तात्पर्य यह है कि सुन्दरियों के सरोवर में प्रविष्ट होते ही लहरें उत्पन्न हुईं और सारस वहाँ से निकल भागे। सारस का अर्थ यहाँ सामान्य जलचर पक्षी करना ही उचित प्रतीत होता है। पक्षी ऐसा होने पर भाग खड़े होते हैं, यह उनका स्वभाव है। वस्तुतः शब्दार्णव के उपर्युक्त उद्धरण में बताये गये तीनों पक्षी चकवा, सारस और हंस विभिन्न जातियों के हैं, वैज्ञानिक दृष्टि से उन्हें पर्याय कहना सर्वथा भ्रान्त है।

प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो
गोदावरीसारसपंक्तयस्त्वाम् ।।

रघुवंश १३।३३

ऋतुसंहार में ग्रीष्म ऋतु के वर्णन के प्रसंग में कवि ने सरोवर में हाथियों के उत्पात का बड़ा हृदयग्राही शब्दचित्र उपस्थित करते हुए कहा है—यहाँ पर हाथियों ने एक दूसरे को टक्कर मारकर सब कमल-नाल उखाड़ डाले हैं, मछलियाँ मर गई हैं, सारस डरकर भाग गये हैं, और तालाब में खूब घना कीचड़ हो गया है—

समुद्धृताशेषमृणालजालकं
विपन्नमीनं द्रुतभीतसारसम् ।
परस्परोत्पीडनसंहतैर्गजैः
कृतं सरः सान्द्रविमर्दकर्दमम् ।।

ऋतुसंहार १।१६

शरद् ऋतु में सारसों के झुण्डों का नदी के किनारे रहने का उल्लेख करते हुए कालिदास ने कहा है कि इस ऋतु में जिन नदियों की लहरें कारण्डव पक्षियों की चोंचों से टकराती हैं, जिनके किनारे कादम्ब और सारस पक्षियों के झुण्डों से भरे हुए हैं, जिन पर हँस कूजन कर रहे हैं, जिनका जल कमल के पराग से लाल हो गया है, वे नदियाँ लोगों को बहुत अच्छी लग रही हैं—

कारण्डवाननविघट्टितवीचिमालाः
कादम्बसारसकुलाकुलतीरदेशाः ।
कुर्वन्ति हंसविरुतैः परितो जनस्य
प्रीतिं सरोरुहरजोरुणितास्तटिन्यः ।।

ऋतुसंहार ३।८

सारस का सरोवर तथा जल के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है । अतः जैसे यह अनुमान किया जाता है कि जहाँ धुआँ दिखाई दे, वहाँ अग्नि अवश्य होनी चाहिये । (यत्रयत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः), वैसे ही यह कल्पना भी की जा सकती है कि जहाँ सारसों का कूजन सुनाई दे वहाँ तालाब अवश्य होगा । कालिदास ने इस अनुमान का प्रयोग मालविकाग्निमित्र में बड़ी कुशलतापूर्वक किया है । इसके तृतीय अंक में राजा अग्निमित्र प्रमदवन में विदूषक से यह समाचार सुनता है कि उसकी प्रेयसी मालविका समीप ही आई हुई है । इससे प्रसन्न होकर वह विदूषक को कहता है कि जैसे जल चाहने वाला प्यासा पथिक सारस का शब्द सुनकर यह विश्वास कर लेता है कि सघन वृक्षों के पीछे कोई नदी होगी, इसी प्रकार तुम्हारे मुँह से मालविका के निकट होने का समाचार जानकर मेरे विह्वल हृदय को बड़ा धैर्य मिला है—

त्वदुपलभ्य समीपगतां प्रियां
हृदयमुच्छ्वसितं मम विक्लवम् ।
तरुवृतां पथिकस्य जलार्थिनः
सरितमारसितादिव सारसात् ।।

मालविकाग्निमित्र ३।६

सारस
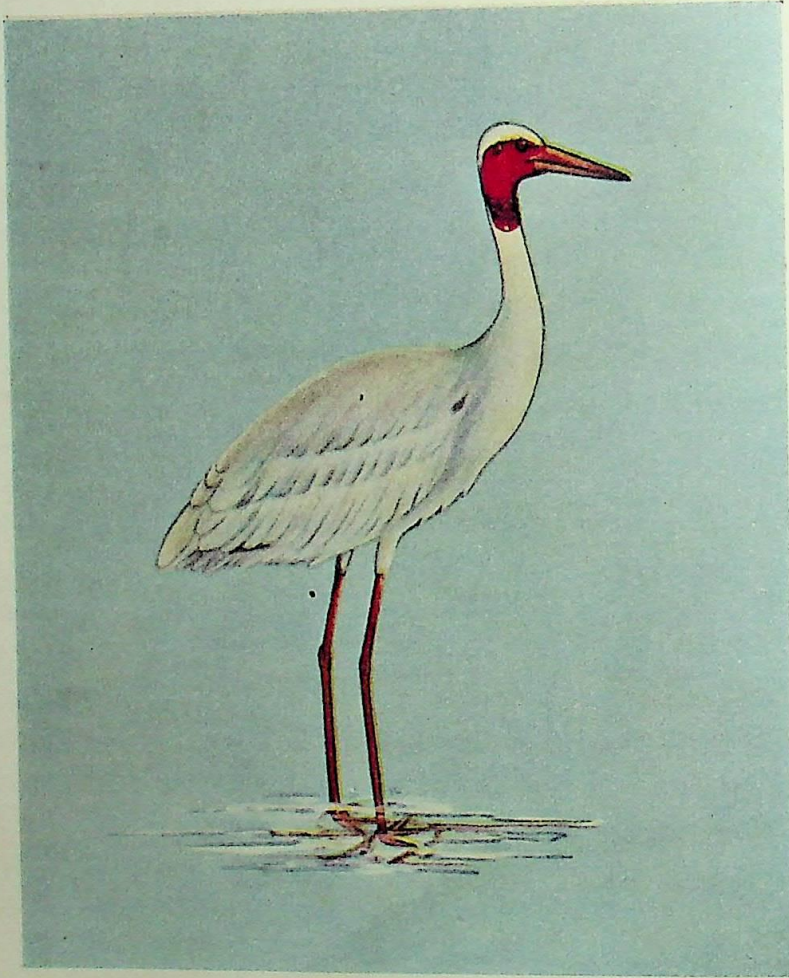
श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम् ।
सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ ॥

रघुवंश-१।४१

मेघदूत में वर्षा ऋतु के समय उज्जयिनी में शिप्रा नदी के तट पर प्रातःकाल सारसों के मधुर कूजन का उल्लेख किया गया है। विरही यक्ष मेघ से उज्जैन का वर्णन करते हुए कहता है—यहाँ मद (कामोन्माद) के कारण मधुर सारसों की ध्वनि को दूर तक प्रसारित करता हुआ, प्रातःकाल खिले हुए कमलों की गन्ध में बसा हुआ तथा शरीर को सुहावना लगने वाला शिप्रा नदी का वायु स्त्रियों की सम्भोग के कारण हुई थकावट को वैसे ही दूर कर रहा होगा, जैसे चतुर प्रेमी मीठी बातें बनाकर अपनी प्रियतमा की थकान दूर करता है—

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः॥

मेघदूत ३१

रघुवंश (१।४१) में सारसों की मधुर ध्वनि और सुन्दर उड़ान का एक मनोमोहक शब्द-चित्र महाकवि ने प्रस्तुत किया है। राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा सन्तान न होने के कारण बड़े व्यथित हैं। वे इस दुःख के प्रतिकार का उपाय अपने कुलगुरु वसिष्ठ जी से पूछने के लिये रथ में बैठकर अयोध्या से उनके आश्रम की ओर जाते हैं। मार्ग में उन्हें दिखाई पड़ने वाले अनेक रमणीय नैसर्गिक दृश्यों का उल्लेख कालिदास ने रघुवंश के पहले सर्ग में किया है। इनमें से एक दृश्य सारसों का कलकूजन और पंक्ति बाँधकर उड़ना है। कई बार राजा-रानी इनकी मधुर ध्वनि को सुनकर उन्हें देखने के लिए जब अपना मुँह आकाश की ओर ऊँचा उठाते थे, तब उन्हें विशेष श्रेणियाँ या पांतें बांधकर उड़ने वाले सारस ऐसे दिखाई देते थे मानो खम्भों के बिना ही बन्दनवार (तोरणस्रज) टंगी हो—

श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम्।
सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ॥

रघुवंश १।४१

कालिदास के उपर्युक्त पद्यों से यह स्पष्ट है कि उसके सारस में निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

(१) वह सरोवरों में रहने वाला जलचर पक्षी है। सरोवरों के साथ उसका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि दूर से उसकी आवाज सुनकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ निकट ही जल अवश्य होगा।

(२) वर्षा ऋतु में कामोन्माद के कारण सारस मधुर ध्वनि करते हैं।

(३) सारसों का कूजन बहुत मञ्जुल होता है।

(४) सारस उड़ते हुए तोरण की माला के आकार की पंक्तियाँ बनाते हैं।

(५) सारस पम्पा सरोवर (रघु० १३।३०), गोदावरी नदी (१३।३३), उज्जयिनी और अयोध्या के आस-पास पाये जाते हैं।

(६) सारस ग्रीष्म और शीत ऋतुओं में दिखाई देते हैं। आधुनिक पक्षिविज्ञान इन सभी बातों को सत्य मानता है।

वर्तमान विहगविद्याविशारद सारस (Crane) को Gruiformes वंश (Order) के

Gruidae परिवार का मानते हैं । भारत में सारस (Crane) के तीन भेद पाये जाते हैं—

(१) Sarus Crane, Grus antigone Linnaeus.

(२) सामान्य सारस (Common Crane, Grus grus lilfordi Sharpe)

(३) करकरा The Demoiselle Crane, Anthropoides Virgo (Linnaeus)

इन तीनों के वैज्ञानिक वर्णन से इनकी विशेषतायें स्पष्ट हो जायेंगी ।

(१) सारस (Saras Crane)—यह आकार में ५ फीट का होता है । नर-मादा एक जैसे होते हैं । इसके सिर का निचला भाग तथा गर्दन का उपरला भाग, टांगे और पैर चमकीले लाल रंग की होती हैं, किन्तु सिर का उपरला तथा गर्दन का निचला भाग श्वेत वर्ण का होता है । शेष शरीर के पंख राख जैसे धूसर वर्ण के होते हैं । चोंच लम्बी सख्त, हल्के हरे धूसर वर्ण की होती है, किन्तु इसका अगला भाग काला होता है । इसकी पहिचान इसके बड़े आकार, लाल सिर, लम्बी टांगों और धूसर वर्ण के पंखों से होती है । यह खुले तथा पानी वाले मैदानों में पाया जाता है, नदियों, झीलों, तालाबों तथा सरकण्डों वाली दलदलों के पास बहुत मिलता है ।

ह्विसलर (पृ० ४४७) के कथनानुसार यह समूचे उत्तर भारत में आसाम से बर्मा, स्याम, कोचीन, चीन तक मिलता है । उपर्युक्त दोनों भेदों में से यह सारस (Sarus Crane) समूचे उत्तर प्रदेश और बंगाल में अधिक मिलता है, अल्प संख्या में यह चनाव नदी के दक्षिण पंजाब में, पूर्वी राजपूताना तथा मध्य प्रदेश के कुछ भागों में पाया जाता है ।

सारस झीलों और तालाबों में तथा अनेक खेतों में जोड़ों के रूप में मिलता है । यह कहा जाता है कि सारसों में सच्चा दाम्पत्य प्रेम देखा जाता है । पति-पत्नी आजीवन इकट्ठा रहते हैं, साथ-साथ अपना आहार ढूंढते हैं और उड़ते हुए भी दोनों एक दूसरे के पीछे रहते हैं । प्रसिद्ध पक्षिशास्त्री स्टुअर्ट बेकर ने लिखा है कि सारस सदैव जोड़ों में दिखाई देता है । कई बार इसके साथ एक या दो छोटे बच्चे भी होते हैं । दलदल तथा झीलें उनकी सब आवश्यकतायें पूरी कर देती हैं । अतः उन्हें घोंसला बनाने के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन के लिये सूखी भूमि पर आने की आवश्यकता नहीं होती ।

सारस के जोड़े में इतना घनिष्ट प्रेम होता है कि यदि इन दोनों में से कोई एक मर जाय तो दूसरा उसके विरह में व्यथित होकर अपने प्राण त्याग देता है[२] । श्री धर्मकुमारसिंहजी ने यह सत्य ही लिखा है कि सारसों में एक दूसरे के प्रति सच्चा प्रेम होने तथा आजीवन इकट्ठा रहने के कारण उपर्युक्त विश्वास असम्भव नहीं जान पड़ता । यदि यह विश्वास न होता तो

---

२. They pair for life, are very devoted mates so that if one is killed it is said that the survivor after dies of grief. Stuart Baker in the Game Birds of Indian Empire, Journal of Bombay Natural History Society, vol. XXXIII, P. 3-4.
सारस दम्पती में अनुरागाधिक्य होने के कारण संस्कृत के कोषकारों ने इन्हें बड़ा कामी तथा मैथुन में रत रहने वाला बताया है । मल्लिनाथ ने किरातार्जुनीय (८।३१) की टीका में यादव कोष का यह वचन उद्धृत किया है—

सारसो मैथुनी कामी गोनर्दः पुष्कराह्वयः ।

ये पक्षी बिल्कुल समाप्त हो जाते। ह्विसलर के मतानुसार लोगों में यह आशंका बनी रहती है कि इन्हें कष्ट देने वाले को दुर्भाग्यग्रस्त होना पड़ेगा, अतः वे इन्हें कभी नहीं सताते (पृ० ४४३)।[३]

इस कारण सारस बड़े पालतू और निर्भीक पक्षी हो जाते हैं। यदि उन्हें छोटी आयु में पकड़ा जाए वे तो अच्छे पालतू बन जाते हैं और बगीचे में रखने पर कुत्तों जैसी चौकीदारी का कार्य बड़ी कुशलतापूर्वक करते हैं[४]। किन्तु नर सारसों को पालतू बनाने में एक खतरा भी है। सन्तानोत्पादन के समय, बच्चों की रक्षा की दृष्टि से इनमें बड़ी उग्रता आ जाती है और घर आने वाले नवागन्तुकों को ये अपनी चोंच से हानि भी पहुँचाते हैं[५]। ये सर्वभक्षी हैं, जल की वनस्पतियाँ, कमलनाल, जलकीट, मेंढ़क, गेहूँ आदि के दाने तथा सन्तानोत्पादन काल में सांप तक खा जाते हैं[६]।

इनका नीड़-निर्माण तथा सन्तानोत्पादन काल जून से नवम्बर तक है। ये कई बार मार्च में भी घोंसला बनाते हैं, किन्तु गर्भाधान के विशेष महीने श्री धर्मकुमार-सिंह जी के मतानुसार जुलाई, अगस्त तथा सितम्बर है।[७] ये वर्षा के महीने हैं। ह्विसलर ने लिखा है कि इनके सन्तानोत्पादन का प्रमुख काल वर्षा में जुलाई से सितम्बर तक है।

---

३. संभवतः इसीलिये सारस को संस्कृत साहित्य में शुभशकुन माना गया है। शब्दकल्पद्रुम में उद्धृत वसन्तराजशाकुन के मतानुसार सारस पक्षी का जोड़ा देखने से सब दिशाओं में अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है। यदि इसकी ध्वनि पीठ की ओर से सुनाई दे तो घर से बाहर ही नहीं जाना चाहिये, क्योंकि घर में बैठे ही अभीष्ट अर्थ की पूर्ति हो जाती है। इसके बाईं ओर होने पर यह ससुराल (योषित्कुल) के लिये लाभकर होता है, आगे इसका शब्द सुनाई पड़ने पर राजा से धन प्राप्ति होती है। सारसों के जोड़े की एक साथ सुनाई देने वाली ध्वनि इष्ट मनोरथ पूर्ण करती हैं। क्रौञ्च के जोड़े के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है—

इष्टार्थसिद्धिः सकलासु दिक्षु
स्यात्सारसद्वन्द्वविलोकनेन ।
श्रुत्वाऽस्य पृष्ठे निनदं न गच्छेत्
सिध्यत्यभीष्टं गृह एव यस्मात्॥
वामेन योषित्कुललाभकारी
शब्दे तथाग्रे नृपतेऽर्थलब्ध्यै ।
यः सारसाभ्यां युगपद्विरावः
कृतोऽचिरेण क्रमतोऽपि वामः॥
स वेदितव्यः कथितार्थकारी
क्रौञ्चद्वयस्याप्ययमेव वर्गः ॥

४. Whistler—Popular Hand Book of Indian Birds P. 445.
५. Ibid P. 143.
६. Dharamkumarsinghji—Birds of Saurashtra P. 144.
७. Ibid 445.

इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि कालिदास ने उज्जयिनी में सारसों के कामोन्माद का वर्णन वर्षा काल में ही किया है। इस समय प्राङ्मैथुनलीला के रूप में सारस एक विशेष प्रकार का नर्तन करते हैं, अपने पंख फैलाकर तथा सिर नीचा करते हुए वे हवा में ऊपर कूदते हैं और बड़े ज़ोर से शोर मचाते हैं (ह्विसलर पृ० ४४६)। यही संभवत: कालिदास का मदकलकूजन (मेघदूत ३१) है। इस विषय में कालिदास का यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है कि सारसों की मैथुन लीला से उत्पन्न, मनोरम प्रातःकालीन मञ्जुल ध्वनि मनुष्यों की संभोग-जन्य थकावट दूर करने वाली है।

कालिदास ने सारसों की आवाज को मधुर या कलनिर्ह्राद बताया है। स्टुअर्ट बेकर ने इनके विषय में लिखा है कि इनकी ध्वनि ऊँची सुरीली तुरही जैसी होती है तथा मुख्य रूप से प्रातःकाल, सायंकाल और रात्रि में उस समय बोली जाती है, जब एक जोड़े के पक्षी अँधेरे में पृथक् होने पर एक दूसरे को पुकारने लगते हैं।[८] सुप्रसिद्ध पक्षिविशारद सालिम अली ने इनकी ध्वनि ऊँची तथा सुरीली बतायी है, यह आवाज सारस भूमि पर बैठे हुए तथा उड़ते हुए भी करते हैं। कालिदास ने रघुवंश में उड़ते हुए सारसों की मञ्जुल ध्वनि का उल्लेख किया है।

यह सारस सारा साल भारत में रहता है किन्तु इसका एक दूसरा भेद दिवाली के समय शीतकाल में ही हमारे देश में आता है।

(२) सामान्य सारस (Common Crane, Grus grus lilfordi Sharpe)—(गुजराती नाम कुञ्ज) यह पक्षी अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में चीन, साइबेरिया, तिब्बत और रूस के स्टेपीज़ प्रदेशों में अण्डे-बच्चे देने के बाद हमारे देश में आता है और होली तक हमारे देश में रहने के बाद मार्च में पुन: उत्तर की ओर लौट जाता है। यह एक दिन में कई सौ मील की यात्रा बड़ी सुगमता से कर लेता है। सर्दियों में इनके छोटे-छोटे तथा १० हजार पक्षियों तक के विशाल समूह आसानी से देखे जा सकते हैं। प्रव्रजन के समय ये वी (V) आकार की रचना बनाकर सामान्य रूप से बहुत ऊँचाई पर उड़ते हैं। इनकी आवाज तुरही के शब्द जैसी दुहरी क्रों-क्रों (Kron Kron) जैसी होती है (धर्मकुमारसिंहजी पृ० १४०-१४१)। आकार में यह सारस से छोटा होता है। इसके सारस से कुछ प्रधान अन्तर ये हैं—

(क) इसका सिर, गर्दन और पैर लाल नहीं, किन्तु धूसर होते हैं।

(ख) इसकी पूँछ के पर सफेद नहीं, किन्तु काले होते हैं।

(ग) इसकी आवाज भी सारस की अपेक्षा कुछ भिन्न होती है। सारस की ध्वनि अधिक लम्बी और अधिक देर तक चलने वाली होती है।

(घ) यह सारस की अपेक्षा फसलों को अधिक हानि पहुँचाता है। श्री धर्मकुमारसिंहजी के शब्दों में ५० सामान्य सारस या कुञ्ज मूंगफली का पूरा खेत एक ही दिन में तबाह कर सकते हैं।

(ङ) उड़ते समय दोनों का अन्तर अच्छी तरह देखा जा सकता है। सारस बहुत ऊँचा

---

८. Stuart Baker—Game Birds of Indian Empire, Journal of Bombay Natural History Society vol. XXXIII P. 3-4,

नहीं उड़ते, कुंज बहुत ऊँचाई पर उड़ते हैं। सारस उड़ते समय नीचे के सफेद पंखों के कारण झट पहचान लिये जाते हैं। सामान्य सारस या कुञ्ज उड़ते समय नीचे से काले दिखाई देते हैं। खेतों में चरने के लिये जाते या लौटते समय कुञ्जों का समूह दूर से धुएँ की रेखा की तरह प्रतीत होता है।

(३) करकरा (The Demoiselle Crane पञ्जाबी कुञ्ज)—यह सारस से छोटा तीन फीट का धूसर रंग का पक्षी है। इसका सिर, गर्दन और छाती काली होती है। किन्तु आँखों के ऊपर तथा सिर के पीछे सफेद पंख होते हैं। आँखें चमकीले लाल रंग की होती हैं। चोंच हलकी हरी तथा उसका अग्रभाग गुलाबी होता है। टांगें काली तथा पीठ के पंख धूसर वर्ण के होते हैं। यह गेहूँ, चने के खेतों में तथा तालाबों में पाया जाता है। यह शीत ऋतु में आने वाला पक्षी है और समूचे भारत में मैसूर तक मिलता है।

यह उत्तर अफ्रीका, मध्य एशिया, ईरान, दक्षिणी योरुप और चीन में अण्डे-बच्चे देने के बाद सामान्य सारस की भाँति बहुत जल्दी जुलाई के अन्त में या अगस्त के शुरू में आ जाता है (धर्मकुमारसिंहजी पृ० १४४)। इस समय सौराष्ट्र के घास वाले प्रदेशों में यह कीड़े और भुनगे (Grasshoppers) तथा फसल को तबाह करने वाली टिड्डियों को खाकर कृषकों का बड़ा उपकार करता है। यह खुले देहाती प्रदेशों में वी (V) आकृति की रचना में उड़ान करता हुआ देखा जाता है। इसकी आवाज सामान्य सारस से कुछ भिन्न, अधिक कर्कश तथा छोटी होती है। उड़ते समय यह काफी समय तक कर्र-कर्र करता है। इसी कारण इसे करकरा कहा जाता है।[६] मध्याह्न में नदियों एवं झीलों की विशाल श्वेत जल-राशि पर हजारों करकरों की कृष्ण पंक्तियाँ बहुत सुन्दर मालूम होती हैं। चरते समय यह सामान्य सारस की तरह सावधान और डरपोक नहीं होता। श्री धर्मकुमारसिंहजी ने लिखा है कि उन्होंने इनके बीच में से बैलगाड़ी गुजरते देखा है तथा ये पक्षी बिलकुल भयभीत नहीं हुए। बरसात में कीड़े और टिड्डियाँ खाकर यह खेती को जितना लाभ पहुँचाता है, सर्दियों में गेहूँ और मूँगफली की फसल को उससे कहीं अधिक हानि पहुँचाता है (धर्मकुमार-सिंह जी पृ० १४५)

कालिदास ने सारसों के वर्ण आदि का विस्तृत परिचय नहीं दिया। अतः यह कहना कठिन है कि सारस के उपर्युक्त तीनों भेदों में से वह किस भेद का वर्णन कर रहा है। सम्भवतः उसका अभिप्राय पहले प्रकार के सारस (Sarus Crane) से है। इसके मुख्य कारण ये हैं—

(क) उसने सारस का ग्रीष्म तथा शरद् दोनों ऋतुओं में उल्लेख किया है। यह विशेषता बारह मास हमारे देश में रहने वाले सारस (Sarus Crane) में ही है, सामान्य सारस या करकरा में नहीं है। ये दिवाली से होली तक ही हमारे देश में रहते हैं।

---

६. हलायुध कोश (२२४) में विभिन्न पक्षी जातियों का उल्लेख करते हुए कहा गया है—कारण्डव कादम्बक्रकराद्याः पक्षिजातयो ज्ञेयाः। इसमें क्रकर यही करकरा प्रतीत होता है। इसे कुलंग तथा कुञ्ज का भी नाम दिया जाता है (ह्विसलर पृ० ४४४)। प्रायः भारत में सामान्य सारस (कुञ्ज) तथा करकरा में अधिक भेद नहीं किया जाता।

(ख) वर्षा काल में हमारे देश में सारस ही सन्तानोत्पादन करता है। उज्जयिनी में उसकी प्राङ् मैथुनलीला के रूप में कालिदास ने उसके मदकलकूजन का सर्वथा स्वाभाविक वर्णन किया है। किन्तु सारसों की तोरण माला के आकार की जिस विशिष्ट उड़ान का वर्णन किया है, वह सामान्य सारस (Common Crane) तथा करकरा में ही विशेष रूप से देखने को मिलता है।

१७ | कारण्डव

कालिदास ने कारण्डव का उल्लेख दो स्थानों में किया है। ऋतुसंहार में शरद् ऋतु की सुषमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस समय कारण्डवों की चोंचों के प्रहार से नदियों की तरंगों में विक्षोभ उत्पन्न हो रहा है, इनके किनारों पर कादम्बों और सारसों के झुण्ड बैठे हुए हैं; इन पर हँस कूजन कर रहे हैं और इनका जल कमलों के पराग से लाल हो गया है, इस प्रकार की नदियाँ लोगों को आनन्दित कर रही हैं—
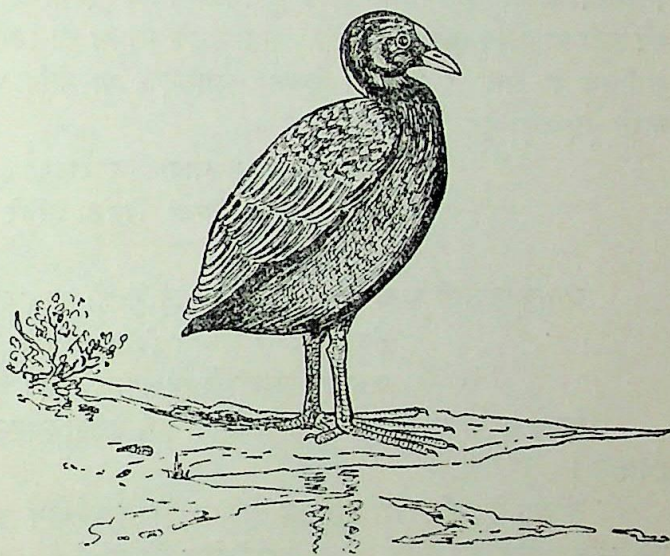
कारण्डव

कारण्डवाननविघट्टितवीचिमालाः
कादम्बसारसकुलाकुलतीरदेशाः ।
कुर्वन्ति हंसविरुतैः परितो जनस्य
प्रीतिं सरोरुहरजोरुणितास्तटिन्यः ॥

ऋतुसंहार ३।८

विक्रमोर्वशीय नाटक (२।२३) में राजा पुरूरवा ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न काल की गर्मी के विविध प्राणियों पर प्रभाव का सुन्दर वर्णन करते हुए कहता है कि गर्मी से बेचैन मोर इससे बचने के लिए पेड़ की जड़ में उसे पानी देने के लिए बनाये गये ठण्डे आलवाल में बैठता है, भौंरे कनेर की कली को ऊपर से खोलकर उसके अन्दर बैठते हैं (ताकि गर्मी से बचे रहें); कारण्डव (धूप से) गर्म पानी को छोड़कर किनारे पर उगी हुई कमलिनी का सेवन करता है, मनोविनोदगृह के पिञ्जरे में बन्द तोता थककर पानी मांगता है—

उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी
निर्भिद्योपरि कर्णिकारमुकुलान्यालीयते षट्पदः ।
तातं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते
क्रीडावेश्मनि चैष पञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते ।

विक्रमोर्वशीय २।२३

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि कारण्डव की निम्न विशेषतायें हैं—

(१) यह हँसों और सारसों के साथ सरोवरों में रहने वाला जलचर पक्षी है।

(२) यह शीत एवं ग्रीष्म दोनों ऋतुओं में भारत में पाया जाता है। ऋतुसंहार के श्लोक में इसका शरत् ऋतु में तथा विक्रमोर्वशीय में ग्रीष्म ऋतु में वर्णन किया गया है।

(३) कारण्डवाननविघट्टितवीचिमाला से यह सूचित होता है कि इसे पानी के भीतर वहीं रहना अधिक पसन्द है, जहाँ इसकी चोंच सदा लहरों से टकराती रहे। इसे पानी से निकलना अच्छा नहीं लगता। किन्तु ये विशेषतायें इतनी अस्पष्ट हैं कि इनसे हमें कारण्डव की सही पहिचान नहीं हो सकती। अतः इसके स्वरूप का निर्णय करने के लिए हमें संस्कृत साहित्य के अन्य वर्णनों को देखना चाहिए। वाल्मीकि रामायण में कारण्डव का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

रथाङ्गहंसानत्यूहाः प्लवाः कारण्डवाः परे।
तथा पुंस्कोकिलाः क्रौञ्चा विसंज्ञा भेजिरे दिशः॥

वाल्मीकिरामायण २।१०३।४३

भागवतपुराण के अष्टम स्कन्ध (२।१६) में भी कारण्डव का उल्लेख है।

हंसकारण्डवाकीर्णचक्राह्वैः सारसैरपि
जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम्।

किन्तु कारण्डव के इन उल्लेखों से भी हमें उसके स्वरूप-निर्णय में कोई सहायता नहीं मिलती।

संस्कृत के अधिकांश सुप्रसिद्ध प्राचीन और अर्वाचीन कोष कारण्डव के स्वरूप पर कोई प्रकाश न डालते हुए केवल उसका नामोल्लेख ही करते हैं। अमरकोष में पक्षियों के विभिन्न भेद बताते हुए कारण्डव का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

तेषां विशेषा हारीतो मद्गुः कारण्डवः प्लवः।

२।५।३४

किन्तु इस कोष में इसके स्वरूप का कोई परिचय नहीं दिया गया। इसी प्रकार हलायुध कोष में कहा गया—

कारण्डवकादम्बक्रकराद्याः पक्षिजातयो ज्ञेयाः।२२४

शब्दकल्पद्रुम में केवल इतना कहा गया है कि कारण्डव एक विशेष प्रकार का हंस है। इसे लोकभाषा में खड़हांस कहते हैं। (पृ० २५४)

अर्वाचीन कोषों में मोनियर विलियम्ज़ ने अपने सुप्रसिद्ध कोष में इसका अर्थ ऐसा किया है—एक प्रकार की बतख।

इसका अनुसरण करते हुए आप्टे के नवीन संशोधित कोष में इसका यही अर्थ एक प्रकार की बतख (A sort of duck) दिया गया है। अतः इन कोषों से भी इसके स्वरूप पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

अभिधान चिन्तामणि में लिखा है—कारण्डवस्तु मरुलः। यह तो 'मघवामूल बिडौजा टीका' हुई। कारण्डव को बताने के लिए उसका एक अज्ञात और क्लिष्ट पर्याय मरुल दे दिया गया है। यह मरुल क्या बला है? मोनियर विलियम्ज ने इसे मराल या हंस माना है। सुश्रुत

कारण्डव

तप्तं वारि विहाय तीरं नलिनीं कारण्डवः सेवते ।

विक्रमोर्वशीय-२।२३

का टीकाकार डल्हणाचार्य इसे शुक्ल हंस का भेद बताता है।

इससे यह प्रकट होता कि कारण्डव हंस की कोई उपजाति है। अमरकोश के टीकाकार महेश्वर ने इस पर कुछ प्रकाश डालते हुए लिखा है—

कारण्डव : करडुव इति ख्यात:। अयं काकतुण्डो दीर्घपादः कृष्णवर्णः।

इसे साधारण भाषा में करडुव कहते हैं, इसकी चोंच कौए जैसी, पैर लम्बे और रंग काला होता है। इन्हीं विशेषताओं को डल्हणाचार्य ने इस रूप में लिखा है—

कारण्डवः काकवक्त्रो दीर्घपादः कृष्णवर्णः।

यदि कारण्डव को हंस के वंश (Anseriformes) का माना जाय तो उसमें उपर्युक्त विशेषतायें नहीं हो सकतीं। क्योंकि हंस जाति के पक्षियों की चोंच कौए की चोंच जैसी नहीं होती, उनके पैर लम्बे नहीं होते, उनका रंग भी काला नहीं होता। हंस की चोंच चपटी होती है और कौए की शंकु के आकार की; हंस जाति के पक्षियों का शरीर बड़ा तथा उसके अनुपात में पैर छोटे होते हैं और रंग भी काला नहीं होता। अतः कारण्डव का हंस जाति का पक्षी होना संभव नहीं प्रतीत होता। ऐसी दशा में उसे किस जाति का पक्षी माना जाय, जिसमें उपर्युक्त सभी लक्षण पाये जाते हों।

इस जटिल प्रश्न के उत्तर में रामायण की तिलकाख्य टीका बहुत सहायक है। उसमें रामायण के उपर्युक्त श्लोक की व्याख्या में टीकाकार ने कारण्डव की व्याख्या करते हुए उसे जलकुक्कुट कहा है। वैद्यकशब्दसिन्धु तथा वैद्यकनिघण्टु में भी इसका समर्थन करते हुए कहा गया है।

जलकुक्कुटः कारण्डवे।

जलकुक्कुट एक बड़ा व्यापक शब्द है। इसमें कारण्डव की उपर्युक्त विशेषतायें टीका या टिकारी (Coot) नामक पक्षी में मिलती हैं। अतः इसी को कारण्डव मानना उचित प्रतीत होता है। इसका वैज्ञानिक नाम (Fulica atra atra Linnaeus) है।

यह पक्षी कद में १६ इंच तक होता है। सरोवरों में बतखों के साथ मिला रहता है। किन्तु अपने स्लेटी काले रंग तथा सफेद चोंच के ऊपर माथे के सफेद भाग से झट पहचान लिया जाता है। माथे पर इस सफेद टीके के कारण ही इसे हिन्दी में टीका या टिकारी करते हैं। इसकी काली देह पर सफेद टीका दूर से चमकता है। इसकी आंखें लाल तथा पैर हरे अथवा गहरे हरे रंग के होते हैं। इसके पैर और उंगलितां बहुत लम्बी (दीर्घपाद) होती हैं, इन पर कई हिस्सों में बँटी चौड़ी झिल्ली होती है। यह प्रायः समूहों में तैरता हुआ अथवा पानी के किनारे चलता हुआ दिखाई देता है। छोटे तालाबों तथा झीलों पर यह एकाकी भी मिलता है, किन्तु सामान्य रूप से यह यूथचारी (Gregarious) है और झुण्डों में ही रहता है। यह सारे भारत में तथा हिमालय पर्वत पर ८००० फी० की उंचाई तक पाया जाता हैं।

यह हमारे देश में बारहमास बना रहता है और शीतकाल में इस जाति के पक्षी बाहर से भी बड़ी संख्या में आते हैं। इनका आगमन अक्टूबर में होता है तथा मार्च-अप्रेल में ये उत्तर की ओर प्रव्रजन कर जाते हैं। सर्दियों में यह पक्षी प्रत्येक बड़ी झील पर पाया जाता है। यह

बड़ा शान्त तथा उड़ने में अकुशल है; अतः पानी को छोड़कर बाहर नहीं जाना चाहता। जब इसे उड़ना हो तो पहले इसे भूतल पर हवाई जहाज की तरह कुछ दूर दौड़ना पड़ता है। पंख छोटे होने के कारण यह अधिक नहीं उड़ सकता; इसकी पूँछ नहीं होती, उड़ते समय यह पर और गर्दन फैला लेता है। यह उड़ता कठिनाई से है, किन्तु एक बार उड़ान भर लेने पर काफी ऊंचाई पर उड़ता है। जब इसके झुण्ड उड़ने के लिये पैर मारना और फड़फड़ाना शुरू करते हैं तो ह्विसलर ने इस आवाज़ की तुलना पथरीले समुद्र तट पर टकराने वाली समुद्री लहरों की ध्वनि से की है (पृ. ४४२)। इनका गर्भाधान काल मैदानों में जुलाई तथा अगस्त और काश्मीर में मई-जून है।

टीका या टिकारी (Coot) में डल्हणाचार्य तथा कालिदास द्वारा वर्णित सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं। यह काले रंग का है, इसके पैर और टांगे खूब लम्बी होती हैं, इसकी चोंच कौए जैसी नुकीली होती है, यह सरोवरों तथा झीलों में रहने वाला है और ऋतुसंहार के वर्णनानुसार पानी में रहना अधिक पसंद करता है। श्री धर्मकुमार सिंह जी के शब्दों में अच्छा उड़ने वाला न होने के कारण यह पानी छोड़ने के लिये सदैव अनिच्छुक रहता है (पृ. १६०), अतः कालिदास का कारण्डव इसी पक्षी को मानना उचित है।

१८ | अन्य पक्षी

शुक (तोता)—यह अपनी मधुरवाणी, मनुष्य की बोली का अनुकरण करने की पटुता तथा आकर्षक रंगरूप के कारण प्राचीन काल से भारत में पाला जाता रहा है। कालिदास ने कई स्थलों में इस का मनोरंजक निर्देश किया है। रघुवंश से यह प्रतीत होता है कि उस समय तोतों को पालने तथा इन्हें कई प्रकार की मीठी बोली सिखाने का रिवाज़ था, राजाओं और राजकुमारों को शुक प्रातःकाल अपनी मधुरवाणी बोल कर जगाया करते थे। इन्दुमती के स्वयंवर के लिये विदर्भ जाने पर राजा अज जब रात्रि की समाप्ति पर प्रभात वेला में उठते हैं, उस समय प्रभात काल के जिन लक्षणों और चिह्नों का वर्णन किया गया है उनमें सुग्गे की मीठी बोली भी है। रात को शय्या की सजावट के लिये लगाये गये फूल मुरझाने के कारण अपनी सुन्दर रचना (भक्ति) खो बैठे हैं, उजाला हो जाने के कारण दीपक का प्रकाश अपनी लौ से बाहर नहीं जाता और पिंजरे में बैठा हुआ, मीठी बोली बोलने वाला (**मंजुवाक्**) यह तोता आप को जगाने में प्रयुक्त की जाने वाली हमारी वाणी का अनुकरण करता है:—
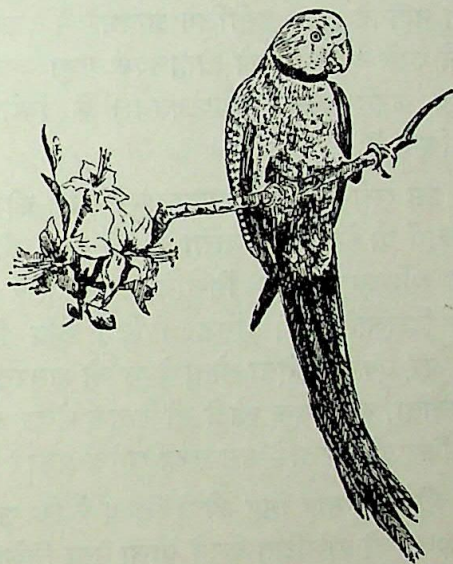
भवति विरलभक्ति र्म्लानपुष्पोपहारः
स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः ।
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता—
मनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक्पञ्जरस्थः ॥ रघुवंश ५।७४

क्रीडापतत्री—अयोध्या में राजा कुश के पुत्र अतिथि के राज्याभिषेक के समय किये जाने वाले जिन मंगलकार्यों का वर्णन रघुवंश में किया गया है, उनमें पिंजरे में बन्द तोते आदि को भी मुक्त करने का उल्लेख है। राज्याभिषेक की प्रसन्नता में राजा अतिथि के आदेश से मुक्ति प्राप्त करने वाले, नाना प्रकार की क्रीडा करने वाले इस के पंजरबद्ध शुक आदि पक्षी अपनी इच्छानुसार इधर उधर उड़ने लगे—

क्रीडापतत्रिणोऽप्यस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः ।
लब्धमोक्षास्तदादेशाद्यथेष्टगतयोऽभवन् ॥ रघुवंश १७।२०

इस श्लोक में दो महत्वपूर्ण तथ्यों का निर्देश है। पहला तोते के सुप्रसिद्ध स्वभाव के विषय में है। यह स्वतन्त्रता को बहुत अधिक पसन्द करता है। तोते को भले ही वर्षों तक पिंजरे में रखकर आप उसे स्वादिष्ट एवं बढ़िया भोजन खिलायें, किंतु उसकी आत्मा स्वतन्त्रता के लिये छटपटाती रहती है और ज्योंही उसे पिंजरे से निकलने का अवसर मिलता है, वह स्वच्छन्द रूप से वन में उड़ कर चला जाता है और अपने पिंजरे में वापिस नहीं लौटता। अन्य पालतू पक्षियों के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। कबूतर को आप अपने से भले ही सैकड़ों मील की दूरी पर छोड़ दें, वह पुनः लौट कर आप के पास आ जायगा। किंतु तोता वर्षों तक पाला जाने पर भी पिंजरे से छूटने पर वन के उन्मुक्त आकाश की ओर दौड़ता है, पीछे लौट कर भी नहीं देखता। इसीलिये क्षणभर में नजर बदलने वाले, कृतज्ञता को जरा भी स्वीकार न करने वाले व्यक्तियों को तोताचश्म कहा जाता है। कालिदास ने इच्छानुसार स्वच्छन्द विचरण करने वाले (यथेष्टगतयः) के विशेषण से तोते की इस स्वाभाविक विशेषता का वर्णन किया है[1]।

इस श्लोक में दूसरा महत्वपूर्ण शब्द क्रीडापतत्री है। इस का अर्थ है विभिन्न प्रकार की क्रीड़ायें या खेल करने वाला पक्षी। तोतों की यह विशेषता है कि इन्हें कई प्रकार के खेल उपयुक्त प्रशिक्षण देकर सिखाये जा सकते हैं। तोते जल्दी ही खेल सीख कर कई तरह के करिश्मे दिखलाते हैं। प्रसिद्ध ब्रिटिश कवि किपलिंग ने लिखा है कि उसने दिल्ली की सड़कों पर एकवार ऐसा तोता देखा जो कसरत और फौजी कवायद में पूरा दक्ष था। कभी टार्च जलाता, कभी एक छोटी सी बन्दूक लेकर चलने का अभिनय करता, कभी मृतवत् लेट जाता, फिर जी उठता—इस तरह अनेक प्रकार के तमाशे दिखाया करता था[2]।

श्री धर्मकुमार सिंह जी ने लिखा है कि उनके पिता जी के पास तोतों (Parrots and parakeets) को प्रशिक्षित करने वाला ऐसा विशेषज्ञ था, जो उन्हें खिलौने वाली बाइसाइकल पर तथा ट्राइसिकिल पर चढ़ने के, मोटर चलाने के, झूले को झुलाने के, मन्दिर के चारों ओर घंटी बजाते हुए प्रदक्षिणा करने के तथा देवमूर्त्ति पर माला चढ़ाने के खेल सिखाया करता था, तोते विभिन्न कसरतें और गोले में से कूदने के खेल करते थे, वे खिलौने वाली छोटी तोप चलाने के तथा इसी प्रकार के अन्य खेल दिखाते थे[3]।

---

१. एक संस्कृत सुभाषित में कहा गया है कि तोते को चाहे दाख खिलाओ, मधु पिलाओ, हाथ से सहलाओ किंतु स्वभाव से चंचल यह तोता बन्धनमुक्त होते ही वहीं (वन की ओर) चला जायगा—

द्राक्षां प्रदेहि मधु वा वदने विधेहि
देहे विधेहि किमु वा करलालनानि।
जातिस्वभावचपलः पुनरेष कीर—
स्तत्रैव यास्यति कृशोदरि मुक्तबन्धः॥

सुभाषितरत्नभाण्डागार
श्लोक २२७, पृ. १८७

२ राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह—भारत के पक्षी पृ. ९९

३. Birds of Saurastra P. 238

कालिदास ने यह निर्देश नहीं किया कि उस समय तोतों को कौन से खेल सिखाये जाते थे ; किन्तु उसके क्रीडापतत्री शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि ऐसे खेल उस समय तोतों को अवश्य सिखाये जाते होंगे।

शुकों का निवासस्थान तथा आहार—अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक के आरम्भ में कण्वाश्रम में प्रवेश के समय राजा दुष्यन्त इस का वर्णन करते हुए कहता है कि यहां पर कहीं वृक्षों के नीचे कोटरों में रहने वाले सुग्गों के घोंसलों के मुंह से गिरे नीवार नामक जंगली-धान के दाने बिखरे पड़े हैं, कहीं इधर उधर पड़े हुए चिकने पत्थर बता रहे हैं कि इन पर तापसतरु इंगुदी (जियापोता, Nagelia Putranjiva) के फल तोड़े गये हैं, कहीं निडर खड़े हुए मृग विश्वास से रथ का शब्द सुन रहे हैं। कहीं नदी-तालाबों पर आने जाने की बटियाओं में मुनियों के वल्कलों से टपके हुए पानी की बूंदों की रेखायें बनी हुई हैं—

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः[४]
प्रस्निग्धाः क्वचिदिंगुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा—
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः॥

अभिज्ञानशाकुन्तल १।१४

इस श्लोक की पहली पंक्ति में तोतों के निवासस्थान के बारे में कहा गया है कि वह पेड़ों के कोटर में होता है। इसका प्रिय स्थान बड़, पीपल, सेमल आदि पेड़ों में बने खोखले छेद या कोटर होते हैं[५]। ऐसा प्रसिद्ध है कि सेमल के वृक्ष के घोंसलों में पले तोतों में वाणी की चतुराई अधिक होती है। इस धारणा की सत्यता का तो निर्धारण नहीं हो सका, किन्तु कालिदास द्वारा वर्णित इनका पेड़ों के कोटर से प्रेम सर्वथा वैज्ञानिक और पक्षिशास्त्र सम्मत है।

---

४. इस का अर्थ राघवभट्ट ने इस प्रकार कियां है—"शुका गर्भे मध्ये येषां तानि च कोटराणि तरुविवराणि तेषां मुखानि तेभ्यो भ्रष्टाः।" इस का यह अभिप्राय है कि तोते पेड़ों के कोटर या विवर में बने अपने घोंसलों में इतने अधिक जंगली धान लाते हैं कि वे विवर के मुंह से बाहर पेड़ों के नीचे बिखरे पड़े हैं। टीकाकार ने लिखा है कि मुख शब्द से यहां धान का प्राचुर्य सूचित होता है (मुखशब्देन नीवाराणां बाहुल्यम्)।
इसका एक अन्य पाठान्तर **शुककोटरार्भकमुखभ्रष्टाः** भी है। इसका अर्थ है तोतों के पेड़ों के कोटर में रहने वाले बच्चों की चोंचों से गिरे हुए जंगली धान। इसका यह अभिप्राय है कि तोते अपने बच्चों को चुग्गा खिलाने के लिये जंगल से जो धान लाते हैं, उन में से बहुत सा अंश बच्चों की चोंच से नीचे गिर पड़ता है।

५. श्री धर्मकुमार सिंह जी ने (Blossom Headed Parakeet, गुजराती नाम तुई) के बारे में लिखा है कि यह पक्षी अपना घोंसला पेड़ों के कोटरों (Hollows) में बनाता है (Birds of Saureshtra P. 239)

संस्कृत के कविभट्ट के पद्य-संग्रह में तोतों के कोटर से प्रेम के सम्बन्ध में एक सुन्दर श्लोक है। इसमें तोता कहता है कि सोने के पिंजरे में मेरा निवास है, बड़े बड़े राजा-महाराजा मेरे शरीर कीसफाई अपने हाथों से करते हैं, खाने को स्वादिष्ठ आम, अनार आदि फल देते हैं, पीने को अमृत जैसा पानी

कालिदास ने इसी श्लोक में यह निर्देश किया है कि तोतों के कोटर वाले पेड़ों के नीचे नीवार नामक जंगली धान के दाने बिखरे पड़े हैं। इससे हमें न केवल तोतों के आहार के बारे में किन्तु इसके साथ ही इन से किये जाने वाले खाद्यान्नों के निरर्थक विध्वंस की सूचना मिलती है। श्री धर्मकुमारसिंह जी (पृ. २३८) ने लिखा है कि 'इसका आहार प्रधान रूप से छोटे गोलाकार रसीले फल (Berries and other fruits) हैं, यह कोमल पत्तों का तथा फूलों और कलियों के रस का भी भक्षण करता है।······यह पक्षी अनाज, चने तथा सब्जियों की फसलों को तथा फलों को बहुत हानि पहुंचाता है। खड़ी फसलों को इससे बड़ा नुक्सान होता है और किसान को अपनी फसल की इनसे रक्षा करने के लिये जागरूक रहना पड़ता है[६]।''

सालिम अली ने तोते (The Roseringed parakeet) के बारे में लिखा है कि यह बड़े समूहों में रहता है तथा फसलों और बगीचों के फलों को अत्यधिक हानि पहुँचाने वाला है[७]। यह वास्तव में जितना खाता है, उससे कहीं अधिक कुतर कर बरबाद करता है[८]। फिन ने लिखा है कि तोते प्राय: अनाज और फलों की फसलों को अत्यधिक हानि पहुँचाने वाले हैं[९]।

इससे यह स्पष्ट है कि कालिदास का तोतों द्वारा पेड़ों के नीचे नीवार के दाने बखेर कर अन्न बरबाद करने का वर्णन सर्वथा स्वाभाविक और वैज्ञानिक है।

शुकपालन—प्राचीन काल में राजा और धनी व्यक्ति अनेक प्रकार के पक्षी—कबूतर मैना, तोता, मोर, हंस आदि को पाला करते थे। इनमें अपने रंग और मनुष्य की वाणी का अनुकरण करने के कारण तोते को बहुत महत्व दिया जाता था। जब सिकन्दर का आक्रमण होने पर यूनानी यहां आये तो उन्हें यह पक्षी बहुत पसन्द आया। हीरामन तोते को अंग्रेजी

मिलता है, मुझ बुद्धिमान् तोते के लिये सभा में राम नाम के पाठ का काम है, किन्तु इन सारी सुविधाओंके रहते हुए भी मेरा मन अपने जन्मस्थान के पेड़ की (खोह में बनी) गोद की ओर ही दौड़ता रहता है—

वास: कांचनपंजरे नृपकराम्भोजैस्तनूमार्जनं
भक्ष्यं स्वादुरसालदाडिमफलं पेयं सुधाभं पय:।
पाठ:संसदि रामनाम सततं धीरस्य कीरस्य मे
हा हा हन्त तथापि जन्मविटपिक्रोडं मनो धावति ॥

पद्यसंग्रह ६

६. Birds of Saurashtra P. 238

७. Salim Ali : The Book of Indian Birds P. 52.

८. तोतों द्वारा फसलों को पहुँचायी जाने वाली भीषण हानि को ध्यान में रखते हुए संस्कृत के एक प्रसिद्ध श्लोक में खेती को बड़ा नुक्सान पहुँचाने वाली छ: बड़ी मुसीबतों (ईतय:) में इन्हें भी गिनते हुए कहा गया है—

अतिवृष्टिरनावृष्टि: मूषिका: शलभा: शुका:
प्रत्यासन्नाश्च राजान: षडेता ईतय: स्मृता: ॥

९. The World's Birds (1908) p.91, मिलाइये Bird Behaviour p. 311. Parrots are usually not only non-provident, but like monkeys, wantonly wasteful,...with this suicidal tendency to squander their supplies.

में (Large Indian parakeet or Alexandrine Parakeet) कहते हैं। कहा जाता है कि सिकन्दर अपने साथ लौटते हुए अनेक तोते ले गया और तब से योरोप में तोता पालने की प्रथा चली। फिन ने लिखा है कि यह योरोप में पिंजरे में पाला जाने वाला सबसे प्राचीन पक्षी (Oldest cage bird) है[१०]। पुराने जमाने में भारत से विदेश जाने वाली वस्तुओं—मलमल, गरम मसालों के साथ तोतों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। प्राचीन काल में भारत से विदेश भेजे जाने वाले इन तोतों को रोमन लोग पाला करते थे। प्रसिद्ध रोमन कवि ओविड (Ovid) ने जिस पक्षी के निधन पर बड़ा शोकपूर्ण गीत (Ode) लिखा है, वह तोता ही था, क्योंकि उसने इसके हरे रंग और लाल चोंच का वर्णन किया है। आजकल भी तोतों की विदेशों में माँग है और इनका निर्यात होता है।

कालिदास ने रघुवंश (५/७०) में विदर्भ देश के राजा भोज के राजगृह में, तोतों के पाले जाने का वर्णन किया है। इसका पहले भी उल्लेख किया जा चुका है। राजा पुरूरवा के यहां भी पिंजरों में तोते पाले जाते थे। विक्रमोर्वशीय नाटक के दूसरे अंक के अन्त में राजा मध्याह्नकाल की प्रखर उष्णता के विभिन्न पक्षियों पर पड़ने वाले प्रभाव का सुन्दर वर्णन करता हुआ कहता है—मनोविनोद के लिये बनाये गये गृह (क्रीडावेश्म) में पिंजरे में बन्द यह तोता गर्मी से विह्वल होकर पानी माँग रहा है—

क्रीडावेश्मनि चैष पञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते।

विक्रमोर्वशीय २।२२

शुक का वर्ण—तोते का हरा रंग सुपरिचित है। कालिदास ने एक स्थल में इसके पेट के रंग की चर्चा की है। विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अंक में उर्वशी के साथ गन्धमादन पर्वत पर प्रणय विहार करते हुए जब राजा की दृष्टि उदयवती नामक विद्याधर कन्या पर कुछ समय के लिए पड़ती है तो उर्वशी ईर्ष्यावश कुपित होकर स्त्रियों के लिए वर्जित कार्तिकेय के वन में प्रवेश करने पर शाप के कारण लता बन जाती है। राजा उर्वशी के विरह में विह्वल होकर गन्धमादन पर्वत में दिन-रात उसकी खोज में पागल होकर घूमता और प्रलाप करता है। उर्वशी के शरीर और वस्त्रों से तनिक भी सादृश्य रखने वाली वस्तुओं में उसे उर्वशी की या उसके वस्त्रों की भ्रान्ति होने लगती है। वर्षा के कारण नई हरी घास पर लाल बीर बहूटियां दिखाई देने पर वह भ्रमवश यह समझता है कि "सुग्गे के पेट जैसे गहरे रंग वाला (शुकोदरश्याम) यह दुपट्टा (स्तनांशुक) निश्चितरूप से निम्न नाभि वाली उर्वशी का है, जिस पर उसके आंसुओं में घुलकर होठों से गिरे हुए लाल रंग की बुंदकियाँ अँकित हैं और क्रोध में हड़बड़ी से चलने के कारण यह खिसक कर नीचे गिर गया होगा। अच्छा लो मैं इसे उठा लेता हूँ। (घूम कर उसे देखकर रोता हुआ) अरे, यह तो हरी घास पर बीर बहूटियाँ फैली हुई हैं—

हृतौष्ठरागै र्नयनोदबिन्दुभिः
निमग्ननाभेर्निपतद्भिरङ्कितम् ॥

---

१०. Frank, Finn : Garden and Aviary Birds of India P. 159

च्युतं रुषाभिन्नगतेरसंशयम्
शुकोदरश्याममिदं स्तनांशुकम्[११] ॥
विक्रमोर्वशीय ४।१७

भवतु । आदास्ये तावत् । (परिक्रम्य विभाव्य च सास्रम्) कथम् । सेन्द्रगोपं नवशाद्वलमिदम् ।

शुकोदर की उपमा कालिदास को बहुत प्रिय प्रतीत होती है। उसने अभिज्ञानशाकुन्तल में भी इसका प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। तृतीय अंक में मालिनी नदी के तट पर वेत्र-लताओं से घिरे लतामण्डप में मुग्धा तापस-कन्या शकुन्तला दुष्यन्त के प्रणय में विह्वल है, अपनी सखी प्रियम्वदा और अनसूया के परामर्श से वह राजा से अपने प्रणय का निवेदन करना चाहती है। प्रियंवदा यह परामर्श देती है कि इससे प्रेमपत्र (मदनलेख) लिखाया जाय और उसे फूलों में छिपाकर देवता का प्रसाद कहकर राजा को दे आया जाय। अनसूया को यह उपाय बड़ा पसन्द आता है। दोनों सखियां शकुन्तला को पत्र लिखने के लिये कहती हैं। इस पर वह कहती है—"सखी, प्रणयपत्र में लिखे जाने वाला विषय तो मैंने सोच लिया है, किन्तु लिखने की सामग्री तो यहाँ कुछ भी नहीं है।" इसका उत्तर देती हुई प्रियंवदा कहती है कि सुग्गे के पेट के समान कोमल इस कमलिनी से पत्ते पर अपने नखों से ही लिख डालो—

प्रियंवदा-इमस्सि सुओदरसुउमारे णलिणीपत्ते णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि (एतस्मिञ्छुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु।)

कालिदास के उपर्युक्त वर्णन से शुक की निम्नलिखित विशेषतायें स्पष्ट होती हैं—

(१) यह मनुष्य की वाणी का अनुकरण करता है और मीठी बोली बोलने वाला (मंजु-वाक्) होता है।

(२) इसे राजगृहों में पिंजरों में पाला जाता है।

(३) इसका रंग गहरा हरा होता है।

(४) इसका निवास स्थान पेड़ों के कोटर या खोल होते हैं।

(५) इसका आहार जंगली धान होता है और यह अनाज को बखेर कर बहुत बरबा करता है।

ये विशेषतायें तोतों की निम्न उपजातियों में पाई जाती हैं।

तोतों का वैज्ञानिक स्वरूप और प्रकार—इस समय भारत में तोतों (Parakets, Parroquets) अनेक प्रकार पाये जाते हैं। इनके प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं—

(१) तोता या लिबर तोता (The Roseringed Parakeet—Psittacula Krameri

---

११. इस प्रसंग में यह विचारणीय है कि श्याम का अर्थ सभी टीकाकारों ने गहरा हरा रंग किया है, किन्तु तोते के पेट का रंग पीलापन लिये हरा होता है, मिलाइये धर्मकुमार सिंह जी (पृ. २३७), Lower parts greenish Yellow, underwing more Yellowish and Conspicuous in flight, कालिदास के इस वर्णन को क्या विरह विह्वल पुरूरवा का उद्भ्रान्त प्रलाप मान कर यथार्थ न समझा जाय।

महाभारत (२।१०।३५) में भी घोड़ों का रंग बताने के लिये 'शुकोदरसमान् हयान्' का प्रयोग हुआ है। मोनियर विलियम्ज (शकुन्तला पृ० ११८) ने शुकोदर का अर्थ तालीशपत्र भी किया है।

(scopoli)—यह भारत में सबसे अधिक सामान्य और सर्वत्र पाया जाने वाला पक्षी है। इसका रंग हरा, चोंच लाल, आंख सफेद होती है, १६ इंच लम्बे इस पक्षी में पूंछ १० इंच की होती है। नर का गला आगे से काला होता है, किन्तु गले के पिछले भाग में गुलाबी रंग की कंठी होती है, इसीलिये यह गुलाबी कंठी वाला (Roseringed) तोता कहलाता है। मादा में यह कंठी नहीं होती। यह फरवरी से अप्रैल तक पेड़ों के कोटरों में अंडे देता है, समूहों में रहता और उड़ता है तथा खेतों की फसलों को बहुत हानि पहुँचाता है। यह सिखाये जाने पर अनेक प्रकार के शब्द बोलना और खेल करना सीख जाता है। इसकी पीले रंग की कई किस्में पाई जाती हैं।

(२)**हीरामन या राई तोता** (The Alexandrine or Large Indian Parakeet-Psittacula eupatria (Linnaeus)—यह पहले तोते का बृहत् रूप है, इसीलिये शायद इसे सिकन्दर का विशेषण दिया गया है। इसकी एक विशेषता कन्धों पर गहरे लाल रंग के धब्बे का पाया जाना है। यह भी सारे भारत में पाया जाता है, बड़े समूहों में मिलता है, बाग बगीचों के पके फलों और खेतों में खड़ी फसलों को बहुत हानि पहुंचाता है। इसकी आवाज़ लिबर तोते से गहरी तथा शक्तिशाली होती है। इसे भी पिंजरे में पाल कर अनेक प्रकार की बोली सिखाई जाती है। अण्डेमन द्वीप में इसका पीले रंग वाला एक भेद पाया जाता है।

(३) **टुइया तोता** (The Blossomheaded or Plumheaded Parakeet-Psittacula Cyanocephala (Linnaeus) यह आकार में मैना जैसा होता है, किन्तु इसकी पूँछ एक फुट लम्बी होती है। नर का रंग हरा होने पर भी सिर पके आलूबुखारे (Plum) जैसा लाल रंग का होता है, अतः इसे Plumheaded भी कहा जाता है। इसके डैनों (Wings) पर लाल धब्बा तथा चोंच नारंगी होती है। मादा के सिर का रंग लाल के स्थान पर बैंगनी (Purple) होता है तथा डैनों पर लाल धब्बा नहीं होता। यह गुलाबी कंठी वाले तोते से उड़ने में अधिक तेज़ तथा वाणी में अधिक मधुर होता है। इसकी बोली संगीतमय होती है।

ये सब पक्षी आजकल अपने सुन्दर रंग, ललित आकार और मधुर वाणी के कारण पिंजरों में पाले जाने के लिए बहुत अच्छे समझे जाते है। कालिदास के समय में भी यही स्थिति प्रतीत होती है।

दिवाभीत (उल्लू)—कालिदास ने इसका उल्लेख कुमारसंभव के आरम्भ में हिमालय के वर्णन के प्रसंग में किया है। हिमालय की लम्बी गुफाओं में दिन में भी अन्धेरा छाया रहता है। ऐसा लगता है मानो अन्धकार भी दिन से डरने वाले उल्लू के समान गुफाओं में जाकर छिप जाता है और हिमालय यहां सूर्य से उसकी रक्षा करता है क्योंकि जो महान् होते हैं, वे अपनी शरण में आये हुए नीच लोगों से भी वैसा ही अपनापन बनाये रखते हैं, जैसा सज्जनों के साथ—

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु
लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम्।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने
ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ॥

इस श्लोक में कालिदास ने उल्लू का निवास स्थान पहाड़ों की अन्धेरी गुफा में माना

है। आजकल के पक्षिशास्त्री भी उल्लुओं का निवास स्थान इसी प्रकार के स्थल मानते हैं।

भारत में उल्लू के कई भेद पाये जाते हैं। हिमालय की गुफाओं में रहने वाला उपर्युक्त उल्लू The Rock Eagle-Owl, Bubo Bengalensis (Franklin) अथवा The Indian Great Horned Owl-Bubo Bubo (Linnaeus) प्रतीत होता है। पहले के नाम से ही स्पष्ट है कि यह चट्टानों में रहता है। व्हिसलर (पृ. ३४२) ने लिखा है कि यह उत्तर तथा मध्यभारत में बहुत अधिक पाया जाता है। इसे ऐसे स्थानों में रहना अधिक पसन्द है—चट्टानों के तथा विध्वस्त मकानों के खोखले स्थान और गुफायें, जब ऐसे स्थान न हों तो यह पेड़ों के झुरमुट में बैठता है। यद्यपि यह रात को शिकार करता है, किन्तु कई बार दिन के समय में भी उड़ता है। दूसरे प्रकार के उल्लू या घुघ्घू के सम्बन्ध में सालिम अली (पृष्ठ ६२) का यह कहना है कि इसके प्रिय निवासस्थान झाड़ियों से ढकी चट्टानी पहाड़ियाँ और नाले (Bush Covered rocky hillocks and ravines) हैं।

गृहबलिभुक्—कालिदास ने इसका एक स्थल पर मेघदूत में वर्णन करते हुए कहा है—हे मेघ, तेरे आजाने पर दशार्ण-देश (पूर्वी मालवा तथा छत्तीस गढ़ का प्रदेश) में उद्यानों की बाड़ें अग्रभाग में खिले हुए केवड़े के फूलों से पीली (पाण्डु) सी हो जायेंगी, गांवों के पीपल आदि के पवित्र पेड़ घरों में बलि के अन्न को खाने वाले (कौए) आदि पक्षियों के घोंसलों के निर्माण से भर जायेंगे तथा जामुन के जंगलों के किनारे पके हुए फलों से काले हो जायेंगे और हंस थोड़े ही दिन ठहरने पायेंगे—

> पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नैः
> नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्त्याः।
> त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजंबूवनान्ताः
> संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः॥
>
> मेघदूत २३

इस श्लोक में वर्णित गृहबलिभुक् से कौन-सा पक्षी लिया जाय, इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। गृहबलिभुक् का सामान्य अर्थ है घर में बलि या अन्न को खाने वाला। सरस्वती तीर्थ ने इसकी यही व्याख्या की है—गृहेषु बलिं भुंजते। ऐसे पक्षी कौआ तथा गौरेय्या (House sparrow) हैं।

विल्सन ने प्राचीन टीकाकारों के आधार पर लिखा है कि गृहबलिभुक् बक या सारस (Vaka or crane) है, गृह का अर्थ घर के अतिरिक्त यहां इस समस्तपद में पत्नी या कलत्र है और गृहबलिभुज का तात्पर्य अपनी पत्नी का या पत्नी से लाया भोजन खाने वाला है। यह कहा जाता है कि बगुलों के सन्तानोत्पादन के समय मादा नर को भोजन प्राप्त करने में सहायता देती है। यही स्थिति कौए तथा गौरेय्या की कही जाती है, अतः इन्हें भी यही नाम दिया जाता है[१२]।

इससे यह स्पष्ट है कि विल्सन ने तीन पक्षियों को गृहबलिभुक् माना है—१. बगुला या सारस २. कौआ ३. गौरेय्या।

१२. H. H. Wilson : Meghaduta of Kalidas P. 24.

कालिदास के उपर्युक्त वर्णन में गृहबलिभुक् की निम्नलिखित विशेषतायें बतायी गई हैं।

(१) यह हमारे घरों में पाया जाने वाला पक्षी है।

(२) इसके नीडनिर्माण और सन्तानोत्पादन का काल वर्षा आरम्भ होने के महीने अर्थात् जून-जुलाई हैं।

(३) यह पक्षी पेड़ों पर घोंसला बनाता है[१३]।

विल्सन द्वारा बताये उपर्युक्त तीनों पक्षियों में से ये सभी विशेषताएँ केवल कौए में ही पायी जाती हैं। गृहबलिभुक् बगुला या सारस इस लिये नहीं हो सकता कि वह सामान्य रूप से घरों में पाया जाने वाला पक्षी नहीं है, पहले (पृष्ठ १६२) में बताया जा चुका है कि सारस सरोवरों का पक्षी है, वह झीलों, दलदली भूमि या नदियों के किनारे पाया जाता है। इसी प्रकार बगुले भी घरेलू पक्षी नहीं है, वे चरागाहों में तथा घास के मैदानों में पशुओं के पीछे कीड़ों की खोज में फिरते रहते हैं।

यह पक्षी गौरेया (House sparrow) भी नहीं हो सकता। इसमें यद्यपि पहली विशेषता हमारे घरों में रहना पाया जाता है, किन्तु दूसरी दो विशेषताएँ नहीं पायी जातीं। इसके नीड-निर्माण तथा सन्तानोत्पादन का वर्षा के साथ सम्बन्ध नहीं है। यह सारे साल घोंसला बनाती रहती है[१४] और इसके घोंसला बनाने के स्थान पेड़ नहीं, किन्तु हमारे घरों की दीवारों के छेद रोशनदान, दीवारों पर टँगी तस्वीरों के पिछली ओर के खाली स्थान होते हैं[१५]।

देसी कौए (The House Crow; Covus splendens Vieillot) में ये तीनों विशेषताएँ पाई जाती हैं। यह हमारे घरों के आसपास खूब पाया जाता है। ह्विसलर ने लिखा है कि मनुष्य के आवासस्थान ही देसी कौए के आवासस्थान हैं। यह उसके साथ शहरों में बहुत बड़ी संख्या में पाया जाता है और जंगल तथा मरुस्थल के ऐसे स्थान भी इसके लिए उपयुक्त हैं, जहाँ मनुष्य रहता हो। मीलों तक फैले सुनसान और बंजर मैदानों में मनुष्य के न रहने पर यह नहीं पाया जाता और ज्यों ही ऐसे स्थानों में फिरन्दर जातियों की झोंपड़ियां या तम्बू प्रकट होते हैं तो इनका साथ देने के लिये आधा दर्जन कौए भी आ जाते हैं[१६]।

कौए का सन्तानोत्पादन काल उत्तर पश्चिम भारत में जून मास के मध्य से जुलाई मास के मध्य तक है[१७]। पहले दिल्ली में एक काक दम्पती द्वारा इस काल में घोंसला बनाने का उल्लेख किया जा चुका है (पृ. ७१)।

कौआ अपना घोंसला १० फीट की ऊंचाई पर पेड़ों की शाखाओं में बनाता है[१८]।

अतः कालिदास का गृहबलिभुक् देसी कौआ प्रतीत होता है।

---

१३. पेड़ के लिए कालिदास ने यहाँ चैत्य शब्द का प्रयोग किया है। वल्लभ ने चैत्य का अर्थ बुद्धालय या बुद्ध की पूजा का स्थान दिया है, किन्तु मलिनाथ आदि अन्य टीकाकारों को यह अर्थ उचित नहीं प्रतीत हुआ। सारोद्धारिणी टीका के अनुसार चैत्य पूजा किये जाने योग्य पीपल आदि के पेड़ हैं (चैत्याः पूज्यपादपाः पिप्पलादयः)। सरस्वतीतीर्थ ने लिखा है कि ये गाँवों के चौरा हों के पेड़ हैं (ग्रामाणां चैत्यानि चतुष्पथस्य वृक्षाः)

१४. Salim Ali : The Book of Indian Birds P. 35

१५. Ibid, DharmaKumarsinghji-Birds of Saurashtra P. 384

१६. Whistler : Popular Handbook of Indian Birds. P. 6

१७. पूर्वोक्त पुस्तक पृ० ८

१८. Salim Ali P. 1.

प्रथम परिशिष्ट

कालिदास द्वारा वर्णित पक्षियों की तालिका

संस्कृत नाम	हिन्दी नाम	अंग्रेजी नाम	वैज्ञानिक नाम
कंक	लाल बगुला	Chestnut Bittern	*Ixobrychus Cinnamomeus* (Gmelin)
कपोत	कबूतर	Blue Rock Pigeon	*Columba livia Gmelin*
कलापी	नीलकण्ठ देखिये		
कादम्ब	कलहंस	Greylag Goose	*Anser Anser*
कारण्डव	टिकारी	Coot	*Fulica Atra Linnaeus*
कुररो	मछमंग, ढेंक, मछरंग	Pallas's Ringtailed Fishing Eagle	*Haliaeetus leucoryphus* (Pallas)
कोकिल (पिक, परभृत)	कोयल	Koel	*Eudynamys scolopacea* (Linnaeus)
क्रौंच	कुंज, करकरा	Demoiselle Crane	*Anthropoides virgo* (Linnaeus)
गृध्र	१. सामान्य गीध	Common Whitebacked or Bengal Vulture	*Gyps bengalensis* (Gmelin)
	२. राजगीध	The Black or King Vulture	*Torgos calvas* (Scopoli)
	३. सफेद गीध	The White scavanger Vulture or Pharaoh's chicken	*Neophron* perenopterus (Linnaeus)
गृहबलिभुक्	देसी कौआ	The House Crow	*Corvus splendens* Vieillot
चक्रवाक	चकवा, सुर्खाब	The Ruddy sheldrake or Brahminy Duck	*Tadorna ferruginea*

चातक	चातक	The Pied crested cuckoo	*Clamator Jacobinus* (Boddaert)
दिवाभीत	घुघ्घू, उल्लू	The great Indian Horned owl The Rock Eagle-owl	*Bubo bubo* (Linnaeus) *Bubo bengalensis* (Franlin)
नीलकण्ठ (कलापी, बर्ही शिखी, मयूर)	मोर	The common Peafowl	*pavo Cristatus* Linnaeus
पारावत	कबूतर		*Columba livia gmelin*
बलाका	१. गाय बगुला सुरखिया बगुला २. करछिया बगुला	The Cattle egret The litte egret	*Bubulcus ibis* (Linnaeus) *Egretta grazetta* (Linnaeus)
राजहंस	राजहंस	The Barheaded Goose	*Anser Indicus* (Latham)
शुक	तोता	The Roseringed Parakeet	*psittacula Krameri* (scopoli)
श्येन	१. लगर २. शाहीं, कुही	The Laggar Falcon The shahin Falcon	*Falco biarmicus jugger* (Gray) *Falco peregrinus paregrinator* Sundavall
सारस	सारस	Sarus Crane	*Grus antigene* (Linnaeus)
सारिका	पहाड़ी मैना	The Grackle or Hill Myna	*Gracula religiosa* Linnaeus
हारीत	हरियल	The common Green Pigeon	*Treren phoenicoptera* (Latham)

द्वितीय परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ सूची

कालिदास के ग्रन्थ

इनके प्रामाणिक, आलोचनात्मक संस्करण साहित्य अकादमी नई दिल्ली से प्रकाशित हो रहे हैं। अब तक मेघदूत, कुमारसंभव और विक्रमोर्वशीय छप चुके हैं। इनमें इनकी विभिन्न टीकाओं तथा संस्करणों का विस्तृत निर्देश है।

अभिज्ञान शाकुन्तल—राघव भट्ट कृत टीका सहित, १२वां संस्करण, निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९५८।

अभिज्ञान शाकुन्तल—मोनियर विलियम्ज़ कृत अंग्रेजी अनुवाद टिप्पणी सहित, तृतीय संस्करण, चौखम्भा संस्कृत सीरीज बनारस १९६१।

अभिज्ञान शाकुन्तल—शंकरनरहरिकृत टीका सहित मिथिला पाठवाला।

अभिज्ञान शाकुन्तल—पिशल द्वारा सम्पादित संस्करण (हार्वर्ड)।

ऋतुसंहार—चौखम्भा संस्कृत सीरीज, बनारस।

ऋतुसंहार—आर. एस. पंडित कृत अंग्रेजी अनुवाद, बम्बई।

कालिदास ग्रंथावली—सीताराम चतुर्वेदी, तृतीय संस्करण भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ सं. २०१९।

कुमारसंभव—डा० सूर्यकान्त द्वारा सम्पादित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, १९६२।

कुमारसंभव—पहले ८ सर्गों की मल्लिनाथ का तथा ९-१७ सर्ग तक सीताराम कवि की टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९४६।

मालविकाग्निमित्र—आर. डी. करमकर कृत अंग्रेजी अनुवाद तथा टिप्पणी सहित, पूना।

मालविकाग्निमित्र—संस्कृत हिन्दी टीका सहित, चौखम्भा, बनारस।

मेघदूत—सं. सुशीलकुमार दे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली १९७५।

मेघदूत—एच. एच. विल्सन का अंग्रेजी अनुवाद तथा टिप्पणी सहित। तृतीय संस्करण चौखम्भा सं. सी. बनारस १९६१।

मेघदूत—संजीवनी, चरित्रवर्द्धिनी, भावबोधिनी, सौदामिनी संस्कृत हिन्दी टीका सहित, चौखम्भा।

मेघदूत—भरत मल्लिक प्रणीत तथा आठ टीकाओं की टिप्पणियों का चौधरी द्वारा सम्पादित संस्करण।

मेघदूत—संसार चन्द्र-मोहन देव पन्त कृत व्याख्या सहित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

मेघदूत—एक अध्ययन वासुदेव शरण अग्रवाल।

मेघदूत—एक अनुचिन्तन, श्रीरंजन सूरिदेव।

मेघदूत—आर. डी. करमकर कृत अंग्रेजी अनुवाद, पूना।

मेघदूत—वसन्त रामचन्द्र नेरूरकर कृत अंग्रेजी अनुवाद, बम्बई १४८।

मेघसंदेश—दक्षिणावर्त्तनाथ प्रणीत प्रदीप व्याख्या सहित, सं. गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज।

रघुवंश—मल्लिनाथ की टीका सहित·········संस्करण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९४८।

रघुवंश—सं. गोपाल रघुनाथ नन्दरगीरकर, प्राचीन टीकाओं के उद्धरणों तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित, राधाबाई, आत्माराम सगून बम्बई १८९७।

विक्रमोर्वशीय—सं. हरिदामोदर वेलणकर साहित्य अकादमी, नई दिल्ली १९६१।

विक्रमोर्वशीय—आर. डी. करमकर कृत अंग्रेजी अनुवाद-व्याख्या सहित।

विक्रमोर्वशीय—भावे तथा एस. बी. आठल्ये कृत अंग्रेजी अनुवाद तथा व्याख्या, केशवभिकाजी ढवले, बम्बई १९४८।

विक्रमोर्वशीय—कालेकृत अंग्रजी अनुवाद, बम्बई १९२२।

(ख) भारतीय पक्षी शास्त्र विषयक ग्रन्थ

Ali, Salim : The Book of Indian Birds. 6th ed. Bombay Natural History Society 1961.

Ali, Salim : Indian Hill Birds (Oxford University Press).

Ali, Salim : The Birds of Travancore and Cochin (Oxford University Press).

Ali, Salim : Birds of Kutch (O.U.P. 1962).

Ali, Salim : The Birds of Sikkim (O.U.P. 1962).

Baker, E.C. Stuart : Fauna of British India Birds. 3rd ed. 8 vols. (Taylor and Francis, London 1930).

Baker, E.C. Stuart : The Game Birds of India Burma and Ceylon. Bombay Natural History Society.

Baker, E.C. : Stuart Baker, Nidifications of the Birds of the Indian Empire.

Baker, H. R. and Inglis C.M. Birds of Southern India.

Bates. R. S. P. and Lowther E.H.N. The Breeding Birds of Kashmir (O.U.P.).

Darling Lois and Louis : Birds (Methuen & Co., London 1962).

Dewar, Douglas : Bombay Ducks (The Bodley Head London).

Dewar, Douglas : Birds of the Plains.

Dewar, Douglas : Glimpses of Indian Birds.

Dorst, Jean : The Migrations of Birds (Heinemann, London 1962).

Dharmkumarsinghji, R.S. : Birds of Saurashtra.

EHA : The Common Birds of India, 3rd ed. (Thacker Spink & Co., Bombay 1947).

Finn, Frank : Garden and Aviary Birds of India (Thacker Spink, Calcutta 1906).

Fletcher, T.B. and Inglis C.M. : Birds of an Indian Garden (Thacker Spink Calcutta 1936).

Henry, G.M : A Guide to the Birds of Ceylon (O.U.P. 1955).

Hickey, Joseph : A Guide to Bird watching (O.U.P.)

Jerdon, T.C. The Birds of India in 2 vols. (Calcutta 1877).

Krishnan, K : Jungle and Backyard (Publications Division 1962).

Lowther, E.H.N . A Bird Photographer in India (O.U.P.)

Lister, Michael : A Bird and its Bush (Phoenix, London 1962).

Macdonald, Malcom : Birds in My Indian Garden (Jonathan Cape, London 1960).

Macdonald Malcom : Birds in the Sun (Taraporewala, Bombay 1962).

Rajeshwarnarayan Prasad Singh : Our Birds (Publication Division, Delhi 1959).

Summersmith, J.D. The House Sparrow (Collins, London 1963).

Vogel, Jean Phillippe : The Goose in Indian Literature and Art. E. J. Brill Leiden 1962.

Wallace, G. G. : An Introduction to Ornithology (Macmillan, New York).

Wing, Leonard, W. Natural History of Birds (The Ronald Press, New York).

Whislter, H. : Popular Handbook of Indian Birds Fourth ed. (Gurney and Jackson, London 1949).

अनुक्रमणिका